प्रूफ़ संशोधन की असावधानी से जो अशुद्धियां रह गई हैं इस पुस्तक के अन्त में दिए शुद्धि पत्र में देखें

तीर्थंकर महावीर

※ वन्दे जिनवरम् ※

पंजाब केसरी, जैनधर्मभूषण प्रचार मन्त्री पंडित स्वर्गीय मुनि

श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज

का

विहार और प्रचार

भाग २

लेखक

मुनि श्री बनवारी लाल जी महाराज

पुस्तक प्राप्ति स्थान—

भक्त श्रीहुक्म चन्द जैन सुपुत्र श्री कालू राम जैन

18/6 शक्ति नगर, दिल्ली ।

पुस्तक :—

बिहार और प्रचार भाग २

लेखक :—

मुनि श्री बनवारी लाल जी

सम्पादक :—

धनदेव कुमार "सुमन"

एवं

जगदीश सिंह सोलंकी "पत्रकार"

मुद्रक :—पाइनीयर फाईन आर्ट प्रेस, दिल्ली ६

संस्करण :—

प्रथम (दो हजार प्रतियां)

समर्पण

"शताब्दियाँ बीत जाने के बाद भी जिस महान सन्त को जैन समाज नहीं भूल पाया और जिन के शिष्य थे पंजाब केसरी चारित्र चूड़ामणि पण्डित रत्न श्री प्रेमचन्द्र जी महाराज, उन्हीं के गुरुदेव श्री वृद्धिचन्द जी महाराज के चरण कमलों में समर्पित है यह "विहार और प्रचार।"

—मुनि बनवारी लाल

श्री श्री १००८ श्री वृद्धिचन्द जी महाराज

मेवाड़ की भूमि ने जहाँ महाराणा प्रताप तथा राणा सांगा जैसे वीरों को जन्म दिया है, वहाँ इस धरता ने अनेक महात्माओं को भी जन्म दिया है। उन महात्माओं में एक थे श्री वृद्धिचन्द जी महाराज। आपने गाँव गांव घूम कर सत्य, अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह की दुन्दुभि बजाई थी।

इस महामुनि का जन्म उदयपुर रियासत के अन्तर्गत बगडून्दा नाम के एक छोटे से ग्राम में हुआ था। ओसवाल (लोढ़ा) वंश था आपका। पिता श्री के धार्मिक विचारों का आप पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। बचपन से ही आप धार्मिक कार्यों में लवलीन रहने लगे।

वंश परम्परागत रिवाज के अनुसार छोटी अवस्था में ही आप की सगाई कर दी गई। माता पिता की अब तीव्र अभिलाषा थी कि उनका आँगन नई नवेली सलोनी सुकुमारी पुत्रवधू के ठुमकते हुए पायलों की मधुर रुन झुन रुन झुन की ध्वनि से शीघ्र ही मुखरित हो उठे, परन्तु विधि को कुछ और ही मंजूर था।

एक दिन माता पिता ने बालक को कहा, "वत्स! तुम्हारे विवाह की तिथि निश्चित करदी गई है और कल लग्न आएगा।" यह बात सुनकर बालक का मन कमल कुम्हला गया। वह विचारों के ताने बाने में उलझ गया। कुछ क्षण व्यतीत हो जाने के बाद बोला," पिता जी! मेरे पैरों में यह विवाह की बेड़ियां मत डालिए। मैं विवाह पथ का पथिक न बन कर वैराग्य पथ का पथिक बनना चाहता हूँ। विवाह का बन्धन सर्प की तरह मुझे डस जाएगा और संयम का पथ मेरे इस लोक परलोक को मंगलमय बना देगा, अतः मुझे साधु बन जाने दीजिए।"

पुत्र के इन वचनों ने माता पिता की आशा पर तुषारापात कर दिया। उन्होंने पुत्र को समझाया कि साधुवृत्ति को पालना नग्न तलवार की तेज धारा पर चलने के समान है। इस में पग २ पर मुसिबतें हैं। लोच करना, गर्मी और सर्दी में नंगे पैर रहना, पैदल विचरण करना ब्रह्मचारी रहना आदि अनेक कष्ट हैं।" यह सुनकर, उस किशोर ने उत्तर दिया कि आत्म साधना के पथिक को तो संयम पथ में आने वाली सभी प्रकार की आपदाओं को सहन करना ही पड़ता है संयम के कष्टों को सहन करने के लिए ही तो साधु बनना है। साधु बनने के बाद भी यदि व्यक्ति सुखों के पीछे दौड़ता है तो यह उसका पागलपन है।" किशोर के इन वचनों ने माता-पिता को निरुत्तर कर दिया। उनकी दृढ़ता के आगे वे भी मौन हो गए।

गोगुन्दा के राजा ने भी आप को वैराग्य पथ के मार्ग से विचलित करने का भरसक प्रयास किया परन्तु अपने विचारों पर आप चट्टान की तरह दृढ़ रहे।

विवश होकर माता-पिता ने अपने हाथों आप को दीक्षा दिला दी। आप श्री नेमीचन्द जी महाराज के शिष्य बने। कुछ वर्षो के बाद मेवाड़ में पंजाब से चरित्र चूड़ामणि, क्रियापात्र, मधुर गायक, पंजाब कोकिल श्री मायाराम जी महाराज पधारे। आप का उन से साक्षात्कार हुआ। इन से आप अत्यन्त ही प्रभावित हुए। श्री नेमीचन्द जी से आज्ञा प्राप्त कर आप श्री मायाराम जी के साथ विहार करके पंजाब पधार गए।

अनुमानतः आपने उन्नीस वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली थी। अड़तालीस वर्ष तक आप संयम पथ के साधक रहे। ६७ वर्ष की आयु में इस नश्वर शरीर को त्याग कर आप स्वर्गधाम को पधारे

कबीर के शब्दों के अनुरूप आपने वैराग्य की चादर पर जीवन भर किसी प्रकार का कोई दाग नहीं लगने दिया।

आप पर हम जितना गौरव करें, थोड़ा है। अपने क्रिया-कलापों से आप सदा के लिए अमर हो गए हैं।

सम्पादक

पंडित श्री घासीलाल महाराज द्वारा रचित और समर्पित पंजाब केशरी-पण्डित प्रवर श्री प्रेमचन्दजी महाराजाष्टक

(भुजङ्गप्रयातम्)

अतन्द्रोगुणैः सिद्धहस्तो मुनीन्द्रो,
नरेन्द्रादिभिः सेवितांह्रि द्वयाब्जः ।

मुनि प्रेमचन्दो यशः शुद्धमेति,
ततः केशरीति प्रसिद्धिं प्रयातः ॥१॥

(हरिगीतिकाच्छन्दः)

वह वीततन्द्र गुणावली से सिद्धहस्त मुनीन्द्र है,
जिनके चरण युगल कमल में नमते विनम्र नरेन्द्र हैं ।
श्री प्रेमचन्द्र मुनीश निर्मलकीर्ति से विख्यात है,
इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥१॥

क्षमाखड्गमादाय शिष्टानुचारी,
विहारीविचारी सदाचारचारी ।

सुधर्माभिरामे वने यद् विहारी,
ततः केसरीति प्रसिद्धिं प्रयातः ॥२॥

लेकर क्षमा तलवार शिष्टाचार करते आप हैं,
सयम-विहार-विचार-साध्वाचारकारी आप हैं ।
जिसमें मनोहर धर्म रूपी वन बिहारी ख्यात है,
इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात है ॥२॥

(३)

अपूर्वप्रभावं जिनेन्द्रोक्ततत्त्व,
मनेकान्तवादं निराबाधतत्त्वम् ।
प्रवक्तीहलोके विशुद्धाच्च भावात्,
ततः केसरीति प्रसिद्धि प्रयातः ॥३॥

जिनवर कथित अति महिमाशाली तत्त्व जो निर्बाध हैं,
मुनिराज ! इस स्याद्वाद के वक्ता अतीव अगाध हैं ।
इस लोक में शुभभाव से मुनिनाथ अति विख्यात हैं,
इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥३॥

(४)

अपाकृत्यभावं जनानामशुद्धं,
विशुद्ध तमाविष्करोतीह तेषाम् ।
अपूर्वारुचि धर्ममार्गं तनोति,
ततः केसरीति प्रसिद्धि प्रयातः ॥४॥

हर एक जनका भवदूषित हर उसे फिर शुद्ध भी,
करते सदा मुनिराज आप स्वयं हृदय को शुद्ध भी ।
फिर धर्म में रुचि भी जगाते रुचिरतर विख्यात हैं,
इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥४॥

(५)

विहीनं जनं ज्ञानमुख्यैर्गुणैस्तं,
करोति प्रकृष्टं विशिष्टं पुनस्तैः ।
परस्योपकारं करोत्यत्युदारं,
ततः केसरीति प्रसिद्धि प्रयातः ॥५॥

ज्ञानादि गुणगण से रहित जनको गुणों से पूर्ण हैं,

करते अधिकतर आप खुद सब सद्गुणों से पूर्ण हैं ।

फिर और के उपकार करने में महाविख्यात हैं,

इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥५॥

(६)

निराधारजन्तोः सदाधार भूतो,

भवारण्ययातस्य मार्गोपदेष्टा ।

महामोहनिद्रागतस्य प्रबोधी,

ततः केसरीति प्रसिद्धिं प्रयातः ॥६॥

आधार रहित समस्त जनके सर्वदा आधार हैं,

भवरूप वन में घूमते को मार्ग दर्शक सार हैं ।

अति मोहनिद्रागत जनो के बोधने में ख्यात हैं,

इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥६॥

(७)

यथा भाति नक्षत्रवृन्देन चन्द्र—

स्तथा शिष्यसंघेन सम्यग्विभाति ।

सदा शास्त्ररूपाटवी चारिचित्तः,

ततः केसरीति प्रसिद्धिं प्रयातः ॥७॥

नक्षत्रगण से शोभते हैं चन्द्रमा नभ में यथा,

निज शिष्यगण से गच्छ में हैं शोभते अतिशय तथा ।

फिर शास्त्र वन विहरण परायण हृदय में विख्यात हैं,

इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥७॥

(८)

विहारं विहारं सदानेक देशान्,
जनस्योपकारं महान्तं करोति ।
प्रचारं च धर्मस्य सर्वोत्तमस्य,
ततः केसरीति प्रसिद्धिं प्रयातः ॥८॥

फिर उग्र-उग्र विहार कर जो सर्वदा प्रति देश में,
जन जात के उपकार कर्त्ता मग्न हैं मुनि वेष में ।
सबमें रुचिर जो धर्म है उसके प्रचार ख्यात हैं,
इससे मुनीश्वर केसरी पद से हुए प्रख्यात हैं ॥८॥

(९)

घासी लालकृतं स्तोत्रं यः पठेच्छृणुयादपि ।
प्राप्नोति सुलभं बोधिं, सर्वथा सर्व भावतः ॥

॥ श्रीरस्तु ॥

मेरी दृष्टि में विहार-प्रचार

जैन धर्म-दिवाकर, प्रवर्त्तक श्री फूलचन्द जी 'श्रमण

श्रमण संस्कृति विरक्त महात्माओं के लिये स्थिरवास की अपेक्षा विचरण को अधिक महत्त्व देती है। अतः विहार और प्रचार 'श्रमण' के आवश्यक कर्त्तव्य हैं। श्रमण श्रेष्ठ श्री प्रेमचन्द जी महाराज विहरणशील तो थे ही उनका प्रचार भी जैन संस्कृति के लिये एक दिव्य वरदान था।

यद्यपि विहार शब्द के अनेक अर्थ हैं जैसे कि—

(क) इधर-उधर के भ्रमण को विहार कहा जाता है।
(ख) क्रीड़ा-स्थान को भी विहार ही कहा जाता है।
(ग) बौद्ध भिक्षुओं के निवास-स्थान को भी विहार कहा जाता है।
(घ) वैदिक परम्परा में देव-मन्दिर को भी विहार कहा जाता है।

परन्तु जैन परम्परा में विहार शब्द का प्रयोग स्वाध्याय-स्थान, मुनि-चर्या एवं साधु के ग्रामानुग्राम विचरण के लिये विहार शब्द रूढ़ है। 'विहार-प्रचार' मे प्रयुक्त विहार शब्द का अर्थ मुनिचर्या के अनुकूल विचरण करना ही इष्ट है।

प्रचार का सीधा अर्थ है किसी अभीष्ट विषय या सिद्धान्त को बहुत से लोगों तक वैयक्तिक एवं सामूहिक रूप से पहुँचाना। क्योंकि मुनि-जीवन की साधना केवल आत्म-कल्याण के लिये नहीं होती, पर-कल्याण भी मुनिचर्या का अभिन्न अङ्ग है। जिस प्रकार सरोवर में उठी हुई लहरें सारे सरोवर को तरंगित कर देती हैं, उसी तरह मुनि जीवन की वैयक्तिक साधना में समाज-हित की भावना भी निहित रहती है। मुनि-जीवन का उपदेश संन्देश पर-कल्याण की उदात्त भावना से ही होता है, परन्तु उपदेश देने से पहले मुनि को अपनी योग्यता और उपदेश देने योग्य विषय पर विचार अवश्य कर लेना चाहिये कि

उसका कथन कितना शास्त्र सम्मत है ? कितना जनोपयोगी है और कितना प्रभावशील है। क्या उसके उपदेश से श्रोता जनों का जीवन अपने लक्ष्य की ओर उन्मुख हो सकता है या नहीं ? क्योंकि उपदेशक के ज्ञानी और अनुभवी होने पर ही श्रोताओं को कुछ लाभ हो सकता है ; अन्यथा नहीं।

प्रचार का अधिकार उसी उपदेशक को है जो अपने सांस्कृतिक साहित्य का पूर्ण वेत्ता हो साथ ही जिसने अन्य सांस्कृतिक परम्पराओं के साहित्य का भी परिज्ञान प्राप्त किया हो, जिसकी दृष्टि विशाल हो और सम्यक् भी, जिसकी बुद्धि राग-द्वेष से मुक्त हो, भावनाओं में मध्यस्थता हो, हृदय में करुणा हो, मन में गम्भीरता हो, चित्त में उदारता हो और समाज के प्रति सद्भावना एवं निष्ठा हो और जो तीर्थङ्करदेव की महिमा का तथा श्री संघ के हितों का सच्चा प्रहरी हो। इन गुणों से विशिष्ट उपदेशक ही जनता को प्रभावित कर सकता है और उसीका प्रचार सफल है। श्री प्रेमचन्द जी महाराज उपर्युक्त समस्त गुणों के भण्डार थे, अतः वे जहां प्रचार के महासाधनों से सम्पन्न थे वहां उनका विहार क्षेत्र भी अत्यन्त विस्तृत था। अतः उनके उपदेशों का सर्वत्र आदर था, उनकी प्रभावशील वाणी ने कितने ही पथ भ्रष्ट व्यक्तियों को सन्मार्ग में प्रवृत्त कर दिया था।

धर्म सूर्य के प्रकाश के समान व्यापक है, अतः वह भेदभाव बिना सब के लिये हितकारी है। जैसे सूर्य का प्रकाश सब के लिये उपयोगी एवं ग्राह्य होता है उसी प्रकार धर्म सब के लिये ग्राह्य एवं उपकारी होता है। धर्म किसी सम्प्रदाय, वर्ण एवं जाति के बाह्य क्रिया-काण्डों का नाम नहीं है, अहिंसा, शान्ति, सत्य, क्षमा, मैत्री, मार्दव, विरति, सन्तोष निष्कपटता अचौर्य, समता, सदाचार इत्यादि गुण धर्म के ही विशिष्ट अंग हैं। भगवान महावीर ने बिना किसी भेदभाव के चारों दिशाओं में रहने वाले जीवों को धर्मोपदेश देने के लिये समर्थ ज्ञानियों को आज्ञा दी है और उन्हें ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए विहार प्रचार का आदेश दिया है। पंजाब प्रवर्तक श्री प्रेमचन्द जी इस आज्ञा एवं आदेश का जीवन भर पालन करते रहे। प्रस्तुत पुस्तक उनके विहार एवं प्रचार

का दिव्य दृश्य उपस्थित कर उस महापुरुष का पुण्य स्मरण करवा रही है।

यहां इतनी बात अवश्य स्मरणीय है कि सभी श्रोताओं की उपदेश-ग्रहण की योग्यता समान नहीं होती, अतः कुशल उपदेशक जिस व्यक्ति की जैसी योग्यता देखता है, जिसे जिस शैली में समझाने की आवश्यकता प्रतीत करता है उसे उसी शैली मे समझाता है। जैसे कुशल वैद्य रोगी का निदान करने के पश्चात् उसे योग्य औषधि देता है वैसे ही कुशल उपदेशक उपदेश श्रवण के लिये आने वालों की पात्रता को देख कर तदनुकूल उपदेश देता है।

उपदेश साधु को भी दिया जा सकता है और गृहस्थ को भी। भगवान महावीर ने राजा और रंक सभी को उपदेश देने का विधान किया है और साथ में यह भी कहा है कि उपदेश निस्पृह भाव से दिया जाना चाहिये, उसमें प्रतिदान की भावना का लेश भी नहीं रहना चाहिये।

पंजाब-केसरी परम श्रद्धेय स्वनाम-धन्य श्री प्रेमचन्द जी महाराज से जन जन परिचित है। जैन ही नहीं जैनेतर जनता भी उन्हें समय-समय पर स्मरण करती ही रहती है। वे दृढ़ संयमी थे, उनके वचनों में प्रभावशीलता थी, आगम वर्णित सभी साधु-गुण उनमें विद्यमान थे, । इनके अतिरिक्त उनकी कुछ अपनी असाधारण विशेषताएं थीं जिनके कारण वे अधिक प्रसिद्ध हुए हैं, जैसे कि स्पष्टवादिता, निर्भीकता, समयज्ञता, वक्तृत्वकला, निपुणता, तेजस्विता, प्रभाव शीलता, सहिष्णुता, न्याय-प्रियता एवं अनुशासन की महान् शक्ति। आगमों के अध्ययन-अध्यापन में, शास्त्रीय चर्चा में उन्हें विशेष रुचि थी और उनमें असाधारण विद्वत्ता थी। जिनवाणी पर उन्हें दृढ़ श्रद्धा थी। मैंने जब भी उन्हें देखा मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उनके हृदय में श्री संघ के हित की तीव्र अभिलाषा है, संघ के प्रति निष्ठा है और संघ-मंगल की महती कामना है। अतः उनका प्रचार और विहार समाज के लिये मंगलकारी रहा ही है, उनके विहार-प्रचार की स्मृतियां भी संघ के लिये मंगल कारी होंगी यह मेरा दृढ़ विश्वास है। मेरा यही विश्वास पुस्तक के प्रचार की शुभ भावना व्यक्त करता है।

प्रवर्त्तक महाराज श्री ने विहार प्रचार की परिभाषा सुन्दर एवं सुलझे' शब्दों में रखी है, तथा महाराज श्री पंजाब केसरी प्रेमचन्द जी महाराज के गुणों की सुन्दर व्याख्या की है। स्मरण रहे कि महाराज श्री ने आचार्य श्री को प्रवर्त्तक पद स्वीकार करने की स्वीकृति नहीं दी थी, और न ही कभी अपने को प्रवर्त्तक लिखवाया। जहां तक मेरा अनुभव है महाराज श्री को प्रवर्त्तक कहलाने की इच्छा भी न हुई। इस विषय में पाठक गण "प्रेमज्योति" "आदर्श चरित्र" पुस्तक का अवलोकन करें।

जैनागमों में ६ प्रकार की पदवियां चली हैं (१) आचार्य की पदवी, (२) उपाध्याय की पदवी, (३) गणी की पदवी (४) गणावच्छेदक की पदवी (५) प्रवर्त्तक की और (६) स्थाविर की पदवी। इनमें आचार्य और उपाध्याय की पदवियां मुख्य मानी जाति हैं, शेष चार पदवियां आचार्य के अनुशासन में ही प्रवर्त्तती हैं अर्थात् इन पदों पर नियुक्त व्यक्ति आचार्य के सहायक रूप होते हैं संघ संचालन में आचार्य की सहायता करते हैं। आचार्य श्री फरमाया करते थे कि इन और पदवियों वाले, आचार्य और उयाध्याय, के भार बटाने वाली भार्या के समान हैं। आचार्य का उत्तरदायित्व चतुर्विध संघमें आचार शुद्धि को बनाए रखना है तथा उपाध्याय का कर्त्तव्य होता है कि वह चतुर्विध संघमें सम्यग्ज्ञान का प्रचार प्रसार करता रहे, गणी का कर्त्तव्य समय २ पर आचार्य से विचार विमर्श करना। आचार्य अपने संघ सुविधानुसार पृथक् २ टोले बना देते है उन टोलों में से एक २ टोले को एक २ गणावच्छेदक के अधिकार में दे देते हैं, उन गणावच्छेदकों का कार्य यह होता है कि आचार्य श्री जो भी आज्ञा दें गण-वच्छेदक उस आज्ञा को अपने गच्छ में संचालित करें। प्रवर्त्तक का कर्त्तव्य होता है संघ के साधुसाध्वियों को शुद्ध, निर्दोष ऐषणिक आहार पानी की व्यवस्था करना तथा उसका संविभाग करना इस विषय में ऐसी धारणा चला आ रही है।

स्थविर तीन प्रकार के होते हैं—वयस्थविर, दीक्षास्थविर एवं सूत्र स्थविर। वयस्थविर ६० वर्ष का माना जाता है, दीक्षा स्थविर २० वर्ष का, तथा सूत्र स्थविर आचारांग, स्थानांग, भगवती आदि सूत्रों के ज्ञाता को कहा जाता है। ये पदवियां गुणोपेत ही अपेक्षित होती हैं अतः जो व्यक्ति उन पदवियों

के उत्तरदायित्व को निभाने में असमर्थ हो उसे उस पदवी पर नियुक्त करने से समाज का गौरव नहीं बढ़ सकता। उदाहरणतः किसी नगर में एक भाई ने बात सुनाई कि एक बार हमारे नगर में दो समाजों में परस्पर सैद्धान्तिक विवाद उठ खड़ा हुआ, उस समय दोनों समाजों के मुख्य लोग वहां मौजूद थे, उन्होंने अपने अग्रेसरों को परस्पर में शास्त्रार्थ करके इस विवाद को हल करने का अनुरोध किया किन्तु जब शास्त्रार्थ करने का अवसर आया तो उनमें से एक तो शास्त्रार्थ स्थल पर आगया लेकिन दूसरे महारथी ने वहां जाने से साफ इन्कार कर दिया। इसके बाद समाज ने उस महारथी को भय दिखाकर तथा दबाव देकर शास्त्रार्थ स्थल पर चलने को विवश कर दिया। वहां पहुंचने पर जब समाज ने अनुभव किया इन तिलों में तेल नहीं अर्थात् यह शास्त्रार्थ करने में समर्थ नहीं पंजाबी की कहावत के अनुसार—"रोंदे जावें ते मुवां दी खबर लावें।" इसके पश्चात् समाज ने ऐसा सोसा रख दिया कि भविष्य में शास्त्रार्थ करने की नौबत ही न आए, और समाज अपमानित न हो, ऐसा अधिकारी समाज को अपमानित होने से कैसे बचा सकता है ? अतः समाज को गुण संपन्न व्यक्ति को ही उक्त पदवियों पर नियुक्त करना चाहिये। पाठक ऐसा भी न समझें कि उक्त महारथी कोई अनजान था या शास्त्रों से अनभिज्ञ था अथवा संयम में कमजोर था, परन्तु कमजोर मन था अतः समाज को नीचा देखना पड़ा किन्तु ऐसे अवसरों पर महाराजश्री ने कभी भी पीठ नहीं दिखाई। एक बार महाराजश्री का जालंधर शहर चिरंजीतपुर में प्रवचन होरहा था वहां पर हजारों की संख्या में जन समूह उपस्थित था उनमें से आर्य समाज का एक पंडित खड़ा होकर बोला इन जैनी लोगों को शंकराचार्य ने भयभीत करके घरोंमें धकेल दिया था और ये अपना प्रचार अपने घरों में ही करते थे अब फिर बाहर निकल आए। ऐसा सुन कर महाराज श्री ने उसे फरमाया कि आप चाहते क्या हैं ? जिस किसी भी विषय में आप वार्त्तालाप करना चाहते हो तो मैं राजा के महल में ठहरा हुआ हूं आप जितने आदमियों के साथ चाहें तो आसकते हैं। यदि यहीं पर शास्त्रार्थ करना हो तो सामने अपना प्लेट-फार्म लगासकते हो मैं यहीं बैठा हुआ हूं। महाराज श्री के ऐसा

फरमाने पर वह मौन हो गया तथा हजारों को संख्या में लोगों के सामने अपमानित होकर चला गया। इस घटना में जैन समाज का कितना गौरव बढ़ा। अतः इस प्रकार के उत्तरदायित्त्वपूर्ण पद पर ऐसे पंगु डरपोक व्यक्ति को नियुक्त करने से ही समाज का गौरव कैसे बढ़ सकता है ?

इस पुस्तक में जो चित्र दिये जा रहे हैं वह सुशील कुमार सुपुत्र रोशनलाल जैन स्यालकोट निवासी की प्रेरणा से दिए जा रहे हैं। केवल परिचय और इतिहास रूप में दिये जा रहे हैं न कि वन्दन नमस्कार के लिये क्योंकि महाराज श्री जड़पूजा के कट्टर विरोधी थे।

नोट—स्मरण रहे पाठक गण इस पुस्तक को इतिहास के रूप में अपने पास रखें क्योंकि महाराज श्री का जीवन ही इतिहास रूप था इस बात को पाठक साधु और सद् ग्रहस्थियों के लेखों को पढ़कर स्वतः जान सकेंगे।

पाठकों से दो शब्द

दिवंगत श्रद्धेय, पण्डित रत्न, जैन धर्म भूषण, व्याख्यान वाचस्पति श्री प्रेमचन्द जी महाराज का चित्र आज भी मेरे नेत्रों में सजीव है। उन्नत ललाट, घनी भौहें, ब्रह्मचर्य के तेज से देदीप्यमान आनन, तेजस्वी नेत्र, उज्ज्वल गौर वर्ण और सुन्दर एवं सुघड़ शरीर। इस महान् विभूति से मेरा प्रथम साक्षत्कार सन् १९४२ में रावलपिण्डी के चतुर्मास में हुआ था। तदनन्तर ज्यों २ मैं इनके सम्पर्क में आया, मेरी श्रद्धा उत्तोत्तर बढ़ती ही गई। "अति परिचय से होता, है, अरुचि अनादर भाय" वाली उक्ति को भी आप ने अपने आचरण से असत्य प्रमाणित कर दिया था। इस का एकमात्र कारण उत्कृष्ट क्रिया का पालन करना तथा अनुशासन बद्ध जीवन का होना था। वर्त्तमान समय में साधु वर्ग जिन अपवादों का आश्रय लेकर साधु जीवन में शिथिलता लाने का प्रयास कर रहा है। आप ने उन अपवादों का आश्रय न लेकर जीवन भर साधु नियमों को कठोरता से पाला था, जिन के कारण आप का जीवन उत्तरोत्तर उज्ज्वलता को प्राप्त होता गया। आप विचारक, अद्वितीयवादी, ओजस्वी वक्ता तथा समाज सुधारक थे। इन चार शब्दों में ही इस दिव्य विभूति का जीवन साकार हो जाता है।

आप की समाज सेवाएं भुलाई नहीं जा सकतीं। समाजगत बुराइयों को देखकर आप का हृदय चीत्कार कर उठता था श्रवण संघ में एकता सूत्र स्थापित करने के लिए आप द्वारा समय २ पर जो भी प्रयास किया गया है, वह स्तुत्य है। मादड़ी, सोजत और भीनासर में समाज के संगठन के लिए जो महान् कार्य आपने किए है, उन मे कौन परिजित नहीं। समाज के संगठन के लिए जो महान् कार्य आपने किए हैं, उनसे कौन परिचित नहीं। समाज के संगठन को छिन्न भिन्न करने वाले लोगों को आप ने चेतावनी देते हुए कहा था कि :—

जो नया संगठन स्वतन्त्र रूप से कोई साधु या श्रावक कर रहा हो, वह उचित नहीं है।

संगठन के प्रति यह निष्ठा आप की प्रशंसनीय थी।

आपने अपने जीवन में कुछ आदर्शों को पूर्णतया पाला था। आप ने कभी भी अपने किसी शिष्य की अथवा श्रावक की उसके मुख पर प्रशंसा नहीं की। आप समझते थे कि मुख पर की गई प्रशंसा उसके मन में अहं को उत्पन्न कर देगी और यही अहंभाव उसका आत्मिक पतन कर डालेगा। महाराज श्री तीन चार वर्ष तक रोगी रहे। बिमारी की अवस्था में भी इस महान् विभूति ने किसी शिष्य अथवा श्रावक-भक्त के प्रशंसा के पुल बांध कर उन से सेवा कराने की आकांक्षा नहीं की।

महाराज श्री जीवन भर सावद्य प्रवृत्तियों से बचने का प्रयास करते रहे। दीन दुःखियों या सामाजिक हित के कार्यों के लिए जब भी कभी धन संग्रह कराने के लिए प्रेरणा देने के अवसर आए तो महाराज श्री ने दान की महत्ता पर सारगर्भित उपदेश दिए। अनेक अवसर ऐसे भी आए जब लाखों रुपए की राशि दान में इस महान् विभूति की प्रेरणा से इकट्ठी हुई।

कई बार श्रावकों ने महाराज श्री को कालेज खुलवाने के लिए समाज को प्रेरणा देने के लिए कहा। महाराज श्री की धारणा थी कि कालेजों में न तो धार्मिक शिक्षा ही दी जा सकती है और न ही बच्चों के चरित्र का निर्माण ही हो पाता है अतः व्यर्थ के आरम्भ और समारम्भ के कार्य के लिए प्रेरणा देने की आवश्यकता ही क्या है। इस प्रकार की सावद्य प्रवृत्तियों से आप ने यथा शक्ति अपने आप को बचाए रखा।

बिना कारण आप कभी किसी गृहस्थी के घर में भी नहीं गए क्योंकि आप जानते थे कि बिना कारण गृहस्थियों के घर जाने से साधु निन्दा का ही पात्र बनता है तथा अपने सम्मान को भी खो बैठता है।

अनुशासन में रहना आप को प्रिय था और जीवन भर आप ने अनुशासन

का कठोरता से पालन किया। इसकी रक्षा के लिए आप की वाणी का स्वर कठोर हो जाता था।

ऐसी महान् विभूति जिसका समस्त जीवन समाज सुधार तथा दीन दुःखियों के अभावों को दूर करने के लिए संघर्षरत रहा उसी के विहार और प्रचार का वर्णन है इस प्रस्तुत पुस्तक में। लेखक महोदय ने उनके उपदेशों को जन साधारण तक पहुँचाने का प्रयास किया है। बड़े २ सम्मेलनों और उत्सवों में धर्म प्रचार के नाम पर आज रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है। यदि शान्त चित्त से एकान्त में बैठ कर आप विचारें तो आप इस निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि ऐसे आयोजनों से समाज को कोई विशेष लाभ नहीं पहुँचा है। लाभ पहुँचता है तो केवल व्यक्ति विशेष को। नाम की ख्याति की लालसा निहित रहती है इन आयोजनों में। हमारे घर की दीवारें—समाज के नौनिहाल बच्चे जिन्होंने हमारे समाज की बागडोर सम्भालनी है, वे धर्म से विमुख होते जा रहे हैं। उनकी आस्था की दीवारें धराशायी हो रही हैं और धर्म प्रचार के नाम पर हम बड़े २ सम्मेलनों और उत्सवों का ढोंग रच रहे हैं, इस से बढ़ कर आत्म प्रवंचना क्या होगी। आवश्यकता है बच्चों और युवकों के लिए ऐसे साहित्य के निर्माण करने की जो उन्हें धार्मिक विचार प्रदान करे। उनके जीवन को सुसंस्कृत बनाए यह उसी की एक कड़ी है। इस विहार और प्रचार को पढ़ने से पाठकों को धर्म की झलक, आचार की झलक और उत्तम विचारों की झलक मिलेगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

इसका सम्पादन करते हुए इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि मूल लेखक के विचारों का हनन न हो। पुस्तक का सम्पादन शीघ्रता से अल्प काल में किया गया है, अतः कहीं २ भाषा आप को अटपटी भी लग सकती है! सावधानी रखने पर भी प्रूफ संशोधन में अशुद्धियों का रह जाना स्वाभाविक है। अत: उसके लिए पाठकों को जो असुविधा होगी, उसकी मैं क्षमा चाहता हूँ।

१६ यू० ए० जवाहर नगर
दिल्ली।

धनदेव कुमार "सुमन"
सम्पादक

सम्माननीय सहयोगी महानुभावों के प्रति

"विहार और प्रचार भाग दो" के प्रकाशन में मुख्य रूप से विशेष सहयोग और प्रेरणा स्यालकोट निवासी श्री खजान्चीलाल जी के सुपुत्र श्री श्रीचन्द जी मालिक फर्म इन्टरनेशनल पब्लिकेशन्स ४२, बस्ती हरफूलसिंह दिल्ली-६ से मिली है। पुस्तक के मुद्रण व्यय का उत्तरदायित्व आपने वहन किया है। इस पुस्तक में प्रकाशित चित्रों के लिए कागज तथा ब्लाकों के लिए जो खर्च हुआ है, उसका उत्तरदायित्व वहन किया है, स्यालकोट निवासी श्री रोशनलाल जैन के सुपुत्र श्री सुशील कुमार जैन ने इसके अतिरिक्त इन्होंने ३५० रु० पुस्तक में भी दिए। कागज तथा अन्य कार्यों के लिए निम्नलिखित दानी महानुभावों ने जो सहयोग तन, मन और धन से दिया है, उसके लिए मैं उनका कोटिशः धन्यवाद करता हूँ। आशा करता हूँ कि भविष्य में भी वे अपने धन का सदुपयोग धार्मिक कार्यों के हित में उदारता से करते रहेंगे।

१. भक्त श्री हुकमचन्द जैन सुपुत्र श्री कालूराम जैन गड़ी झझारा निवासी।

२. श्री रामेश्वर दास जैन सुपुत्र श्री लक्ष्मीराम जैन काछवा निवासी। — १०००)

३. श्री जम्बू प्रसाद जैन शक्तिनगर दिल्ली। — ५००)

४. श्री टेकचन्द जैन सुपुत्र श्री डोडेशाह जैन रावल पिण्डी निवासी — ३५०)

५. श्री शीतल प्रसाद जैन सुपुत्र श्री चिरंजीलाल जैन मालेर कोटला निवासी। — ३५०)

६. श्री त्रिलोक चन्द जैन सुपुत्र श्री मनोहरलाल काछवा निवासी — ३५०)

७. श्री मौजी राम जैन मोतियाखान, दिल्ली ३५०)

८. श्री प्यारेलाल धूलियाराम, पुरनिवासी ३५०)

९. श्री कश्मीरीलाल प्रकाश चन्द गुणेग्राम निवासी ३५०)

१०. श्री लालचन्द जैन देवनगर, दिल्ली यह राशि मुद्रण में ही शामिल की गई है। २०१)

११. मैसर्स श्री महावीर जैन प्लास्टिक कम्पनी सदर बजार दिल्ली इनका सहयोग जिल्द बन्धवाने में लिया गया है।

स्मरण रहे इस "विहार-प्रचार-प्रेमज्योति-आदर्श चरित्र" पुस्तक की जिल्द बन्धवाने के विषय में ऐसे विचार बनते रहे कि इस पुस्तक पर साधारण जिल्द बन्धवाई जाय या मजबूत प्लास्टिक की जिल्द बन्धवाई जाय अतः इस विषय में प्रेस वाले श्री मनोहरलाल जी से विचार विमर्श किया गया कि प्लास्टिक की जिल्द बन्धवाने में कितना खर्च आ सकता है ? उन्होंने अपना अनुमान प्रमाण बताते हुए कहा कि इस प्रकार की जिल्द बन्धवाने में चार हजार रुपये लगेंगे। इस विषय में श्री खैराती लाल जी से संपर्क किया गया उन्होंने कहा इस पुस्तक की जिल्द बढ़िया और मजबूत बन्धनी चाहिए इस जिल्द बन्धवाने के लिए जो भी अन्य दानी भाई अपनी श्रद्धानुसार आर्थिक सहयोग देंगे, उनसे पैसे मैं एकत्रित कर लूंगा और शेष जितना भी व्यय होगा उसका उत्तरदायित्व मैं स्वयं वहन करूंगा।

जिल्द बन्धवाने में आर्थिक सहयोग देने वाले महानुभावों के नाम

(१) प्रमुख सहयोगी श्री महावीर जैन प्लास्टिक कम्पनी सदर बाजार दिल्ली।

(२) कुलजसराय एण्ड सन्स—५०० रु०।

(३) मुन्ना लाल रामधारी जैन २५/१३ कमला नगर दिल्ली ४०० रु०

(४) मे: वेशनोदास चिरंजीलाल जैन स्वेदेशी मार्किट सदर बाजार दिल्ली ३०० रु०।

(५) हजारी साह हंसराज जैन १०८ वीर नगर द्रिल्ली २०० रु० ।

(६) रामलाल ३०१ अमृतसर वाले २०० रु० ।

(७) वसन्ताराम तूलोकनाथ वीर नगर २०० रु० ।

(८) ज्ञानचन्द्र द्वारकादास जैन १२५ वीर नगर दिल्ली २०० रु० ।

(९) लाहोरीमल जैन (स्यालकोट निवासी) १३५ वीर नगर दिल्ली २०० रु० ।

(१०) सागरसिंह जैन हांसीवाले शक्तिनगर दिल्ली २०० रु० ।
और २०० रु० गुप्त दान ।

प्रेमसुधा के द्वितीय भाग के द्वितीय संस्करण की ५०० प्रतियां प्रकाशित होने वाली थीं, अब भगत हुकमचन्द सुपुत्र श्री कालूराम जैन की सहायता से १००० प्रतियाँ प्रकाशित होने वाली हैं ।

सम्पादक

पंजाब केसरी, जैन धर्म दिवाकर पंडित रत्न स्वर्गीय श्री प्रेमचन्द जी महाराज का रचित गीत

(तर्ज पंजाबी)

रब्ब मिलदा गरीबी नाले, दुनियां मान कर दी है ॥टेक॥

नाहक मान करे है बन्दे, जगत के झूठे सभी ये धन्दे ।
क्यों नहीं नाम प्रभु दा लेन्दे, जेड़ा सच्चा दर्दी है ॥१॥

रह गए काम जगत के अधूरे, करने वाले हो गए पूरे ।
तृष्णा कर कर मर गए शूरे, तृष्णा कोई ना मर दी है ॥२॥

झूठी देह का मान तू कर दा, चावे पान खावे तू जरदा ।
देखो जब बन्दा है मरदा, काया चिता में जल दी है ॥३॥

ऐसा काल महा हत्यारा, इसने खाया है जग सारा ।
फिर भी करता जगत संहारा, कैसा बड़ा बेदर्दी है ॥४॥

जे कोई दान शील तप भावे, औदा जन्म मरण मिट जावे ।
अविचल जोत में जोत समावे, मौत फिर नहीं फड़ दी है ॥५॥

जे कोई चाहे रब्ब नूं पाणा, दिल से दुई को जल्द हटाना ।
है यह "प्रेम" "मुनि" का गाना, आगे तुसां दी मरजी है ॥६॥
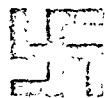
—०—

श्री महावीराय नमः

ॐ

णमो अरिहंताणं,

णमो सिद्धाणं,

णमो आयरियाणं,

णमो उवज्झायाणं,

णमो लोए सव्वसाहूणं,

एसो पंच णमोक्कारो,

सव्व-पावप्पणासणो ।

मंगलाणं च सव्वेसिं,

पढमं हवइ मंगलं ॥

यह नमोकार मंत्र:

बूटा मल मनोहर लाल नाहर (स्यालकोट वाले)

ने सप्रेम भेंट किया

प्रस्तुत पुस्तक के पढ़ने की विधि

पाठकों को पुस्तक पढ़ने से पूर्व पांच बार "श्री नवकार मंत्र" को पढ़ना चाहिए। आप इस का पठन शास्त्रवत् करें क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक में शास्त्र का ही विषय विशेष है। शास्त्र के किसी विषय को यदि आप समझ न सकें तो शास्त्रज्ञाता साधु-साध्वियों से मार्गदर्शन लेने का प्रयास करें, तभी आप यथेष्ट लाभ प्राप्त कर सकेंगे। पुस्तक को यतना के साथ पढ़ें और यतना के साथ ही रखें। आपकी यह यतना ही महापुरुषों के प्रति विनय भक्ति की अभिव्यक्ति है। विनय भक्ति द्वारा ही प्रशस्त मार्ग की उपलब्धि आपको होगी। पढ़ने के बाद विषय की गहराइयों में डूब कर चिंतन मनन कीजिए। गहराई में पैठ कर ही आप अनमोल रत्नों को पा सकेंगे। ऐसी मेरी धारणा है। पाठकों का जीवन बने, यही इसका मूल्य है।

—मुनि बनवारीलाल

प्रवेशिका

चर्तुविध श्रीसंघ का ऐसा कौन धर्मानुरागी सदस्य होगा जो बालब्रह्मचारी पंजाब केसरी पंडित रत्न शास्त्रज्ञ जैन धर्म भूषण मंत्री श्री १००८ प्रेमचन्दजी महाराज के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित न हो। क्या बालक, क्या वृद्ध, क्या युवक, क्या युवती- क्या श्रावक, क्या श्राविका, क्या साधु, क्या साध्वी सभी आपके नाम और अनुपम कार्यों से भली भांति परिचित और प्रभावित हैं। महाराजश्री जहां पधार जाते थे अथवा जहां चातुर्मास में विराजते थे, वहां के समाज में उत्साह की अनुपम लहर सी छा जाती थी। आपके प्रवचनामृत का पान करने के लिए जैन व जैनेतर जनता सदा लालायित रहती थी। यही कारण है कि आपके सारगर्भित पांडित्यपूर्ण व्याख्यान "प्रेमसुधा" के नाम से पुस्तकों के रूप में कई भागों में प्रकाशित हो चुके हैं।

महाराजश्री के सम्पूर्ण परिचय से अवगत होने की जिज्ञासा का प्रत्येक हृदय में जागृत होना स्वाभाविक ही है। संत पुरुष अपने बारे में कभी कुछ कहना नही चाहते। ऐसी स्थिति में हमें जो भी थोड़ा बहुत परिचय प्राप्त हो जाय, उसी से संतोष कर लेना चाहिए।

हां तो महाराजश्री का जन्म आज से ५७ वर्ष पूर्व संवत् १९५७ सन् १९०० में नाहन स्टेट के अत्यन्त रमणीय प्रदेश में हुआ था। महाराजश्री के पूर्वजों की चलाचल संपत्ति व पैतृकभूमि रियासत नाहन व रियासत नालागढ़ दोनों स्थानों पर थी। महाराजश्री का जन्म तो नाहन रियासत की पौटासाहब तहसील के अंतर्गत तारूवाल नामक ग्राम में हुआ था। पर आपका लालन-पालन आदि नालागढ़ स्टेट के अंतर्गत दभोटा नामक ग्राम में हुआ था।

आपकी जन्मभूमि तारूवाल ग्राम को प्रकृति अपनी सम्पूर्ण सुषमा प्रदान किए हुए है। यमुना तट पर अवस्थित इस ग्राम के प्रान्तर भाग को अनुपम वनों

की हरियाली सदा आच्छादित किए रहती है। विशाल शाल वृक्षों की पंक्तियां ग्राम के सौन्दर्य में मानो चार चांद ही लगा देती हैं। इस प्रकार प्रकृति के सौन्दर्य से परिपूरित पर्वतीय प्रदेश के पवित्र प्रशान्त वातावरण में जन्म पाकर तथा दूसरे पर्वतीय स्थान में अभिवृद्ध हो आपके अन्तर्तम में निसर्गत: विरक्ति की भावनाएं प्रारम्भ से ही प्रबुद्ध होने लगीं थीं।

नालागढ़ रियासत के अंतर्गत दमोटा ग्राम भी खूब हरा भरा और बारहों मास शस्यश्यामल रहने वाला एक मनोहर स्थान है। यह ग्राम चारों ओर की भूमि से ऊपर उठी हुई एक पहाड़ी के शिखर पर इस प्रकार अवस्थित है मानों शरीर पर उत्तुंग मस्तक सुशोभित हो रहा हो। इस ग्राम के दोनों ओर कलरव करती हुई सरिता बारहों मास प्रवाहित रहती हैं।

महाराजश्री का जन्म एक सामान्य सैनी राजपूत परिवार में श्री चौधरी गेंदामल जी के घर अनुमानत: सन् १६०० में हुआ था। आपकी माता श्रीमती साहब देवी जी भी एक बड़ी धर्मपरायण सुशील आदर्श महिला थीं। आपका बचपन का नाम बाबूराम था। तेरह-चौदह वर्ष की अवस्था में सतलुज नदी के तट पर अवस्थित रोपड़ नगरी में आपका कुछ समय के लिए आना हुआ।

वैराग्य भावना का उदय :—रोपड़ में उस समय महातपस्वी मुनिराज श्री गोविन्द राम जी महाराज वृद्धावस्था के कारण स्थानापति रूप में विराजमान थे। उसी वर्ष चरित्र चूड़ामणि बालब्रह्मचारी पंजाबकोकिल श्री मायाराम जी महाराज के सुशिष्य बालब्रह्मचारी श्री वृद्धिचन्द ची महाराज व श्री कंवरसैन जी महाराज, और श्री मामचन्द जी महाराज, ठाणा तीन का चातुर्मास रोपड़ में संपन्न हुआ। स्थानीय श्री संघ के उत्साही सदस्य चौधरी श्रीदुनीचन्द जी ओसवाल के सुपुत्र लाला लक्ष्मण दास जी भावुक बाबूराम को साथ लेकर उन दिनों श्री गोविन्दराम जी म० के दर्शनार्थ उपाश्रय में जाया करते थे। श्रीगोविन्दराम जी महाराज का जब चातुर्मास के पूर्व ही स्वर्गवास हो गया तो बालक बाबूराम ने लालालक्ष्मण दास के साथ श्रीवृद्धिचन्दजी महाराज आदि मुनिराजों के दर्शनार्थ आने का क्रम जारी रखा। इस प्रकार हमारे

चरित्रनायक भी जैन मुनिराजों के संपर्क में आये। जैसे शुभ्रवस्त्र पर कोई भी रंग अनायास चढ़ जाता है और उत्तरोत्तर वह रंग चटकीला और गहरा होता जाता है, वैसे ही बालक बाबूराम जी के निर्मल अन्त:करण पर वैराग्य की छाप बचपन में ही लग गई। देखते ही देखते वैराग्य का रंग इतना गाढ़ा हो गया कि—

आपने सब दुनियांवी रंगों को छोड़ रंगहीन निर्मल श्वेत चादर धारण कर मुनिवृत्ति को अपनाने का निश्चय कर लिया। जो वैराग्य भावना का अंकुर एक बार मानस भूमि में उग चुका था वह धीरे-धीरे पल्लवित और पुष्पित होकर कुछ ही समय में फल ले आया और परिणामस्वरूप चातुर्मास की समाप्ति होते ही पंद्रह वर्ष की अल्पवय में ही आपने मुनिराज श्री वृद्धिचन्दजी महाराज के चरणकमलों में दीक्षा ग्रहण कर ली।

स्वयं दीक्षित होने के लगभग २५ वर्ष पश्चात् आपने अपने अग्रज (सगे बड़े भाई) श्री तुलसीरामजी को भी दीक्षा दे दी।

इस प्रकार न केवल आपने स्वयं, प्रत्युत अपने परिवार वालों को भी आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलने चलाने का क्रियात्मक उदाहरण उपस्थित कर दिखाया। महात्माबुद्ध ने जिस प्रकार अपने परिवार के बड़े लोगों (पिता आदि) को दीक्षित कर उन्हें आत्म-कल्याण के मार्ग पर चलाया था। ठीक उसी प्रकार श्री प्रेमचन्द जी महाराज ने भी अपने अग्रज को दीक्षित कर "Charity Begins at Home" अंग्रेजी की इस उक्ति को "आत्मकल्याण के मार्ग पर पहले अपने घर वालों को चलाओ" इस रूप में चरितार्थ कर दिखाया। अहोभाग्यशाली है वह परिवार, वह जननी और जनक जिनकी दो-दो संतानें मुनिवृत्ति ग्रहण कर अपने और समाज के कल्याणार्थ प्रयत्नशील हो मुक्ति के प्रशस्त पथ पर चल पड़े। धन्य हैं वे लोग जो प्रचार व आत्म साधना में रत रहते हैं।

—०—

एक ज्योतिर्धर व्यक्तित्व पंजाब केसरी श्रद्धेय श्री प्रमचन्दजी महाराज

(श्री विजय मुनि साहित्य रत्न)

(जैन प्रकाश से उद्धृत)

एक महान् व्यक्तित्व जो कठोर होकर भी मृदु है, वृद्ध होकर भी विचारों में तरुण है, पुराना होकर भी जैन संस्कृति के प्रसार में नया है। वह महान् व्यक्तित्व है—"पंजाब केसरी, जैन धर्म भूषण श्रद्धेय श्री प्रेमचन्द जी महाराज।" "विचारक, अद्वितीयवादी, ओजस्वी प्रवक्ता और समाज सुधारक" इन चार शब्दों की गागर में जैन भूषण जी महाराज का विशाल जीवन सागर अन्त र्मुक्त हो जाता है। यदि पंजाब केसरी जी महाराज का इससे भी संक्षिप्त परिचय पाना हो तो मैं स्पष्ट शब्दों में कहूंगा—

"जैसा विचार वैसा उच्चार और जैसा उच्चार वैसा आचार।" न किसी प्रकार की लाग न किसी प्रकार की लपेट और न किसी प्रकार की हेरा फेरी जो विचारा वह कह दिया, जो कह दिया, वह कर दिखाया। ज्योतिर्मय जीवन में सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश, अन्धकार को वहां जगह नहीं। और सन्त भी कहा करते हैं—

और गृहस्थ भी कहा करते हैं "पंजाब केसरी बड़े ही कठोर हैं।" मैं भी इस सत्य को स्वीकार करके चलने वालों में हूं। परन्तु कुछ विचार-भेद के साथ। जीवन न सदा मृदु अच्छा, और न सदा कठोर अच्छा। श्रद्धेय पंजाब केसरीजी महाराज के जीवन को सदा कठोर मानकर चलने वाले भूल में हैं। वे कठोर हैं परन्तु व्यवहार के प्रारंभिक क्षणों में हैं। आप जरा आसन जमाकर के उनके श्रीचरणों में बैठिए आपको लगेगा कि यह व्यक्तित्व असाधारण है। उपनेत्र में से झांकते हुए तेजस्वी नेत्रों का तेज आपको हिला देगा, वाणी का प्रथम स्वर भी संभवतः आपको कठोर प्रतीत हो, परन्तु आप डरिए नहीं। कोई तत्व

चर्चा, कोई समाज चर्चा छेड़ दीजिए, जिसे आप भयावह समझते थे, वह कितना मृदु है। वस्तुतः कठोरत्व उनके हृदय में नहीं, व्यवहार में भी नहीं, वह है उनकी वाणी में। उसका एक कारण है और वह है—"स्वयं अनुशासन में रह कर चलना और दूसरों को भी वे अनुशासन की सीमा से बाहर नहीं देख सकते। अनुशासनप्रियता उनके दिव्य जीवन का सहज सुलभ गुण है उसकी रक्षा के लिए उनकी वाणी का स्वर कठोर हो जाता है। किन्तु उनका मानस सदा सरस, मृदु और मधुर है। अनुशासन की संरक्षा के लिए अभिव्यक्त होने वाली कठोरता उनका दूषण नहीं बल्कि भूषण है। भारतीय संस्कृति में सफल शासक वही है जो समय पर मृदु भी हो सकता है और समय पर कठोर भी हो सकता है। एक संस्कृत कवि के शब्दों में पंजाब केसरी जी महाराज के संबंध में कहना होगा—

"वज्रादपि कठोराणि, मृदूनि कुसुमादपि।"

वे वज्र से भी कठोर है और कुसुम से भी अधिक कोमल। उनके महान् जीवन की व्याख्या इससे अधिक सुन्दर, अन्य नहीं हो सकती।

उनके जीवन के संपर्क में जो भी एक बार आ जाता है, वह उन्हें जीवनभर भूलने की भूल नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति ने उनके प्रथम दर्शन किए हैं उससे यदि पूछा जाय तो वह यही कहेगा—"जैसा सुना वैसा देखा। नहीं, नहीं सुनने से भी अधिक देखा। सुनने से जो चित्र अधूरा था, देखने से वह पूरा बना।" उनके जीवन के संबन्ध में यह तथ्य है कि "श्रुत को दृष्ट बना कर व्यक्ति टोटे मे नही रह सकता।"

श्रद्धेय पंजाब केसरी जैन धर्म भूषण मंत्री श्री प्रेमचन्द जी महाराज के जीवन का बाहरी परिचय इस प्रकार होगा—

"सुघड़ और सुन्दर शरीर। लम्बाकद भरवाँ शरीर, उज्वल गोरा रंग। उन्नत और विशाल भाल। सिर पर दुग्धधवल केशराशि, विरल रूप में सुशोभित, नासिका समरूप में अवस्थित आर्यत्व का प्रबल प्रमाण। अनुभव

शीलता को अभिव्यक्त करती घनी भौहें। चमचमाती आंखें उपनेत्र में से पार होकर आत्मिक तेज प्रकट करती हैं। मधुरमुस्कान से भरा चेहरा। पैरों में अंगद जैसी दृढ़ता और हाथों में हनुमान जैसी अपरिमित शक्ति। जिस सिद्धान्त पर कदम रखा, फिर वहां से हटना मुश्किल' जिस काम को हाथों में उठा लिया, फिर उसे करके ही छोड़ा।" यह है उस व्यूढ़ोरस्क महावाहु पंजाब केसरी श्रद्धेय जैन भूषणजी महाराज का चलचित्र जो आज भी पंजाब, मेवाड़, मारवाड़, मालवा, महाराष्ट्र, गुजरात और थली प्रान्त में पंच वर्षीय सुदीर्घ विहार यात्रा पूरी करके भारत की राजधानी देहली में विराजित हैं।

जैसा सुन्दर आपका शरीर है उससे भी वढ़ कर सरस और मधुर आपका कोमल मानस है। उसमें प्रान्त और सम्प्रदाय के क्षुद्र घेरे नहीं हैं। उसमें तो आपको सर्वगुणग्राहिता का ही वास मिलेगा। आपका मृदुल मानस समाज की हीन दशा देख कर विचारमग्न होने लगता है। समाज के अभ्युदय में आपको कितना रस है, कितनी लगन है और आप उसके कल्याण के लिए कितने प्रयत्नशील हैं। इस बात का प्रमाण आपके सदुपदेश द्वारा संस्थापित एवं प्रचारित वेजिटेरियन सोसायटी है, जिसके माध्यम से आपने पंजाब के ग्राम-ग्राम में और नगर-नगर में इसकी शाखाएं खोलकर मांसभोजियों को निर्मांसभोजी वनाया। समाज की रक्षा के लिए आपने पंजाब में और गुजरात में जो काम किए हैं वे किसी से छुपे हुए नहीं हैं। सुधारक के रूप में आपने सभी समाजगत वुराइयों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है और आज भी आप इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। जैन धर्म और जैन संस्कृति के प्रचारकों में आपका मुख्य स्थान है। सादड़ी, सोजत और भीनासर सम्मेलनों में समाज के संगठन के लिए जो महान् कार्य आपने किए हैं उनसे कौन अपरिचित है। समाज के संगठन को सुरक्षित रखने के लिए आपने संघ विघटकों को ललकार दी है। कान्फ्रेंस द्वारा पूछे गए प्रश्नों के उत्तर में आपने प्रश्न चार के उत्तर में स्पष्ट रूप से श्रमण संघ के संगठन में सुदृढ़ आस्था व्यक्त की है और नया संगठन करने वाले श्रीयुत् डोसी जी और उनके प्रच्छन गुरुओं को स्पष्ट चेतावनी भी

दी है ।

"जो नया संगठन स्वतन्त्र रूप से कोई साधु या कोई श्रावक कर रहा हो वह.........उचित नहीं ।"

निर्भीकता आपका विशेष गुण है । संघ संगठन में विघटन की दरार डालने वाले चाहे सैलाना के श्रीयुत् डोसी जी हों या उनके पीछे रह कर विघटन करने वाले कोई मुनि हों आपकी निर्भीक चेतावनी दोनों को समान भाव से है । भला जिस संगठन के लिए आपने इतना महान् परिश्रम किया उसे यूं ही टूटने देना कैसे सहन कर सकते हैं । संगठन के प्रति यह सुदृढ़ निष्ठा आपकी वस्तुत: प्रशंसनीय है ।

आपका सर्वतो महान् गुण है, वक्तृत्व कला । आपकी भाषण शैली बड़ी ही रसीली और ओजपूर्ण है । भाषण क्या है ? शान्त एवं हास्य रस के अद्भुत संमिश्रण की सरिता ही बहने लगती है, जिसमें श्रोतागण झूम झूम करते आनंद में झूमने लगते हैं । भाषण के बीच-बीच में व्यंग करते रहना, आपके आनन्दी हृदय का सहज स्वभाव ही है । भाषा सीधी साधी, रसीली और विचार नूतन है । भावों के दुराव छुपाव को आप जरा भी पसंद नहीं करते । आपके ओजस्वी प्रवचनों का प्रभाव जनता के मानस पर अमिट रूपमें पड़ता है । अपने प्रवचनों में सिद्धान्त का विश्लेषण करके विषय को गम्भीर बनाने की कला में आप बेजोड़ हैं । आपके प्रवचन "प्रेमसुधा" के रूप में प्रकाशित हो रहे हैं । पाठक उनका अध्ययन करके भी श्रद्धेय श्री पंजाबकेसरी जी महाराज के महान् व्यक्तित्व के सम्बन्ध में बहुत कुछ ज्ञान उपार्जन कर सकते हैं । महासागर से जितना भी लिया जाय उतना ही अच्छा है ।

पाठकगण पूर्व प्रस्तुत परिचय से पंजाब केसरी श्रद्धेय श्री प्रेमचन्द जी महाराज के दिव्य जीवन की एक झलक आप देख ही चुके हैं । महाराजश्री के मुनि जीवन को हम अनायास ही दो प्रमुख भागों में विभक्त देखते हैं, प्रथम संवत् १९९० तक का मौन साधनात्मक जीवन, तथा द्वितीय संवत् १९९१ के पश्चात् का साधना सहित प्रचार व लोकोपकार मय जीवन ।

साधुजीवन स्वीकार करने के पश्चात् महाराजश्री के लगभग पन्द्रह चातुर्मास अपने प्रातः स्मरणीय गुरुदेव श्री १००८ बालब्रह्मचारी श्री वृद्धिचन्द जी महाराज के साथ ही सम्पन्न हुए। चातुर्मास हो या विहार इन पन्द्रह वर्षों की अवधि में महाराजश्री प्रतिक्षण प्रतिपल सतत साधना-तत्पर रहे। शास्त्र चिन्तन सूत्र व आगमों का अध्ययन तथा वैयावृत्य या साधु सेवा ही को आप इस अवधि में अपना प्रमुख कर्त्तव्य मानकर उसी में दत्तचित्त रहे। बात तो यह है कि जब तक कोई भी साधक अहर्निश की साधना के द्वारा स्वयं अपने में कुछ विशेष क्षमता, योग्यता और अनुभूति आदि प्राप्त न करले तब तक आत्मकल्याण के साथ-साथ लोककल्याण के प्रशस्त पथ पर निर्द्वन्द गति से अग्रसर होना बड़ी टेढ़ी खीर है।

साधु को पंचमहाव्रतधारी तो होना ही चाहिए इसके साथ ही साथ वैयावृत्य व्रतधारी तथा स्वाध्यायशील भी होना आवश्यक है। भगवान् महावीर स्वामी ने वैयावृत्य से तीर्थंकर पद की प्राप्ति जैसे महान् फल की प्राप्ति का विधान किया है। तीर्थंकर पदवी से बढ़कर और कोई पदवी विश्व में नहीं हो सकती। जिस व्रत के द्वारा वह पदवी भी प्राप्त हो जाय उसकी महिमा का कौन वर्णन कर सकता है। यही कारण है कि महाराजश्री ने अपने साधुजीवन का सुदीर्घकाल पंचमहाव्रतों के पालन के साथ ही साथ वैयावृत्य और स्वाध्याय के द्वारा आत्मशक्ति के विकास के लिए समर्पित कर दिया। और जब पंजाब केसरी की आत्मज्योति पर्याप्त प्रबुद्ध हो उठी और इतनी पूंजी एकत्रित करली गई कि उसका कुछ भाग श्रीसंघ के अन्य अंगों में भी वितरण किया जा सके तो आप आत्मकल्याण के साथ ही साथ लोक कल्याण के लिए भी कटिबद्ध हो गए।

आगामी पृष्ठों में पंजाब केसरी श्रीयुत् प्रेमचन्द जी महाराज के द्वारा विगत पच्चीस वर्षों में सम्पन्न हुई समाज सेवा संबन्धी विविध प्रवृत्तियों के दिग्दर्शन कराने का यथामति प्रयत्न किया जा रहा है। महापुरुषों के कार्य कलापों के स्मरण चिन्तन व पठन-पाठन से विचारों व भावनाओं के उदात्ती-

करण के साथ ही साथ आत्मा में नैसर्गिक उज्जवल पवित्र प्रेम की पावन मंदाकिनी बह निकलती है।

प्रिय पाठक वृन्द, आइए हम भी श्री प्रेमचन्द जी महाराज के पच्चीस वर्ष के पुनीत चरित्र सुमधुर शीतल स्निग्ध सतत प्रवाहित रस धारा का आस्वादन व अवगाहन कर अपने आपको भी उनके कर्मशील जीवन के पद चिन्हों पर चल सकने को प्रस्तुत करने के लिए प्रयत्नशील हो जायं। साथ ही साथ यह भी देखते चलें कि विगत दो युगों में हमारा चतुर्विध श्रीसंघ साधु साध्वी और श्रावक-श्राविकाओं का समाज प्रगति पथ पर अग्रसर होता हुआ कहां तक पहुंचा है। उसने इन वर्षों में क्या उपार्जित किया है और क्या खोया है क्योंकि आत्मालोचन भी प्रत्येक श्रीसंघ के सदस्य का वैयक्तिक और सामाजिक परम प्रमुख कर्त्तव्य है।

विहार और प्रचार की

अनुक्रमणिका

प्रेम ज्योति

भारत की महातपस्विनी भूमि ने समय-समय पर ऐसे कर्मठ योगी, ऋषियों-महर्षियों को जन्म दिया है, जो अपने जीवन को साधना के सांचे में ढाल कर पूरे संसार के लिए प्रकाश-स्तंभ बने हैं। जिस प्रकार रात्रि के घने अंधकार में समुद्र के अथाह जल को पार करने के लिए समुद्री मार्ग के आकाश दीप (प्रकाश स्तंभ) जहाज के लिए सही मार्ग प्रदर्शन करते हैं, उसी प्रकार भौतिकवाद के माया-प्रपंचों में फंसे प्राणियों को इन साधु संतों के उपदेश सही मार्ग दिखाने के लिए प्रकाश स्तंभ सिद्ध हुए हैं। इस भारत भूमि के पावन आंचल में अनेकों संस्कृतियाँ फूली और फली हैं, जिनमें जैन श्रमण संस्कृति अपना एक अलग तथा विशिष्ट स्थान रखती है। अलग इसलिए कि श्रमण संस्कृति में जाति-पांति, ऊंच-नीच, सांप्रदायिकता आदि को कोई स्थान नहीं दिया गया है। विशेष इसलिए कि यहां जीवन को सूक्ष्म-अति सूक्ष्म गहराइयों में पैठने के लिए तैयार किया जाता रहा है। यही कारण है कि शास्त्रकारों ने इस संस्कृति के संगठन को बालू के संगठन का नाम नहीं दिया, जो वायु के वेग से टूट कर नित्य-प्रति अपना रूप बदले। जो खुद ही बदल जाते हैं, वे दूसरों को क्या बदलेंगे ? अतः जैन श्रमण संस्कृति को पत्थर की मजबूत शिला के संगठन का नाम दिया गया है, जो आंधी, पानी, वर्षा, तूफान की असंख्य मारों को झेल कर भी अपने स्थान से नहीं हिली है।

आज से ढाई हजार साल पहले जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान श्री महावीर ने जैन श्रमणों के लिए जिन नियमों और सिद्धांतों का प्रतिपादन किया था, उन को अपने जीवन में उतार-उतार कर उस पुरानी ठोस परंपरा को यथाशक्ति कायम रखने में लीन विशाल श्रमणसंघ आज हमारे सामने अतीत के गौरव को लिए अडिग खड़ा है।

भगवान महावीर ने अपने साधु संतों को कई नामों की पदवियों से विभूषित किया है, जिन में एक शब्द है अणगार। वास्तव में जैन धर्म की आधार

शिला ही लोक परलोक कल्याण की भावना पर आधारित है। इसलिए यह अणगार शब्द इन से बहुत ही मेल खाता है। अणगार ? जिस का कोई एक घर नहीं। पूरा आर्यावर्त ही जिस का विश्राम स्थल है, ऐसा अणगार पूरे संसार को अपना समझ कर दुनियाँ के राग रंग से रहित जीवन बिताने की प्रतिज्ञा ले कर गांव-गांव नगर-नगर में घूमता हुआ प्राणी मात्र को भगवान महावीर का संदेश सुनाता है। उसके जीवन में बिहार, पद-यात्रा एवं विचरण शब्द पूरे और खरे उतरते हैं। तपस्वी अणगार अपने पांवों से चलते हुए चप्पा-चप्पा धरती को अति सूक्ष्मता से निहारते हैं ताकि हर छोटी से छोटी और बड़ी से बड़ी आबादी में रहने वाले धरती के प्राणियों से वे सम्पर्क पैदा कर सकें और भारत की तपोमयी भूमि मां के आंचल को अपने त्याग और कठिन तपश्चर्या के फूलों से भर सकें।

इन महान साधु-संतों के बिहार और धर्म-प्रचार के कार्य, आने वाली पीढ़ियों के लिए वरदान सिद्ध हुए हैं। इन संतों के ये स्मृति चिह्न हमारे लिए प्रेरणास्रोत के रूप में विद्यमान रहें। इसी बात को दृष्टिगत रख कर जैन भूषण पंजाबकेसरी श्री प्रेमचन्द जी महाराज के बिहार-प्रचार का प्रथम भाग विक्रमी संवत् २०१४ वीर संवत् २४८४ और ईस्वी सन् १९५७ में धर्मप्रेमी समाज के हाथों में पहुंचा था। उस के लिखवाने का निमित्त कारण क्या बना? यह भी महाराज श्री के उग्रविहारी संयमी जीवन की एक रोचक घटना है।

विक्रमी संवत् २०१२ में पंजाबकेसरी श्री प्रेमचंद जी महाराज का चातुर्मास जोधपुर में था। इसी चातुर्मास काल में महाराज श्री के प्रवचनों का संग्रह प्रेमसुधा नामक द्वितीय भाग छपा था। उस समय महाराज श्री साधु-सम्मेलन में भाग लेने के लिए पंजाब से बिहार करके भिवानी, किसनगढ़, अजमेर ब्यावर, पाली आदि स्थानों को-फरसते हुए (घाणेराव) सादड़ी सम्मेलन में सम्मलित हुए थे। सादड़ी सम्मेलन-के-पश्चात् आप महाराणा प्रताप सिंह की प्यारी जन्म-भूमि मेवाड़ में पधारे। यहां से उदयपुर आदि क्षेत्रों

को फरसते हुए आप मध्य प्रदेश के रतलाम नगर में पधारे। यह चातुर्मास यहां बिता कर आप सोजत सम्मेलन में पहुंचे और सोजत सम्मेलन समाप्त होने के पश्चात् बम्बई पधारे और कान्दावाड़ी क्षेत्र में चातुर्मास किया। इस के बाद सौराष्ट्र के राजकोट नगर में आपने चातुर्मास किया। यह चातुर्मास सम्पूर्ण कर के ग्राम-ग्राम विचरते हुए आप जोधपुर पहुंचे और वहां चातुर्मास किया। यहां तक विहार-प्रचार 'प्रेमसुधा' में प्रकाशित हो चुका है।

जोधपुर का चातुर्मास सम्पूर्ण करके आप प्रतिष्ठित क्षेत्र ब्यावर में पधारे। वहां पर उस समय बहुत से मुनिराज पहले से ही विराजमान थे, जिन में वर्तमान श्रमणसंघ के द्वितीय पट्टधर श्री आनन्द ऋषि जी, उपाध्याय श्री प्यारचंद जी म० और श्री मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज प्रमुख थे। वहां पर परस्पर विचार-विमर्श के पश्चात् श्री प्रेमचन्द जी महाराज ने बीकानेर सम्मेलन में शामिल होने के लिए विहार किया। मेड़ता, नागौर आदि क्षेत्रों को फरसते हुए आप बीकानेर पधारे। बीकानेर का साधु सम्मेलन सम्पन्न होने के पश्चात् ब्यावर के भाइयों की भावपूर्ण विनती स्वीकार करते हुए आपने ब्यावर के लिए विहार किया। उस समय ब्यावर के श्रावकों ने ब्यावर पधारने तक के लिए एक भाई उनके साथ आने के लिए कर दिया था। बीकानेर से आप नागौर पधारे। ब्यावर के श्रावकों ने जिस भाई को महाराज श्री के साथ किया था, वह एक अच्छा लेखक भी था। इस से पूर्व यही भाई आज्ञानुयायी श्री कस्तूरचंद जी महाराज की सेवा में रह चुका था। उन दिनों नागौर में जैनधर्म दिवाकर श्री चौथमल जी महाराज के साधु श्री कस्तूरचंदजी महाराज तथा श्री प्यारचंद जी महाराज विराजमान थे। उन्होंने महाराज श्री प्रेमचंद जी से निवेदन किया कि जो भाई इस समय आप के पास हैं, वे एक अच्छे लेखक हैं। आप उन से लेखन का कार्य भी करवा सकते हैं। श्री प्रेमचंद जी महाराज ने कहा, "मेरे पास इस समय लेखन का तो कोई विशेष कार्य नहीं है। हां, मैं आप लोगों के इस परामर्श पर विचार करूंगा।" इस विषय पर फिर महाराज श्रीने मेरे से (श्री बनवारीलाल जी से विचार विनिमय किया और कहा

कि मेरे पास ऐसी कोई डायरी नहीं है, जिस से विहार-प्रचार को पुस्तकाकार का रूप दिया जा सके।" इस पर मैंने महाराज श्री से विनती की कि जब से मैंने दीक्षा धारण की है, तब से लेकर आज तक जितने भी चातुर्मास आपने किये हैं और जहां-जहां भी विचरण किया है, मैं उनका विवरण अपनी स्मृति के अनुसार लिखवा सकता हूँ। यह सत्य है कि मैं छद्मस्त होने के कारण भूल भी कर सकता हूँ। कई महत्वपूर्ण प्रसंग छूट भी सकते हैं। मेरे इस कथन पर विचार करते हुए महाराज श्री ने अपना विहार-प्रचार लिखवाने की आज्ञा प्रदान की। तब मैंने नागौर शहर में वैसाख मास से श्रावण मास तक विहार-प्रचार लिखवाया और व्यावर पहुंच कर समाप्त कर दिया।

महाराज श्री का यह विहारकालीन चातुर्मास इस क्षेत्र में अंतिम चातुर्मास था क्योंकि व्यावर से विहार कर के महाराजश्री अजमेर, किसन गढ़, जयपुर अलवर आदि क्षेत्रों को फरसते हुए आगरा पधारे और इस क्षेत्र के आस पास के जो भी क्षेत्र महाराज श्री ने फरसे वे प्रथम और अंतिम सिद्ध हुए क्योंकि इसके बाद वे फिर कभी उधर न जा सके। हां, तो आगरा से विहार कर के ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए महाराज श्री दिल्ली पधारे और सब्जीमंडी क्षेत्र के स्थानक में चातुर्मास किया। यह चातुर्मास विक्रमी संवत् २०१४ का था।

इसी चातुर्मास में (सब्जीमंडी स्थित उपाश्रय में) मैंने अपने पूज्य, गुरुदेव से श्री भगवती सूत्र के सत्तक १८ उद्देसा 'प्रथम अप्रथम चरम अचरम' नामक उद्देसा जिस में कि चौदह बोल प्रथम अप्रथम और चौदह बोल चरम अचरम के हैं, उनके विषय में प्रश्न किया कि शास्त्र में स्थान-स्थान पर प्रथम, अप्रथम शब्द आये हैं। यथा :—

"प्रथम समय का वीतरागी अप्रथम समय का वीतरगी चरम समय का वीतरागी, अचरम समय का वीतरागी। प्रथम समय का संयोगी केवली, अप्रथम समय का अयोगी केवली। चरम समय का संयोगी केवली, अचरम समय का अयोगी केवली। इसी प्रकार प्रथम समय का अयोगी केवली, अप्रथम समय का अयोगी केवली, चरम समय का अयोगी केवली, अचरम समय का अयोगी

केवली। इसी प्रकार सिद्धों के विषय में भी समझ लेना चाहिए।" इस विषय को मुझे सरल कर के समझाइये।

मेरी इस विनती पर महाराज श्री ने इस कठिन विषय को बड़े सरल ढंग से मुझे हृदयंगम करवाया। गुरुदेव बोले :—

"प्रथम समय के वीतरागी का वीतराग भाव आने पर एक समय व्यतीत हो, वह प्रथम समय का वीतरागी होता है। काल के छोटे से छोटे भाग की गिनती समझने के लिए शास्त्रकारों ने बताया है कि आँख की पलक झपकने में असंख्य समय व्यतीत हो जाते हैं। अर्थात् इस व्यतीत होते हुए काल के अति लघु भाग को 'समय' के नाम से सम्बोधित किया गया है। अतः जो एक समय से अधिक तक वीतरागी अवस्था में रहा हो, वह अप्रथम समय का वीतरागी होता है। अचरम वीतरागी उसे कहते हैं जो वीतराग की अंतिम अवस्था तक न पहुंचा हो। इसी प्रकार चरम समय का वीतरागी उसे कहते हैं जिसे सिद्धावस्था तक पहुंचने में केवल एक समय (ऊपर बताये गये काल के अति लघु भाग) का व्यवधान बाकी हो। अर्थात् चौदहवें गुणस्थान (अयोगी केवली) तक पहुंचने में केवल एक समय की देरी बाक़ी हो। इसी प्रकार संयोगी अयोगी केवली के विषय में भी समझना चाहिए। अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में आये एक समय व्यतीत हुआ हो, वह प्रथम समय का संयोगी केवली कहलाता है तथा जिसे संयोगी अवस्था में आये एक से अधिक समय व्यतीत हो चुका हो, अप्रथम समय का संयोगी केवली कहलाता है। अर्थात् तेरहवें गुणस्थान में आये जिसे एक 'समय' से अधिक हो चुका हो।

चरम समय का संयोगी केवली उसे कहते हैं, जिसे संयोगी केवली अवस्था से उपयोगी केवली अवस्था में जाने के लिए केवल एक समय शेष रह गया हो। अर्थात् तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान तक जाने में केवल एक समय बाकी रह गया हो।

अचरम समय का संयोगी केवली उसे कहते हैं जिसे संयोगी केवली अवस्था तक पहुंचने में एक से अधिक 'समय' शेष हो। अतः जो अन्तिम समय का

संयोगी केवली है, वही चरम समय का संयोगी केवली है। चौदहवें गुणस्थान के अयोगी केवली के विषय में भी उपयुक्त चारों बोल इसी प्रकार हैं।

सिद्धों के विषय में :—

अप्रथम समय का सिद्ध—क्योंकि सिद्ध अचरम ही होते हैं।

अनन्तर समय का सिद्ध—

परम्परा समय का सिद्ध। (इस के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए भगवती सूत्र सत्तक १८ उद्देसा प्रथम में देखना चाहिए। उस में चरम अचरम के विषय में तथा अप्रथम के विषय में विस्तृत जानकारी मिलती है।)

राजस्थान में श्रमण संघ के तीन सम्मेलन हुए। प्रथम सम्मेलन (घणे राव) सादड़ी में हुआ। इस सादड़ी सम्मेलन में श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमणसंघ की स्थापना हुई और दूसरा सम्मेलन राजस्थान के सोजत नगर में हुआ। इस सम्मेलन में स्थानकवासी समाज के विभिन्न संप्रदायों में परस्पर जो मतभेद थे, उन के विषय में चर्चा हुई थी, किन्तु कोई सर्वसम्मत निर्णय नहीं हो पाया था। अतः तब यह निर्णय किया गया कि स्थानकवासी समाज के सभी सम्प्रदायों के प्रमुख संतों का अगला चातुर्मास किसी एक ही स्थान पर होना चाहिए ताकि स्थानकवासी श्रमण संघ के साधुओं की एक समाचारी तथा एक प्रतिक्रमण निर्धारित किया जा सके। बाद में पाँच प्रमुख संतों के नाम लिए गये—उपाचार्य श्री गणेशी लाल जी महाराज, बहुश्रुत श्री समर्थ मल जी महाराज, व्याख्यान वाचस्पति श्री मदन लालजी महाराज, जैन जगत के कवि शिरोमणि श्री अमरचंद जी महाराज, श्रद्धेय श्री हस्तिमल जी महाराज और श्री आनन्दऋषिजी महाराज। इन सभी संतों का चातुर्मास जोधपुर (राजस्थान) में मनाया गया। चातुर्मास काल में साधु समाचारी के विषय में इन संतों में परस्पर विचार-विमर्श होता रहा, लेकिन वे किसी अन्तिम निर्णय पर नहीं पहुंच सके। अतः इस के बाद किसी सर्वसम्मत निर्णय पर पहुँचने के लिए भीनासर में तीसरा सम्मेलन रखा गया, जिसमें पूर्व से चले आ रहे साम्प्रदायिक मतभेदों पर

विचार करके कुछ निर्णय लिये जा सकें। जो उत्साह सादड़ी सम्मेलन में था वह सोजत संमेलन में न रहा और जितना उत्साह सोजत सम्मेलन के वक्त था, वह भीनासर सम्मेलन में न रहा। उसके बाद तो आगे कमजोरी बढ़ती ही गई। इन सोलह सत्रह सालों की अवधि में क्या-क्या परिवर्तन हुए, ये सभी बातें आज के श्रमणसंघ के सामने हैं। आज का श्रमणसंघ जिस स्थिति में हमारे सामने है, वह बड़ी जीर्ण शीर्ण अवस्था है। ऐसा किन कारणों से हुआ ? मेरे विचार से तो इसके दो कारण हो सकते हैं। साधु समाचारी का अलग-अलग होना तथा एकता का अभाव।

भगवान महावीर ने स्थानांगसूत्र के पांचवें स्थान में फरमाया है कि जिस आचार्य के गच्छ में श्रद्धा, धारणा, परूपणा और फरसना तथा छोटे बड़े साधु संतों की दीक्षा, पर्याय के विषय में वंदना और विनय का अभाव होता है, उस आचार्य के गच्छ का विच्छेद अथवा नाश होता है। भगवान के वचन सार्थक होते हैं।

मैंने ईस्वी १९५३ में बम्बई चातुर्मास काल में ४७ प्रश्न समाचार-पत्रों में निकलवाये थे, जिनका विषय था कि बिजली सचित्त है या अचित्त ? अन्य प्रश्न समाचारी के विषय में थे, जिन में एक प्रश्न यह था कि जिस आचार्य के गच्छ में या संघ में श्रद्धा, परूपणा, फरसना एक नहीं, वह गच्छ-संघ सफलतापूर्वक चल सकता है या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर आज तक नहीं मिला। मेरे इस प्रश्न का समाधान भगवान ने पहले ही शास्त्रों में दिया है। निमित्त कारण गच्छ में दरार पड़ने के अनेक हो सकते हैं; जैसे कि आचार्य, उपाचार्य की दो धाराएं, साधुओं के निष्क्रमण का पाली काण्ड, व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी तथा श्री ज्ञान मुनि का कटु पत्र व्यवहार तथा श्री मदनलाल जी महाराज का प्रधान मंत्री पद से त्याग पत्र, श्री उपाचार्य गणेशी लाल जी महाराज तथा मरुधर केसरी जी का पारस्परिक विचार संघर्ष, लुधियाना तथा उपाचार्य का पत्राचार संबंध, दिल्ली का विश्वधर्म सम्मेलन और उपाचार्य जी का यह घोषणा पत्र कि जो साधु साध्वी ध्वनि यंत्र से

वोलेंगे वे श्रमणसंघ से पृथक् समझे जाएँगे इत्यादि ।

आचार्य तथा उपाचार्य की वे दो धाराएं क्या थीं ? उन धाराओं पर चर्चा हुई । आचार्य श्री की सम्मति वाली धारा पास हुई, उपाचार्य जी वाली नहीं । इस धारा में यह विषय वर्णित था कि साधुओं के विषय में जो निर्णय आचार्य श्री देंगे, वह सर्वमान्य होगा अथवा निर्णय के जो अधिकार उपाचार्य को आचार्य श्री द्वारा दिये गये हैं उन्हीं का उपाचार्य जी प्रयोग कर सकते हैं। उपाचार्य श्री अपनी इच्छा से कोई नया निर्णय अपने आप देने के अधिकारी नहीं होंगे।

भीनासर साधु संमेलन की कार्यवाही में वे दोनों धाराएं प्रधान मंत्री श्री मदनलाल जी महाराज के नाम से छपी थीं। भीनासर साधु सम्मेलन से वापिस आते हुए संत नागौर शहर में ठहरे। वहीं पर साधु संमेलन की कार्य वाही जो जैनप्रकाश में प्रकाशित हुई थी, साधुओं के पढ़ने में आई। उसमें आचार्य श्री और उपाचार्यश्री की दोनों धाराएं मौजूद थीं। उस समय वहां पर (नागौर में) बहुत से प्रतिनिधि उपस्थित थे, जिन में श्री कस्तूरचंद जी, एवं श्री प्यारचंद जी महाराज भी थे। श्री प्रेमचंद जी ने उन से इन दो धाराओं के विषय में पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि संमेलन में तो एक ही धारा पास हुई थी। जैनप्रकाश में गलत छापा गया है।

महाराज श्री प्रेमचंद जी नागौर से बिहार कर के कुच्चेरे पधारे। वहां कवि श्री अमरचंद जी महाराज पहले से ही विराजमान थे। कुछ दिनों बाद श्री मदनलाल जी (प्रधान मंत्री जी) भी पधार गये। श्री प्रेमचंद जी ने इस विषय में उन से जानकारी ली और पूछा कि जब संमेलन में एक धारा पास हुई थी तो जैनप्रकाश मे दोनों धारायें कैसे प्रकाशित हुई ? श्री मदन लाल जी ने उत्तर दिया कि साधु संमेलन में इन दोनों धाराओं पर चर्चा तो चली थी, पर कोई निर्णय नही हुआ था। महाराज श्री प्रेमचंद जी ने पत्र व्यवहार द्वारा प्रतिनिधियो से पूछा कि संमेलन में दोनों धारायें पास हुई थीं या एक ? प्रतिनिधियों की तरफ से उत्तर आया कि जितने अधिकार आचार्य श्री उपाचार्य श्री को दे वे उतने ही अधिकारों का प्रयोग कर सकते हैं। अर्थ इसका

यह हुआ कि साधुओं के विषय में अन्तिम निर्णय आचार्य का होगा या फिर उन्हीं (आचार्य) के आदेश पर उपाचार्य निर्णय देंगे। उपाचार्य अपनी तरफ से कोई कानून बनाने अथवा स्वतंत्र निर्णय देने के अधिकारी नहीं होंगे।

जब सोजत सम्मेलन चल रहा था तो उस समय सब्जी के सचित्त-अचित के विषय में भी चर्चा चली थी। महाराज श्री प्रेमचंद जी उन दिनों काफी अस्वस्थ थे, अतः वे संमेलन में भाग नहीं ले पाये। जिस स्थान में संमेलन हो रहा था, उस के सामने के ही मकान में वे ठहरे हुए थे। अतः जब कभी विचार-विमर्श की आवश्यकता पड़ती थी तो साधु वहीं आकर उन के विचार जान लेते थे। हाँ, तो उन दिनों सब्जी के विषय में चर्चा कई दिनों तक चली थी। प्रतिनिधियों की तरफ से श्री मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी श्री प्रेमचन्द जीमहाराज के पास आये और बोले, "अभी तक सब्जी के विषय में कोई निर्णय नहीं हो सका। इस विषय में आप का क्या विचार है?" तब महाराज श्री प्रेमचंद जी ने कहा, "शास्त्रों में स्थान-स्थान पर लिखा है कि साधुओं को शस्त्र परिणित वस्तु लेनी है। मेरे विचार से इस विषय का खुलासा यह होना चाहिए कि जिस चीज से जो वस्तु परासुक हो जाय अर्थात् निर्जीव हो जाय, उस का वही शस्त्र है। अतः शास्त्रानुसार ऐसा ही शब्द होना चाहिए। साधु जितनी भी सूखी चीजें लेते हैं, उनके विषय में मतभेद चल रहा है। जैसे बादाम, किसमिस (मेवा अन्य प्रकार का) इत्यादि। ये चीजें तली हुई हों अथवा कटी हुई तथा फलों में केला, आम, खरबूजा आदि शस्त्र परिणित ही साधुओं को लेने चाहियें अन्यथा नहीं।" इन उपरोक्त बातों को महाराज श्री के सामने स्वीकार कर के श्री मरुधर केसरी मिश्रीमल जी समेलन में वापस गये और वहाँ उपस्थित प्रतिनिधियों को सूचित किया कि पंजाब केसरी श्री प्रेमचंद जी ने कहा कि है 'शस्त्र परिणित' यह शब्द रखना चाहिए। यह शब्द शास्त्रानुसार है। इस से किसी को कोई मतभेद नहीं होना चाहिए।

इस बात की वहाँ उपस्थित सभी प्रतिनिधियों ने स्वीकृति दे दी। इस पर जो भी साधु बादाम, किसमिस आदि एवं फलों में केला आदि लेते थे,

करने वाले संरक्षक व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज थे।

महाराज श्री प्रेमचंद जी ने खड़े हो कर सिंह गर्जना की, "क्या श्रमणों की यही संस्कृति है?" उन की इस सिंह गर्जना को सुन कर संमेलन में उपस्थित सभी प्रतिनिधि निरुत्तर हो गये। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। साधु सम्मेलन की समाप्ति के बाद कई प्रमुख साधुओं ने श्रमणसंघ के विषय में अपनी-अपनी भावनायें व्यक्त कीं। महाराज श्री प्रेमचंद जी ने भी प्रवचन किया, जिस में उन्होंने कहा कि संगठन दो प्रकार का होता है। एक पत्थर के समान और दूसरा बालू (रेत) के ढ़ेर के समान। पत्थर की किस्म का जो संगठन होता है उस में विरोधी तत्वों के विरोध से कोई हलचल नहीं होती, किन्तु जो बालू की किस्म का संगठन होता है, वह कभी स्थायी नहीं होता, क्योंकि उसकी संगठन शक्ति को क्षीण करने के लिए किसी ठोस विरोध की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। हम ने प्रत्यक्ष देखा है कि बालू का ढ़ेर प्रातःकाल इस तरफ है तो शाम को दूसरी तरफ। कहने का अभिप्राय यह है कि महाराज श्री ने जो यह फरमाया था, "श्रमण संघ का आज तक का संगठन बालू के ढ़ेर के समान है, पत्थर की किस्म का नहीं। बालू के ढ़ेर को आंधियें उड़ा सकती हैं, पत्थर को नहीं।" यह कथन बिल्कुल सही उतरा। महाराज श्री प्रेमचंद जी ने शस्त्र परिणित शब्द रखा था, हेरा फेरी के पश्चात् भी भीनासर संमेलन में प्रतिनिधियों को यही शब्द रखना पड़ा तथा महाराज श्री ने अपने व्याख्यानों में संगठन के विषय में बालू तथा पत्थर का जो उदाहरण दिया था, वह भी श्रमणसंघ के विषय में सार्थक साबित हुआ। उस समय श्रमणसंघ में जो बड़ी-बड़ी सम्प्रदायें थीं, वे अपनी अलग संप्रदाय बना कर श्रमण संघ से पृथक हो गईं। उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी महाराज का बहुत बड़ा संघ श्रमण संघ से पृथक हो गया। श्री हस्तीमल जी महाराज, श्री पन्ना लाल जी महाराज श्रमण संघ से पृथक हैं। अतः आज जो श्रमण संघ चल र[illegible] वह अति जीर्ण शीर्ण स्थिति में चल रहा है।

आपसी मनमुटाव किसी भी मजबूत संघ को तोड़ने में बड़े स[illegible] होते हैं। उपाचार्य श्री गणेशीलाल जी तथा मरुधर केसरी

दिल्ली चातुर्मास
(संवत् २०१४)

विक्रमी संवत् २०१४ में महाराज श्री प्रेमचन्द जी का चातुर्मास दिल्ली के सब्जीमंडी स्थित क्षेत्र में था। उस चातुर्मास काल में महाराज श्री को श्री उपाचार्य जी की तरफ से एक घोषणा पत्र मिला। जिसमें लिखा था कि जो साधु, साध्वी बिना निर्णय हुए ध्वनि यंत्र पर बोलेंगे, वे श्रमण संघ से पृथक् माने जायेंगे। महाराज श्री प्रेमचन्द जी ने अपने उत्तर में लिखवाया कि पत्र आपका मिला। आपने ध्वनि यंत्र के विषय में जो घोषणा की है, इस विषय में आचार्य श्री तथा उपाचार्य श्री का निर्णय श्री महावीर जयन्ती से पहले हो जाना चाहिए। यदि तब तक कोई निर्णय न किया गया तो महावीर जयन्ती के बाद मैं ध्वनि यंत्र पर बोलने में स्वतंत्र हूं। इस से पहले मैं ध्वनि यंत्र पर नहीं बोलूंगा।

यह चातुर्मास समाप्त करके आप ने विहार किया और तिमार पुर पहुंचे। वहाँ दो तीन दिन धर्म प्रचार कर के फिर वापस सब्जी मंडी पधारे। यहाँ पर करौल बाग के भाइयों ने विनती की। महाराज श्री ने स्वीकृति दे दी। दूसरे दिन जैसे ही महाराज श्री ने विहार किया, करौल बाग के भाई वहां पहुंच गये और महाराज श्री रोहतक रोड़ स्थित श्री गोपीमल की कोठी की उपरि मंजिल में ठहरे। दो दिन उसी कोठी के सामने व्याख्यान हुआ। बाद में लाला इन्द्रसेन की कोठी के स्थान पर जो कि पहले मैदान के रूप में था, पंडाल बनाया गया और महाराज श्री का व्याख्यान प्रारम्भ हुआ। तत्पश्चात् श्री फूलचंद जी महाराज भी वहीं पधार गये। उनका भी व्याख्यान साथ २ होता रहा। उसके पश्चात् अजमल खाँ पार्क एरिया कोठी नं० ६ जहाँ श्री फूलचंद जी महा-

कि भगवान् महावीर के संदेश को गांव-गांव नगर-नगर पैदल घूम-घूम कर जनता तक पहुंचाने वाला यह संत अपने पावन चरण हमारी धरती पर भी रखे। कई गाँवों के श्रावक जब इकट्ठे ही महाराज श्री को विनती करने चले आते तो जिस गांव के लिए महाराज श्री पहले स्वीकृति दे देते थे, उन श्रावकों की आँखों में ऐसी चमक आजाती थी, जैसे किसी भोले-भाले सरल हृदय बालक ने अपनी मनवांछित वस्तु अपने भाई बंधुओं से पहले प्राप्त कर ली हो। हां; तो सरायलुहारा में जब श्री प्रेमचंद जी महाराज के प्रवचनों की धूम मच रही थी तो उसी समय बड़ौत और हिलवाड़ी के श्रावक संघ ने भी आकर महाराज श्री को अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने की विनती की। महाराजश्री ने दोनों ही संघों को स्वीकृति दे दी।

सरायलुहारा से विहार करके जब महाराज श्री हिलवाड़ी की ओर चले तो हिलवाड़ी की बिरादरी रास्ते में ही आ पहुँची। हिलवाड़ी गांव के स्थानक में पहुँच कर महाराज श्री ने मंगल पाठ सुनाया। लोग अपने घरों को चले गये। इसके बाद महाराजश्री ने दो तीन दिन यहां ठहर कर व्याख्यान दिया और फिर बड़ौत के लिए विहार कर दिया।

यमुना पार के क्षेत्र में गांव थोड़ी-थोड़ी दूरी पर छिटके हुए हैं। इसके अतिरिक्त कई-कई गांव तो इतने पिछड़े हुए हैं कि आधुनिक युग में यात्रा का अति महत्वपूर्ण साधन रेल भी वहां तक नहीं पहुँच पाई है। कई-कई मील अन्य साधनों द्वारा चल कर यहाँ के लोग रेलवे स्टेशन तक पहुंच पाते हैं। ऐसे पिछड़े हुए गांवों में जहां अशिक्षा और अज्ञान का घना कुहरा छाया हुआ था, महाराज श्री ने पैदल चलते हुए वहाँ की चप्पा-चप्पा धरती से मैत्री सम्बन्ध जोड़ा। आहार-पानी के निमित्त घर-घर में जा कर वहां की जनता को जैन साधु की कठिन जीवनचर्या का परिचय दिया। केवल भाषणों द्वारा नहीं, खुद उसी चर्या का पूर्ण आचरण करते हुए।

हिलवाड़ी से विहार करके महाराजश्री बड़ौत की तरफ चले ही थे कि बड़ौत की बिरादरी के लोग भारी संख्या में आ पहुंचे। बड़ौत के स्थानक में पहुंचकर

कर सकता, और जब तक गुरु के दिल में शिष्य के लिए आत्मीयता न जागे तब तक वह हृदय की हूक से शिष्य को ज्ञान देने में समर्थ नहीं हो सकता। इसलिए विनय विद्यार्थी का सबसे पहला मूल गुण है।

कोहा—क्रोध—जो बालक क्रोधी होगा, वह गुरु द्वारा गलती बताये जाने पर किंचित् कटुक शब्द बोलने पर गुस्सा करेगा। अतः उसके ज्ञान सीखने में व्यवधान पड़ेगा। इसलिए क्रोधी बालक विद्याध्ययन करने में आगे नहीं बढ़ सकता।

पमायेण—प्रमाद—ज्ञानवर्द्धन करने में सबसे बड़ा रोड़ा अटकाने वाला प्रमाद है। एक कहावत है कि सोते को तो सारा जग जगावे पर जागे को कौन जगावे? प्रमादी के शरीर में स्फूर्ति का अभाव होता है। ज्ञानार्जन करने की इच्छा भी होती है परन्तु वह अपनी इंद्रियों के अधीन होकर अन्य कामों में फंस जाता है, जिससे विद्या प्राप्त करने से वंचित रह जाता है, इसलिए विद्यार्थी को प्रमाद नहीं करना चाहिए।

रोगेण—रोगी—रोगी बालक भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर पाता क्योंकि उसको रोग से ही छुटकारा नहीं मिलता। कभी सिर में दर्द, कभी पेट में दर्द, और कभी कोई रोग आक्रमण कर बैठता है। अपने ढीले ढाले शरीर के कारण वह बालक कभी भी शिक्षा ग्रहण नहीं कर सकता।

आलस्येण—आलसी—आलसी बालक भी शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता क्योंकि वह उद्यम से विमुख हो जाता है। जो बच्चे उद्यम नहीं करते वे संसार की परम कल्याणकारी वस्तुओं से वंचित रह जाते हैं। संस्कृत के किसी कवि ने कहा है—"आलस्येण कुतो विद्या, अविद्येण कुतो धनम्" अतः आलसी बालक अति श्रेष्ठ गुरुजनों के अति निकट रह कर भी विद्या रूपी अमूल्य धन को प्राप्त करने में असमर्थ रहता है।

जो विद्यार्थी विद्या प्राप्त करने के सच्चे इच्छुक हैं, उन्हें सबसे पहले इस गाथा में वर्णित पांच स्थानों में से पहले स्थान 'थम्भा' शब्द पर विचार करने की जरूरत है। मान बहुत बुरी चीज है, अतः विद्यार्थी के लिए मान को

परपरिवाद—अपने को दूसरों से श्रेष्ठ मानना। दूसरों की निन्दा करना, अवगुणवाद बोलना।

उत्कर्ष—मान से अपनी समृद्धि और ऐश्वर्य को प्रकट करना।

अपकर्ष—दूसरों को नीचा दिखाना, सदा अपनी क्रिया को ऊँचा बताना।

उन्नत—मान का ही एक नाम उन्नत भी है। उन्नति करना मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण कार्य है, लेकिन लोग उन्नति की दौड़ में इतना तेज भागते हैं कि जिन गुरुजनों से कुछ लिया था, उनको नमस्कार भी नहीं करते। अभिमान से भर कर वे शिष्टाचार और नम्रता का त्याग कर देते हैं।

उननामा—जो नमस्कार करे, उसे भी जवाब न देना।

दुर्नामा—उचित रूप से नमस्कार न करना अथवा मद से या दुष्ट रूप से विनय करना।

अतः मान के इन गुप्तचरों के जाल में जो विद्यार्थी नहीं फंसता है, वही अपने गुरुजनों से विद्याग्रहण कर सकता है।

विद्यार्थी के लिए दूसरा दुर्गुण क्रोध है। यह क्रोध मनुष्य के सभी गुणों का नाश कर देता है। क्रोधी मनुष्य किसी से कुछ ग्रहण नहीं कर सकता। क्रोध भी कई नामों से प्रसिद्ध है। जैसे :—कोप, रोष, दोष, अक्षमा, संजलन, कलह, चंड, भंड, विवाद आदि।

कोप आने के कई कारण हो सकते हैं। जिस प्रकार शांत जल में कंकड़ फेंकने से अस्थिरता-हलचल उत्पन्न होती है उसी प्रकार शांत चित्त वाले प्राणी के मन में भी क्रोध उत्पन्न होने से हलचल पैदा होती है।

कोप—अपने आप से बाहर होना।

रोष—दूसरे के किसी अवांछित काम को देखकर गुस्सा आना।

दोष—अपने को अथवा दूसरे को बार-बार दोष देना।

अक्षमा—दूसरों के अपराध को न सह सकना।

संजलन—क्रोध से बार-बार जलते रहना।

कलह—जोर से शब्द करते हुए परस्पर अनुचित बोलना।

चंड—रौद्र रूप धारण कर लेना।

भंड—लकड़ी आदि से लड़ना।

विवाद—एक दूसरे के लिए परस्पर अनुचित शब्द बोलना।

इस प्रकार क्रोध कई नामों से मनुष्य के मन को उत्तेजित करके विपरीत दिशा में भटका देता है।

इसी प्रकार विद्यार्थी जीवन के लिए तीसरा दुर्गुण प्रमाद है, जो पाँच प्रकार का होता है। यथा :—मद, विषय, कषाय, विकथा, निन्दा।

१. मद—नशे को कहते हैं। यह मद छा जाने पर मनुष्य अपने सही ज्ञान-वर्द्धन के राह से भटक जाता है। यह मद आठ प्रकार का है—जातीय मद, कुलमद, बलमद, रूपमद, सूत्रमद, तपमद, लाभमद, ऐश्वर्यमद।

२. विषय—प्रमाद का दूसरा नाम विषय है। विषय तेईस प्रकार के होते हैं। यथा :—श्रुतेन्द्रिय (कान) के तीन विषय हैं। जीव शब्द, अजीव शब्द, मिश्र शब्द। तीनों विषय श्रुतेन्द्रिय के ग्राह्य हैं।

चक्षुइंद्रिय के पांच विषय हैं। कृष्णवर्ण, नीलवर्ण, पीतवर्ण, रक्तवर्ण, शुक्लवर्ण,। चक्षुइन्द्रिय अपने विषय को देखकर ग्रहण करती है और बाकी चार इन्द्रियाँ यानी श्रुतेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय अर्थात् कान नाक, जीभ, और शरीर छूकर अपने विषय को ग्रहण करते हैं।

घ्राणेन्द्रिय के दो विषय हैं। सुगंध, दुर्गंध। नाक द्वारा सुगंध और दुर्गंध का पता चलता है।

रसनेन्द्रिय के पांच विषय है। खट्टा, मीठा, तीखा, कड़ुवा, कषायला। जीभ से ये अनुभव में आते हैं।

स्पर्शेन्द्रिय के आठ विषय हैं। हल्का, भारी, ठंडा, गरम, रूखा, चीकना, खुरदरा, और मुकोमल। शरीर के द्वारा इन्हें हम अनुभव कर सकते हैं।

इस प्रकार पांच इन्द्रियों के तेईस विषय हुए, जो शुभ भी होते हैं और अशुभ भी। जो शुभ विषय हैं उन पर जीवों को राग होता है और जो अशुभ होते हैं, उन पर द्वेष होता है। वे मन को प्रिय नहीं लगते। जहां राग और द्वेष होते हैं, वहीं कर्मों का बंध होता है। ऐसा श्री उत्तराध्ययन सूत्र में बत्तीसवें अध्ययन की सातवीं गाथा में भगवान ने फरमाया है :—

रागो य दोसो विय कम्मवीयं, कम्मं च मोहप्प भवं वयंति।
कम्मं च जाई मरणस्स मूलं, दुक्खं जाई-मरणं वयंति॥

अर्थात् संसार में जन्म-मरण रूप दुःख के मूल हैं।

प्रमाद का तीसरा रूप कषाय है। कषाय अर्थात् जो आत्मा को अनादि काल से जकड़े हुए हैं और इस संसार में दुःखमय परिभ्रमण कराते हैं। कषाय के चार भेद होते हैं :—

क्रोध, मान, माया और लोभ।

अब यहां पहले पक्ष में तो क्रोध और मान तथा दूसरे पक्ष में माया और लोभ आ जाते हैं। क्रोध और मान द्वेष के पक्ष में हैं अर्थात् क्रोध और मान ये दोनों द्वेष के सेवक हैं। ये द्वेष पक्ष वाले दोनों कषाय क्रोध और मान तो चेतावनी देकर जीव पर आक्रमण करते हैं परन्तु माया और लोभ जो राग के पक्ष में हैं, वे जीव को मोहित करके जीव के आध्यात्मिक गुणों का नाश कर देते हैं। श्री दशवैकालिक सूत्र में भगवान ने इस विषय में फरमाया है :—

कोहो पीइं विणासेई, माणो विणयणासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो॥

अर्थात् क्रोध प्रीति को नाश करने वाला है और मान विनय को। माया अर्थात् कपट मित्रता नाशक है और लोभ सभी गुणों का नाश करने वाला है।

इससे पूर्व इन चार कषायों में से क्रोध और मान के नाम कुछ विस्तार से दिये जा चुके हैं। अब माया और लोभ के नाम विस्तृत रूप से दिये जाते हैं।

जिससे माया कर्म का बन्धन हो, उसे ही माया कहते हैं। माया के

पन्द्रह नाम शास्त्रों में दिये गये हैं।

१. माया तो सामान्य नाम है। अन्य इस प्रकार हैं :—

२. उपाधि—दूसरों को ठगने का विचार रखना।

३. निकृति—दूसरों को ठगने की इच्छा से उनका आदर सत्कार करना। प्रथम कपट को छुपाने का प्रयत्न करना।

४. वलय—वक्रपना करना। अर्थात् गोलमोल बातें करना।

५. गहन—दूसरे को ठगने के लिए ऐसी बातें कहना जिसे वह समझ न सके।

६. नूम—यह भी माया का ही नाम है। दूसरों को ठगने के लिए निकृष्ट से निकृष्ट कार्य करना।

७. कतक—यह माया का सातवां नाम है। हिंसाकारी तरीकों से दूसरों को ठगना।

८. कुरूप—यह माया का आठवां नाम है। कुचेष्टा करना।

९. जिह्विता—दूसरों को ठगने के लिए धीरे-धीरे कार्य करना।

१०. किल्विपी—माया से इसी जन्म में किल्विपी देवों के समान देव, गुरु और धर्म के विरोधी कार्य करना।

११. आदरणता माया—कपट से किसी का आदर करना।

१२. गूहनता—अपने रूप को छुपाना।

१३. वञ्चना—दूसरों को ठगना।

१४. प्रति कुंचनता—दूसरों के सत्य वचन का खण्डन करना।

१५. साहीयोग—असली वस्तुओं में नकली मिलाना।

इसी प्रकार लोभ नाम के कपाय का भी १६ प्रकार से बंध होता है। यथा :—

१. लोभ—लोभ का सामान्य नाम है।

२. इच्छा—अभिलापा, किसी वस्तु को पाने की तीव्र भावना।

३. मूर्च्छा—जो वस्तु प्राप्त हो चुकी है, उस की रक्षा करने की निरन्तर इच्छा का रहना।

४. कांक्षा—जो वस्तु प्राप्त नहीं हुई उसको प्राप्त करने की इच्छा करना।

५. गृद्धि—प्राप्त वस्तु में आसक्ति भाव।

६. तृष्णा—अतृप्ति, अर्थात् अधिकाधिक वस्तुओं को प्राप्त करने की इच्छा तथा प्राप्त वस्तुओं के कभी न नष्ट होने की इच्छा रखना।

७. मिथ्या—विषयों का ध्यान रखना।

८. अभिध्या—अदृढ़ आग्रह अर्थात् चलायमान चित्त की स्थिति। अपने निश्चय से डिग जाना।

९. आशंसना—अपनी इष्ट वस्तु की प्राप्ति की इच्छा करना।

१०. प्रार्थना—दूसरे के लिए इष्ट वस्तु की मांग करना।

११. लोलुप—अपनी इष्ट वस्तु प्राप्ति के लिए दूसरे की खुशामद करना।

१२. कामाशा—इष्ट रूप और शब्द की इच्छा करना।

१३. भोगाशा—इष्ट गंध आदि की प्राप्ति की इच्छा करना।

१४. जीवीताशा—जीने की अभिलाषा करना।

१५. मरणाशा—विपत्ति के समय मरने की अभिलाषा करना।

१६. नन्दिराग—अपने पास रही हुई ऋद्धि पर राग करना।

अतः इच्छा आदि सब लोभ के कार्य हैं अथवा ये सब लोभ के नाम हैं।

प्रमाद कई कारणों से होता है। प्रमाद से निद्रा आती है। उसके पाँच भेद हैं :—

१. निद्रा—सुख से सोना और सुख से जागे।

२. निद्रा, निद्रा—सुख से सोना, दुःख से जागना।
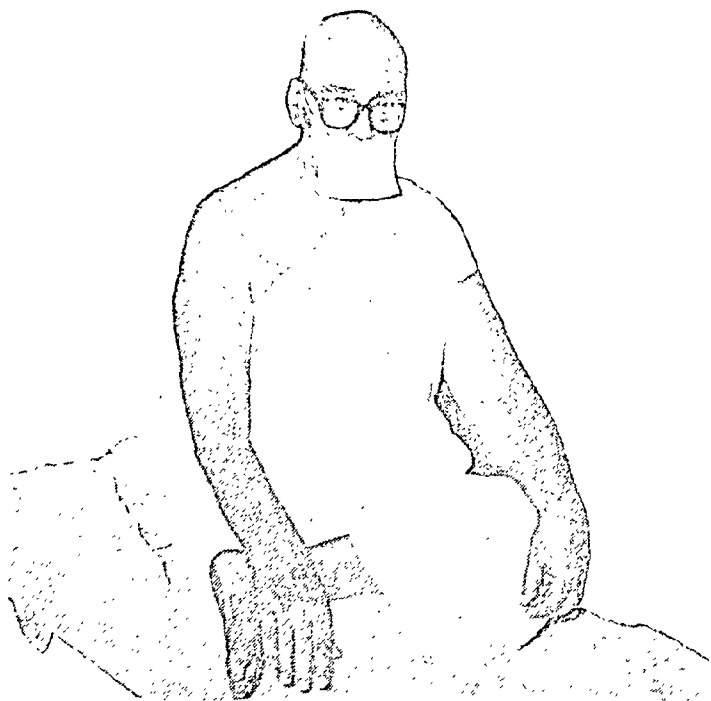
भगवान् महावीर के सच्चे निर्भीक बहादुर सैनानी
पंजाब केसरी श्रीप्रेमचन्द जी महाराज

२. दूसरे स्वप्न में भगवान ने सफेद पंखों वाली कोयलिका को देखा, जिस के फल स्वरूप भगवान को शुक्ल ध्यान की प्राप्ति हुई।

३. तीसरे स्वप्न में भगवान ने विचित्र पंखों वाली पुष्प कोयलिका को देखा, जिस के फलस्वरूप भगवान ने अंग शास्त्रों की परूपणा की।

४. चौथे स्वप्न में भगवान ने रत्नों की युगलमाला देखी, जिस का फल यह हुआ कि भगवान ने साधु धर्म और श्रावक धर्म की परूपणा की।

५. पांचवें स्वप्न में भगवान ने सफेद गऊओं का वर्ग देखा, जिसके फल-स्वरूप भगवान ने चार तीर्थों की स्थापना की।

६. छठे स्वप्न में भगवान ने सहस्र तरंगों वाले समुद्र को तैर कर पार किया, जिस के फलस्वरूप भगवान ने संसार समुद्र को पार किया।

७. सातवें स्वप्न में भगवान ने पद्म तरह की सफेद फूलों वाली सुगंधित पुष्करणी देखी, जिस के फलस्वरूप उन्होंने चार प्रकार के देवों की परूपणा की।

८. आठवें स्वप्न में भगवान ने अपनी नीली-नीली आंतड़ियों से मानु-षोत्तर पर्वत को लिपटे हुए देखा, जिस के फलस्वरूप भगवान की यशोकीर्ति छहों दिशाओं में फैली।

९. नौवें स्वप्न में भगवान ने उगते हुए सूर्य को देखा, जिसके फलस्वरूप भगवान ने केवल ज्ञान, केवल दर्शन प्राप्त किया।

१०. दशवें स्वप्न में भगवान ने मेरुपर्वत की चूलिका के ऊपर अपना सिंहासन देखा, जिसका फल यह हुआ कि भगवान ने बारह प्रकार की परिषद में देशना दी।

अतः यह स्वप्न अल्पनिद्रा में आये, जो अति सुखकर व शुभ हुए।

चौबीसों तीर्थंकरों के पुण्य और गुणों में कोई अन्तर नहीं होता फिर भी भगवान महावीर से पूर्व के २३ तीर्थंकरों को भी ऐसे ही स्वप्न आये हों,

११. जो स्त्री पुरुप पद्म सरोवर को तैर कर पार करता है, वह उसी भव में मोक्ष जाता है।

१२. जो स्त्री पुरुप सहस्र समुद्र को तैरकर पार करता है, वह उसी भव में मोक्ष जाता।

१३. जो स्त्री पुरुप रत्नों के भवन में प्रवेश प्राप्त कर जागृत होता है, वह उसी भव में मोक्ष जाता है।

१४. जो स्त्री पुरुप अपने को रत्नों के विमान में मान कर जागृत होता है, वह उसी भव में मोक्ष जाता है।

शुभ स्वप्न देखना अति मंगलकारी गिना जाता है। इन स्वप्नों के द्वारा आने वाले मंगलमय भविष्य की शुभ सूचना मिलती है। तीर्थंकर की माता जिन चौदह स्वप्नों को देख कर जागृत होती है, वही स्वप्न चक्रवर्ती की माता को आते हैं। इन्हीं चौदह स्वप्नों में से सात स्वप्न देखकर वासुदेव की माता जागृत होती है और इन्हीं में से चार स्वप्न देख वलदेव की माता को महान पुरुष की माता वनने की शुभ सूचना मिलती है। इन्हीं चोदह स्वप्नों में से एक देख कर किसी मांडलीक राजा की माता अथवा किसी प्रसिद्ध महात्मा की माता जागृत होती है। ये चौदह स्वप्न इस प्रकार हैं :—

१. वहुत ही सुन्दर सर्व गुण संपन्न गजराज

२. सफेद रंग का; अति सुन्दर शरीर वाला वृपभ।

३. केसरी सिंह।

४. कमलवासिनी लक्ष्मी।

५. पाँच वर्ण के फूलों की वड़ी सुंदर गुंथी माला।

६. आसमान में चमकता हुआ चाँद।

७. सूर्य।

८. फहराता इन्द्र ध्वज।

की चौकड़ी की। चार प्रकृतियां प्रत्याख्यानी की चौकड़ी की। अतः यह बारह प्रकृतियां हुई, और पांच निद्रा की। (इन का वर्णन हम ऊपर कर आये हैं) केवल ज्ञानावरणीय की प्रकृति, केवल दर्शनावरणीय की प्रकृति और बीसवीं प्रकृति मिथ्यात्व की है। अतः उपरलिखित प्रमाद की पांच प्रकृतियाँ सर्वघातक गुणों में आती हैं, फिर इन्हें पुण्य की प्रकृति कैसे माना जा सकता है ? पाप के उदय से तो दुःख ही हो सकता है, सुख नहीं। अब यहाँ पर प्रश्न यह होता है कि हम प्रमाद की प्रथम प्रकृति नींद को पाप रूप कैसे मानें जब कि उस के उदय से जीव को सुख-मिलता है।

इस प्रश्न का उत्तर यह है कि नीन्द लेते समय जीव को जो सुख प्राप्त होता है, वह नींद की प्रकृति से नहीं बल्कि सातावेदनीय के उदय से प्राप्त होता है। जब जीव को असातावेदनीय का उदय होता है, तब अनेकों उपाय करने पर भी नीन्द नहीं आती क्योंकि असाता वेदनीय कर्म पाप की प्रकृति है। पापी, पापी मिल कर कभी किसी को सुख नहीं दे सकते। अतः जीव को नींद लेने से जो शांति मिली, परेशानी दूर हुई, वह साता वेदनीय कर्म के उदय से। उदाहरण के लिए जैसे किसी पुण्यवान मनुष्य के आज्ञानुवर्ती सेवक पापी भी होते हैं और धर्मी भी। जिस समय वह पुण्यवान पुरुष किसी दुःखी के दुःख को मिटाने के लिये, उसे सुख शांति देने के लिए, किसी भयभीत के भय को मिटाने के लिए, अपने अनुयायियों को भेजता है, उस समय उसके सेवक सभी अनुचरों को अपने स्वामी की आज्ञा का पालन करना पड़ता है। चाहे वे पापी हों अथवा धर्मी। इसी प्रकार सातावेदनीय कर्म भी अपने सभी प्रकार के साधनों द्वारा जीव को शांति पहुंचाता है।

जोधपुर में मैंने सेठ ढिल्गड मल जी के माध्यम से दस बारह प्रश्न बहु-श्रुत श्री समर्थमल जी महाराज के पास भेजे थे, जिन में एक प्रश्न का उत्तर इस प्रकार था :—

"छठा व सातवां गुणस्थान मिल कर देश उणी करोड़ पूर्व की स्थिति होती है, क्योंकि आत्मा एक अन्तर्मुहूर्त छठे गुणस्थान में रहता है। उस के बाद

का ही उदय माना गया है। सातवें गुणस्थान से ले कर ग्यारहवें गुणस्थान तक की स्थिति जघन्य एक समय की और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की और बारहवें गुणस्थान की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त की होती है। इन छहों गुणस्थानों की स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है। अप्रमत्त के साथ में किसी प्रकार की भूल होने की संभावना नहीं है। अप्रमत्त भाव तो जागृत अवस्था का होना चाहिये।

उदय दो प्रकार का है। प्रदेश उदय और विपाक उदय। यहाँ विपाक उदय तो होना नहीं चाहिए, प्रदेश उदय हो सकता है। अत: बहुश्रुत श्री समर्थ मल जी ने छठे तथा सातवें गुणस्थान का समय अन्तर्मुहूर्त बताया है और इन दोनों गुणस्थानों के समय को मिला कर उन की स्थिति देश उणी करोड़ पूर्व बताई है, जो मुझे जंचती नहीं। कर्मग्रंथों आदि पांचवें छठे और तेरहवें गुणस्थानों की जो स्थिति बताई गई है, वही ठीक जंचती है। तत्व केवली गम्य है। पूर्णतत्व तो सर्वज्ञ भगवंत ही जान सकते हैं।

पाँचवा प्रमाद चार प्रकार की विकथायें है। स्त्री कथा, भत्त कथा, देश कथा, और राज कथा। स्त्री कथा के साथ क्रोध, मान, माया, लोभ ये चारों कषाय समझने चाहियें। इसी प्रकार भत्त कथा देश कथा, राज कथाओं के साथ भी क्रमसे चार कषाय मिलाने से सोलह कषाय हो जाते हैं।

इन्द्रियाँ पाँच हैं। श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, स्पर्शेन्द्रिय। इन पांचों इन्द्रियों के साथ ये सोलह कषाय जोड़ने से अस्सी विकल्प होते हैं।

महाराज श्री प्रेमचंद जी ने वह गाथा जो व्याख्यान के आरम्भ में पढ़ी थी, उस पर विस्तार पूर्वक लगभग डेढ़ घंटे तक व्याख्यान किया था।

व्याख्यान समाप्ति के पश्चात् दोघट के हाई स्कूल के प्रधानाचार्य जी ने महाराजश्री का आभार प्रकट करते हुए कहा कि आप ने यहाँ आकर हमारे ऊपर बहुत ही उपकार किया है। आप की कृपा से विद्यार्थियों को हृदयस्पर्शी व्याख्यान सुनने का अवसर मिला है।

आप अपने प्रभाव से यहां की विरादरी को कलह मुक्त करने की कृपा करें। उनकी इस प्रार्थना पर महाराजश्री ने वहां की विरादरी के सभी भाइयों को बुलाकर उन्हें समझाया और सदुपदेश द्वारा उनके आंतरिक मनमुटावों को दूर करके बहुत पुराने चले आ रहे कलह का अंत किया। उन्हीं दिनों इस क्षेत्र में हिन्दू और मुसलमान भाइयों में मुकदमेबाजी चल रही थी। अतः महाराजश्री के प्रवास काल में उस क्षेत्र के, उस झगड़े से सम्बन्धित हिन्दू और मुस्लिम प्रतिनिधि आये, जिनमें वहां का जागीरदार पठान भी था। उन प्रतिनिधियों ने महाराजश्री के सामने अपने-अपने विचार और समस्यायें रखीं और प्रार्थना की कि आप किसी तरह हमको इस कलह से मुक्त करें। तब महाराजश्री ने दोनों पक्षों के विचार और समस्याओं को सुनकर कहा कि इस प्रकार के आपसी कलहों से परिवार, समाज, ग्राम, नगर ही नहीं बड़े-बड़े राष्ट्र भी उजड़ जाते हैं। तब उस स्थिति में कोई भी पक्ष लाभ में नहीं रहता, अपितु सभी को उस पारस्परिक कलह के भयंकर परिणामों का फल भुगतना पड़ता है। महाराजश्री का फरमान सुनकर दोनों पक्षों ने महाराजश्री के समक्ष शीघ्र ही कलह का अंत करने का निर्णय किया। तत्पश्चात् इस क्षेत्र में महाराजश्री के पास कांधले तथा एलम की विरादरियों ने आकर अपने २ क्षेत्रों में पधारने की विनती की। महाराजश्री ने कांधले के भाइयों को स्वीकृति दे दी। इस पर एलम के भाइयों ने भक्तिपूर्ण आग्रह से कहा कि आपको हमारा क्षेत्र परसे बिना आगे नहीं पधारना चाहिये। इस पर महाराजश्री ने फरमाया कि एलम के रास्ते जाने से हमें यात्रा अधिक करनी पड़ेगी। इस पर भाइयों ने आग्रह किया कि आपको कष्ट तो अवश्य होगा किन्तु आप एक दिन के लिए हमारे क्षेत्र में पधार कर हमें धर्मलाभ देने की कृपा अवश्य करें। इस पर महाराजश्री ने उन्हें अपनी स्वीकृति दे दी। दूसरे दिन पड़ासोली से विहार करके आप एलम पहुंचे। वहां पर आपने दोपहर को सार्वजनिक व्याख्यान देकर उन्हें धर्मलाभ दिया और दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार कर कांधला में पधारे। आपने स्वागतार्थ आये जनसमूह को संक्षिप्त उपदेश देकर मंगल पाठ सुनाकर विदा किया। यह कांधला वही शहर है, जहां पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशीराम जी ने दीक्षा

धारण की थी। उस समय वातावरण ऐसा बन चुका था कि उनको दीक्षा दिलाने से सभी बिरादरियाँ घबरा गई थीं। उस समय कांधले के धर्मपरायण प्रतिष्ठित श्रावकों ने अपनी छाती तानकर उनका दीक्षा समारोह सम्पन्न किया था। आज भी कांधलावासियों को इस बात पर बड़ा गर्व है। किसी ढीले-ढाले साधु संत को देखकर अक्सर वहां के बड़े बूढ़े कहते हुए सुने जाते हैं, "म्हारा कांधला पूज्य श्री कांशीराम जी महाराज की दीक्षा भूमि है, यो गधों के चलने की पटरी ना है भाई"।

हां तो कांधले की कट्टर और धर्मप्रेमी जनता को महाराजश्री ने दस दिन तक धर्मलाभ दिया। वहाँ की बिरादरी ने चातुर्मास की बिनती की तो गुरुदेव ने कहा कि अभी तो होली का चातुर्मास दूर है। अतः उससे पहले चातुर्मास स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता। यहीं पर मुज्जफरनगर की बिरादरी भी विनती करने आई। महाराजश्री ने कहा कि मेरा विचार आणदी और लिसाढ़ होते हुए मुज्जफरनगर जाने का है।

अतः कांधले से विहार करके आप आणदी ग्राम में पधारे। उस समय लगभग पच्चीस तीस भाई कांधले के भी साथ थे। इसी ग्राम में मेरा (श्री बनवारी लाल जी महाराज का) जन्म हुआ था। महाराजश्री का मेरी इस जन्मभूमि में आने का यह तीसरा अवसर था। यहाँ पर वे पहली बार विक्रमी संवत् १९८९ में कांधला का चातुर्मास पूर्ण करके पधारे थे। उस समय उनके साथ उनके पूज्य गुरु श्री वृद्धिचन्द्र जी महाराज थे। केवल गुरु शिष्य दोनों ही थे। मैं उस समय गृहस्थावस्था में था।

दूसरी बार आप विक्रमी संवत् २००० में इस आणदी ग्राम में पधारे। उस समय मैं साधु बनकर आपकी सेवा में उपस्थित था। अब आप तीसरी बार विक्रमी संवत् २०१४ में यहां पधारे थे। समय मिलने पर यह मैं अलग रूप से लिखवाने का विचार रखता हूँ कि किन कारणों से मैंने गृहस्थाश्रम को छोड़कर साधु धर्म स्वीकार किया था। मेरा महाराजश्री की सेवा में आनेका क्या निमित्त

कारण बना और इस ग्राम की जनता के साथ मेरा रसूख प्रसिद्धि का कारण क्यों बना ?

इस आणदी ग्राम की जनसंख्या लगभग दो हजार रही है, जिनमें मुख्यतः दो जातियाँ थीं, सैनी और गूजर। कृषि कार्य अधिकांशतः ये दोनों ही जातियाँ करती रही हैं। अन्य जातियाँ, चमार, जुलाहे, मुसलमान आदि भी प्रचुर संख्या में रहती रही हैं। इस ग्राम की विशेषता यह रही है कि यहाँ पर जब भी महाराजश्री पधारे हैं, इस ग्राम के निवासियों ने चाहे वे हिन्दू हैं या मुसलमान, सभी ने बड़े ही हर्षोल्लास से उनका स्वागत किया है। महाराजश्री के व्याख्यानों में प्रायः पाँच सौ तक की उपस्थिति होती थी। उस समय महाराजश्री ने वहां की जनता के सम्मुख दो व्याख्यान दिये। पहले व्याख्यान में आपने धन्ना सेठ और शाली भद्र का वर्णन किया और दूसरे व्याख्यान में ब्राह्मण पुत्र अमरकुमार के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला था, जिसे सुनकर वहां के लोग बड़े प्रभावित हुए। अमरकुमार की कहानी इस प्रकार है :—

एक बार एक जैनाचार्य राजगृही नगरी की ओर जा रहे थे। वे मार्ग भूलकर दूसरी राह पर चल पड़े। रास्ते में एक ब्राह्मण पुत्र मिला, जिसका नाम अमरकुमार था। वह बालक आचार्यश्री को नमस्कार करने के लिए आगे बढ़ा। आचार्य ने पूछा, "इस निर्जन वन में तुम अकेले कैसे ?" अमरकुमार बोला, "मैं माता-पिता और परिवार के जीवन यापन के लिए लकड़ी काटने इस जंगल में आता हूँ।" आचार्य ने उसे बताया कि वे राजगृही जा रहे थे, मार्ग भूल कर इधर आ निकले हैं। अमर कुमार ने रास्ता बता दिया लेकिन आचार्य को विश्वास नहीं हुआ और उन्होंने अमर कुमार को साथ ही चलने को कहा। अब बालक अमर बड़े धर्म संकट में फंस गया। एक तरफ पेट की ज्वाला शांत करने का प्रश्न था तो दूसरी तरफ आचार्यश्री को रास्ता बताकर राजगृही पहुँचाने का। बालक ने बड़ी ही विनय से उत्तर दिया, "महाराज ! पेट की ज्वाला शांत करने का कोई दूसरा साधन नहीं है। बिना लकड़ी लिए घर जाने का मतलब होगा सारा दिन भूखे मरना और मां-बाप के उलाहने सहना।" कहते-

कहते बालक की आँखों में पानी आ गया। आचार्यश्री का दिल पसीज उठा। उन्होंने कहा कि तुम हमारे साथ चलो। किसी प्रकार की चिन्ता मत करो।

अमरकुमार लकड़ी काटना छोड़कर आचार्यश्री के साथ हो लिया। जैसे ही आचार्यश्री राजगृही नगरी में प्रविष्ट हुए, जैन अजैन जनता उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़ी। आचार्य जी ने संक्षिप्त उपदेश के पश्चात् मंगल पाठ सुनाया। कुछ लोगों ने अमरकुमार को पहचान कर पूछा, "तुम इन आचार्य जी के साथ कैसे ?"

अमरकुमार ने उत्तर दिया, "आचार्य जी महाराज मार्ग भूल गये थे। मैं लकड़ी लेने जंगल में गया था। अपना काम छोड़ कर रास्ता बताने के लिए इनके साथ आया हूं ?" जब श्रावकवर्ग ने अमर की बात सुनी तो वे बहुत प्रसन्न हुए। आचार्यश्री ने बालक की स्थिति बताई। श्रावकों ने बालक के भोजन पानी का प्रबंध करके उसे खूब सारे पैसे दिये। भोला भाला बालक प्रसन्न होकर घर चला गया। उस दिन से आचार्यजी के पास उसका नित्य प्रति आना जाना प्रारम्भ हो गया। आचार्य श्री बड़े उदार हृदय और दयालु स्वभाव के थे। उन्होंने अर्थ सहित नवकार मंत्र अमरकुमार को याद करवा दिया और यह महामहिम मंत्र अमरकुमार की आत्मा के साथ ओतप्रोत हो गया।

इन्हीं दिनों राजगृही में एक और घटना घटी। राजा श्रेणिक अपने एक महल का दरवाजा बनाने के लिए प्रयत्नशील थे। आश्चर्य की बात थी कि जितना निर्माण भवन का दिन में होता था उतना ही रात्रि में गिर जाता था। परेशान होकर राजा ने ज्योतिषियों को बुलाकर इसका कारण पूछा। ज्योतिष विद्या के आधार पर उन्होंने बताया कि यदि बत्तीस सुलक्षणों वाले बालक की बलि दी जाय तो यह दरवाजा पूर्ण हो सकता है। यह सुनते ही राजा की उत्कंठा बढ़ी। अनुचरों को बुलाकर सारे नगर में घोषणा करवा दी कि जो कोई अपना बत्तीस लक्षणों वाला बालक बलि के लिए देगा, मैं उसे बदले में बालक के भार जितना सोना चाँदी तोल कर दूंगा।

यह घोषणा अपनी झोपड़ी में बैठी अमरकुमार की दरिद्र माता ने भी

मूर्नी जो अपनी दरिद्रता पर आठ-आठ आंसू बहा रही थी। उसने अपने पति से अमर को दे देने के लिए कहा। पत्नी की बात सुनते ही ब्राह्मण देवता चौंक पड़े और बोले, "अरी! तुम मां हो अथवा डायन! मुझे पुत्र प्यारा है धन नहीं। मैंने तो सुना है कि मां अपने बच्चे के बदले प्राण दे देती है किन्तु तुम कैसी मां हो जो अपने सुख के लिए अपने होनहार निर्दोष बालक को बलि के लिए देना चाहती हो। यह सुन कर बालक के दिल पर क्या बीतेगी ? दयालु ब्राह्मण जाति में पैदा होकर भी अपने प्रिय बच्चे के लिए तुम्हारा मन इतना कठोर क्यों हुआ? इसका कारण बताओ।"

ब्राह्मणी पर लालच का भूत सवार हो चुका था। वह क्रोधित होकर बोली, "आज तक भर पेट भोजन और तन ढाँपने को वस्त्र भी नसीब नहीं हुआ। मेरे तो चार बालक और भी हैं। अमर न होगा तो क्या हुआ। इसको मरवा देने से पूरा परिवार तो सुखी हो जायगा।" ब्राह्मणी अपने आपे से बाहर हो गई थी।

शास्त्र में एक गाथा है :—

कोहो पीई विणासेइ, माणो विणय नासणो।

माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो॥

इस गाथा का अर्थ विस्तृत रूप से हम ऊपर दे आये हैं। यही हाल उस दरिद्र नारी का हुआ जो धन के लिए पुत्र देने को तैयार हो गई थी किसी ने सच ही कहा है :—

सोच करे सो सूरमा, कर सोचे सो कूर।

उसके सिर पर फूल है, उसके सिर पर धूल॥

यही हाल अमर की मां का हुआ। वह भाग कर राजा के डौंडी पीटने वाले नौकरों को अमरकुमार को बलि के लिए देने को कह आई। ब्राह्मणी के इस निन्दनीय कर्म की खबर नगर भर में बिजली की तरह फैल गई।

ऐश्वर्य के नशे में झूमते हुए राजा ने उसी वक्त लड़के और उसके माता पिता को बुलाया और बालक के बराबर धन तोल कर दे दिया। मां की कठोरता ने दयालु पिता का मुंह बंद कर दिया। अब उसको बलि वेदी पर

हो तो बताओ। अमरकुमार ने कहा, "मैंने दुनियां के जिन लोगों से मिलना था, मिल चुका हूं। मेरा खाना पीना संसार से समाप्त हो चुका है। अब मरने से पहले केवल अपने इष्ट देवता की पूजा करना चाहता हूं। केवल पाँच मिनट का समय चाहिए।" राजा ने आज्ञा दे दी। अमरकुमार ने शांतमुद्रा में निर्विकार मन से नवकार मंत्र का स्मरण किया। धर्म रक्षक देव का आसन डोल गया।

क्षण भर में हवन मंडप का दृश्य ही बदल गया। हवन कार्यों में सम्मिलित सभी लोग बेहोश हो गये। ड्योढीवान ने राजा को सूचना दी कि वहां तो बलि के हवन कार्यों के विरुद्ध समस्या आ खड़ी हुई है। सभी लोग बेहोश पड़े हैं। केवल अमरकुमार ही समाधि मग्न बैठे हैं।

यह खबर सुनते ही राजा श्रेणिक तख्तों ताज छोड़कर नंगे पाँव भागे हुए आये और अमरकुमार के चरणों में नत हो गए। यही अमरकुमार कुछ समय पहले राजा के सामने अपने प्राणों की भीख मांग रहा था; क्योंकि तब उसे अपनी आत्मिक शक्तियों का ज्ञान नहीं था। अब जब कि उसने अपने समाधि बल से चमत्कार दिखा दिया तो ऐश्वर्य के मद में डूबा राजा कांप उठा। चेहरा ऐसा पीला पड़ गया जैसे अब कुछ ही क्षणों का मेहमान हो। पासा बिल्कुल पलट चुका था। दूसरे के प्राण लेने वाला अब अपने ही प्राणों की याचना कर रहा था। राजा की यह स्थिति देखकर बालक अमरकुमार ने समाधि पूर्ण कर के आंखें खोल दीं। भयभीत राजा ने कांपते हुए स्वर में अमर कुमार से अपने कुकर्म के लिए क्षमा मांगी और पूछा कि मैं आप की क्या सेवा करूं ?

अमरकुमार ने कहा कि मैं तो पाँच महाव्रतधारी साधु बनना चाहता हूं। मुझे जैन श्रमण के वस्त्र और पात्र चाहिएं। राजा ने सहर्ष बालक अमर कुमार को मुनियों के पंडोपकरण भेंट कर दिये। बालक अमरकुमार ने साधुवृत्ति धारण करके साधना करने के लिए जंगल का रास्ता लिया। जंगल में जाकर वे आत्म चिंतन में लीन हो गये।

अमर कुमार के बलि होने की खबर जिस तेजी से नगर में फैली थी, उसी तेजी से उस के साधु बन कर जंगल मे जाने की बात भी फैल गई। अमरकुमार की मा ने जब यह समाचार सुना तो वह सोचने लगी कि पुत्र भी गया और धन का भी क्या पता राजा अपना दिया हुआ धन छीन ले ? इस घटना से अपयश फैला वह अलग। इसलिए यही अच्छा है कि इस मुनि बने हुए पुत्र को ही मार डालूं। यह सोचकर वह क्रोधान्ध हो कर छुरा लिए हिंसक पशुओं से भरे उस जंगल में जा पहुंची, जहाँ मुनि अमरकुमार समाधि में लीन थे।

वहाँ हिंसक पशु दहाड़ रहे थे लेकिन क्रोधावेश में उसे उन का भय न था। उसने मुनि अमर को जा ढूंढा। और उसे छुरा मार कर वापस लौट पड़ी। हिंसक को हमेशा भय लगा ही रहता है। उस भय के कारण ही हिंसा करने के बाद वह इधर उधर झांकता है। शास्त्र में एक गाथा आई है, "सव्वो पम्मत्तस्स भयं" अर्थात्, प्रमादी को सदा भय का शिकार बना रहना पड़ता है। इसी भय के कारण वह नीच गति का मेहमान बनता है।

मुनि अमर की मां की भी यही हालत थी। इतने में एक भूखी शेरनी ने छलाँग मारी और बात की बात में उसे चट कर गई।

मुनि अमर भी मर गये और उन को मारने वाली जन्मदात्री मां भी मर गई, लेकिन मौत-मौत में अन्तर था। तत्काल हुई दोनों की मृत्यु जहां शुभ संकल्प वाले साधु को शुभ गति की ओर इशारा कर रही थी वहां उनकी हिंसक मां को नीच गति के लिए प्रगाढ़ित कर रही थी।

यह कहानी इसलिए नहीं सुनाई गई कि वह ब्राह्मण पुत्र था बल्कि इसलिए सुनाई गई है कि जिनवाणी पर श्रद्धा करने के कारण उस बालक का जीवन स्वयं एक अमर कहानी बन गया था।

यह प्रवचन महाराज श्री ने आणेदी ग्राम में रात के समय सुनाया था। इस ग्राम में महाराजश्री जितने दिन विराजे दोपहर तथा शाम दोनों वक्त अपने प्रवचनों से जनता को धर्मलाभ देते रहे। यहाँ के प्रवास काल में महाराजश्री ने

अपने प्रभावशाली व्याख्यानों से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही कुरीतियों का जनता से त्याग करवाया। उन्होंने जनता को अपने दैनिक कार्यों में विवेकशीलता से कार्य करने की प्रेरणा दी। गाँव के स्त्री-पुरुष अविवेक के कारण अपने वस्त्रों तथा वालों आदि में पड़ी हुई जूं लीख आदि को निकाल कर मार डालते थे। पशुओं के शरीर पर खलीली, चेचड़, चीचड़ी, कुत्त, मक्खी आदि जीव हो जाने पर उन्हें निकाल कर गोवर में दवाते जाते थे अथवा वेदर्दी से जलती हुई आग में डाल देते थे। गाय, भैंस, वैल आदि को पानी में खड़ा कर के उनकी कुत्त, मक्खियाँ निकाल कर उनकी गर्दन तोड़ कर पानी में डाल देते थे ताकि वे मक्खियाँ फिर से जानवरों पर वैठकर उन्हें न सतायें। इसी प्रकार ग्रामीण लोग जव गन्ने की कटाई करते थे तो गन्ने को साफ करने से जो पत्तियाँ निकलती थीं, उनके खेतों में ढ़ेर लग जाते थे। मीठे के आकर्षण से उन ढ़ेरों में करोड़ों जीव उत्पन्न हो जाते थे। कुछ समय वाद सफाई के विचार से वे लोग उस में आग लगा देते थे, जिस में लाखों करोड़ों त्रस जीव जल कर भस्म हो जाते थे। महाराज श्री का हृदय ग्राम्य जीवन की इस जीव विनाशक दैनिक क्रिया से द्रवित हो उठा। उन्होंने वहाँ के स्त्री-पुरुषों को "अज्झत्थं सव्वओ सव्वं, दिस पाने पियायए" उत्तराध्ययन सूत्र की इस गाथा के प्रथम चरण को उद्धृत करके उपदेश देते हुए समझाया कि जिसप्रकार आप लोगों को अपने प्राण प्यारे हैं, उसी प्रकार प्राणी मात्र को अपने प्राण प्यारे हैं अतः आज से आप इस वातकी प्रतिज्ञा करो कि भविष्य में कभी किसी जूं, लीख आदि को नहीं मारोगे अर्थात् जूं लीख, चेंचड़, चीचड़ी आदि को निकाल कर मारने की वजाय किसी सुरक्षित स्थान में रख दोगे। महाराजश्री ने उन्हें विना छाना पानी पीने की हानियाँ वताते हुए कहा कि खुले पानी में हजारों जीव उत्पन्न हो जाते हैं। वे पानी पीने में आ जाते हैं, जिससे उनके प्राण नष्ट हो जाते हैं और पीने वालों को कई तरह के रोगों का शिकार वनना पड़ता है।

इस के वाद कांधले के भाइयों ने वहां पानी छानने के लिए कपड़ा वितरण किया।

दूसरे दिन यहा से विहार कर के महाराजश्री लिसाड़ पहुंचे और दोपहर बाद स्थानक के नीचे खुले स्थान में व्याख्यान दिया। यहां आप तीन दिन तक रुके। लोगों ने खूब धर्मलाभ उठाया। यहां से आपने मुजफ्फरनगर के लिए विहार किया। रास्ते में लुहसाने ग्राम में सैनियों के यहां ठहरे। वहां पर रात को स्थानक में व्याख्यान किया। सुवह विहार करके वुढ़ाने पहुंचे। यहीं पर दिल्ली का भाई मनोहर लाल आया। वह दिल्ली का समाचार सुना कर वापस चला गया और महाराज शाहपुर पहुंचे। यहां आप दिगम्बर धर्मशाला में ठहरे। (यहां पर श्रीवनवारी लाल जी महाराज के सांसारिक वन्धुजन काफी संख्या में रहते हैं) यहां महाराज श्री ने व्याख्यान दिया और विहार करके मतलावली एक रात ठहर कर मुज्जफरनगर पहुंचे।

मुज्जफरनगर में पंजाव के काफी लोग आए हुए हैं। उन के यहाँ आने के वाद ही यहां स्थानक वना था। फगवाड़ा, लुधियाना, जगरावाँ और गुजरांवाला के वद्रीप्रसाद सोहन लाल के काफी घर हैं। यहाँ आये दस वारह दिन हुए थे कि जालंधर से विनती आई। महाराज श्री ने कहा, "यमुना पार के क्षेत्रों कांधला, अमीनगर सराय आदि से चातुर्मास के लिए काफी आग्रह किया जा रहा है। केवल इतना कह सकता हूं कि यमुना पार होते हुए मेरा विचार जालंधर जाने का है।"

मुज्जफरनगर में आप २०-२५ दिन रहे। यह क्षेत्र आपने प्रथम वार ही फरसा था। आपका यह विहार भी इधर की तरफ अन्तिम ही था। यहां से विहार करके २-३ रात रास्ते में ठहरते हुए आप सहारनपुर आये। दिगम्बर जैन धर्मशाला में ठहरे। यहाँ चार पांच व्याख्यान हुए। फिर जगाधरी के लिए आपने विहार किया। जगाधरी में आप हंसराज जंगीलाल गुजरांवाला वालों के यहां ठहरे। श्री हंसराज ने पंजाव में सूचित किया कि महाराजश्री यहां विराजमान हैं, जो भाईवहन दर्शनों का लाभ उठाना चाहें, वे पधारें। चार पांच सौ भाई दर्शनों के लिए आये।

यहां से प्रस्थान कर के जगाधरी शहर की विरादरी की विनती को ध्यान में रखते हुए आप जगाधरी पहुँचे और दिगम्बर धर्मशाला में ठहर कर तीन

व्याख्यान दिये। यहां हजारों की संख्या में लोग आते थे। यहां से विहार करके नीम का थाना ग्राम में पहुंचे। यहीं कांधले के भाई विनती के लिए पहुंचे लेकिन महाराजश्री यमुना पार उतरने के वाद जालंधर शहर में चातुर्मास के लिए वचनवद्ध थे। अतः यहां से विहार कर के भलना शहर पहुंचे। दो तीन व्याख्यान करने के वाद अंबाला छावनी पहुंचे। यहां की विरादरी ने आप का वड़ा भारी स्वागत किया। अब श्रीमहावीर जयंती भी नजदीक थी। महावीर जयन्ती उत्सव पर भजन मंडलियों और भाषणों का खूब रंग जमा। पंजाव के जनसंघ के नेता श्री यज्ञदत्त शर्मा ने बहुत अच्छी भाषा में भगवान महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला।

उसके वाद महाराजश्री प्रेमचंदजी ने भगवान महावीर के जीवन पर सारगर्भित प्रकाश डालते हुए जनता को भाव विभोर कर दिया।

यह समारोह खुले वाजार में एक वहुत वड़े पंडाल में मनाया गया था।

यहां से विहार करके अंबाला शहर पधारे। हाई स्कूल में ठहरे। हाई स्कूल में व्याख्यान शुरू हुआ। यहां पर म०श्री ने एक व्याख्यान में लोक स्थिति के विषय में प्रवचन दिया जिसमें गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से प्रश्न किया। "भगवन ! लोक स्थिति कितने प्रकार की है ?" भगवान ने उत्तर दिया, ८ प्रकार की है। उसी के आधार पर महाराजश्री ने प्रकाश डाला। उन्होंने वताया कि जैन धर्म में अन्य धर्मों के अनुसार क्या अन्तर है? अन्यमतावलंबी तो पृथ्वी को नादीए वैल के सींग पर अथवा शेषनाग के फन पर टिकी हुई मानते हैं परन्तु जैन दर्शन की इससे भिन्न मान्यता है।

यहां पर प्रश्न होता है कि वैल की एक निश्चित आयु तो अवश्य होगी। फिर उसकी आयु समाप्त होने के वाद पृथ्वी का क्या होगा ? इसी प्रकार शेष नाग भी आयु वाला है। शेषनाग और वैल स्थूल हैं। अतः उन को ठहरने के लिए भी स्थान आदि चाहिए। यदि इन के नीचे भी पृथ्वी है तो उसके नीचे अन्य शेष नाग और नादीए वैल चाहिएँ। इस प्रकार से एक के नीचे एक करके अनेक और अनंत पृथ्वियाँ होंगी। उनकी गिनती कैसे होगी ?

जैन धर्म की मान्यता—

आकाश के आधार पर तन नाम की वायु है, जो पतली है। हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि हवा को किसी पृथ्वी की जरूरत नहीं। हवा को आकाश की जरूरत है। हवा में इतनी शक्ति है कि वह पृथ्वी को थामें हुए रख सकती है। इसलिए तनवायु आकाश के आधार पर है और घन वाय तनवाय के आधार पर है। ये दोनों हवाएं असंख्यात योजन लम्बी चौड़ी हैं। घनवाय के ऊपर बीस हजार योजन का जाड़ा है, वह घन जीव के ऊपर टिका हुआ है। घनोदधि के ऊपर पृथ्वी टिकी हुई है और पृथ्वी के आधार पर त्रस और स्थावर। जीव दो प्रकार के हैं। जीवों के आधार पर अजीव और अजीव के आधार पर जीव हैं। अजीव और जीव दोनों सम्मिलित होकर परस्पर में बंधे हुए हैं। अर्थात् जीव और अजीव कर्मों द्वारा संगृहीत हैं।

लोक की स्थिति को समझने के लिए मशक का दृष्टांत दिया जाता है। यदि चमड़े की मशक को हवा से भर कर उसका मुंह बन्द कर दिया जाए और उस के मध्य में एक डोरी बांध कर ऊपर वाले हिस्से का मुंह खोल कर उस में पानी भर दिया जाय और निचले भाग को बांध दिया जाय और बीच में बंधा डोरा खोल दिया जाय तो वह पानी हवा के आधार पर रह सकता है। भगवान महावीर ने श्री गौतमस्वामी को कहा कि ऐसी ही लोक की स्थिति है।

दूसरा दृष्टांत इस प्रकार है—भगवान श्री महावीरस्वामी ने गौतम जी के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन से पूछा, "गौतम! यदि कोई पुरुष हवा से फूली हुई मशक को अपनी कमर से बांध कर अथाह पानी में प्रवेश करे तो क्या वह पानी की सतह के ऊपर रह सकता है?"

गौतम बोले, "प्रभु! वह पानी की सतह के ऊपर रह सकता है क्योंकि हवा के कारण मशक नहीं डूबेगी।"

भगवान ने उत्तर दिया, "गौतम! यही स्थिति लोक की भी है। आकाश और वायु आदि उपरोक्त आधार पर ही टिके हुए हैं।"

गौतम—"हे भन्ते! क्या पुद्गल और जीव परस्पर संवन्धित हैं या प्रतिवन्ध है?

भगवान बोले, "गौतम! जीव और पुद्गल का परस्पर प्रतिवन्ध है। यदि कोई पुरुप नाव में छिद्र कर के उसे पानी में डाले तो छिद्रों में से पानी आते-आते वह पानी में डूब जाती है। उस नाव का पानी और तालाव का पानी एकाकार हो कर रहता है। उसी प्रकार जीव और पुद्गल का परस्पर प्रति-वन्ध होता है।

गौतम—"भन्ते ! क्या सूक्ष्म अपकाय (ओस) सदा गिरती ही रहती है ?" (वरसती हैं)

भगवान—"हां, गौतम ! सूक्ष्म अपकाय सदा गिरती रहती है।"

गौतम—"प्रभु ! सूक्ष्म अपकाय कहां गिरती है ?"

भगवान—"गौतम! ऊपर, नीचे, तिरछे सभी जगह गिरती है।"

गौतम—"भन्ते ! क्या सूक्ष्म अपकाय वादल अपकाय की तरह इकट्ठी हो कर वहुत काल तक ठहर सकती है ?"

भगवान—"गौतम! वह नहीं ठहर सकती है। सूक्ष्म अपकाय सूक्ष्म रूप में ही ठहर सकती है। अर्थात् अधिक काल तक नहीं ठहर सकती, जल्दी ही नष्ट हो जाती है।"

यहां व्याख्यान तो चल ही रहे थे कि नगर का एक अति प्रतिष्ठित श्रावक श्री लच्छीराम काल कर गया। वह संघ का वहुत वड़ा हितैपी श्रावक था। उसके पांच पुत्र हैं, जो संघ की सेवा में सदैव अग्रगण्य रहते हैं।

इसी नगर में जालंधर की विरादरी विनती करने आई। महाराज श्री ने स्वीकृति दे दी।

यहां से विहार करके एक दिन बीच में लगाकर आप डेरावसी पधारे। वहां तीन व्याख्यान किये। फिर गुरुकुल पंचकूला पधारे। यहां पांच दिन रहे। अध्यापकों और विद्यार्थियों ने खूब मन लगा कर प्रवचन सुने। फिर यहां से विहार कर के मणिमाजरा पधारे। वहां एक दिन रुककर व्याख्यान दिया। फिर चण्डीगढ़ पधारे। वहां तीन व्याख्यान मंडी में देकर फिर

चण्डीगढ़ स्थानक में पधारे। वहां लगभग सात आठ दिन रह कर धर्मप्रचार किया। यहां एक व्याख्यान आपका सार्वजनिक हुआ।

यहां से विहार करके आप खरड़ पधारे। यहां की जनता ने रास्ते में ही आकर महाराजश्री का हार्दिक स्वागत किया। अनुमानतः आठ दिन तक यहां प्रवचन करके महाराजश्री कुराली पधारे। यहां दो दिन धर्म प्रचार करके आपने रोपड़ के लिए विहार किया। यहां की जनता ने आप का भव्य स्वागत किया। रोपड़ के गांधी मैदान में आप के सार्वजनिक व्याख्यानों में लगभग डेढ़ हजार तक लोग उपस्थित होते थे। सात दिन तक यहां व्याख्यान देकर महाराजश्री भरतगढ़ पधारे। यहाँ चार दिन तक सार्वजनिक व्याख्यान दे कर अपनी जन्म भूमि के ग्राम डभोटा में पधारे। वहां चार दिन तक रुके। सात सौ के लगभग लोग नित्यप्रति प्रवचन का लाभ उठाते रहे। यहां से विहार कर के कीर्तिपुर पधारे। यहां हुशियारपुर और जालंधर से दर्शनार्थी भाइयों की बसें आईं। रात के समय व्याख्यान कर के आप सुबह विहार कर के सिक्खों के तीर्थ आनन्दपुर साहब पधारे। वहां आपने एक व्याख्यान किया। फिर विहार करते हुए भाखड़ा नांगल पधारे। वहां जालंधर के लाला दौलतराम के सुपुत्र मजिस्ट्रेट संतराम के क्वाटर पर ठहरे। यहां पर चार व्याख्यान दिये। यहाँ नौ दस घर जैनियों के थे। श्री दौलतराम के दोनों लड़के श्री संतराम औरश्री शीतल प्रसाद आपको भाखड़ा बांध दिखाने ले गये। उन्होंने महाराजश्री को बांध की जानकारी दी। बांध देखकर वे वापस आ गये। आने जाने में उन्हें काफी कष्ट हुआ क्योंकि निर्दोष आहार पानी मिल नहीं सका था। सदोष आहार लेकर वे वहां नहीं रहना चाहते थे। अतः वापस आने पर महाराजश्री ने नहर के नीचे से जो सतलुज नदी निकलती है, उसे भी देखा। दूसरे दिन वहां से विहार कर के एक रात पहाड़ी ग्राम में रुक कर आप जेजों कस्बे में रुके। यहां पांच दिन तक व्याख्यान किया। फिर विहार करके एक रात रास्ते में रुक कर आप हुशियार-पुर पहुंचे। यहाँ की जनता ने बड़ी भारी संख्या में रास्ते में पहुंच कर आपकी अगवानी की। नदी के पास वाले स्थानक में आप ठहरे। यहां लगभग २० दिन

तक रुके । लोगों ने खूब धर्म लाभ उठाया । जालंधर आदि के भाई दर्शनों के लिए आते रहे ।

यहां से विहार करके दो दिन रास्ते में रुक कर आप जालंधर छावनी पहुंचे । यहां पर लाला तेलूराम के मकान में ठहरे और नीचे चौक में व्याख्यान करना शुरू किया । यहीं पर जालंधर शहर की बिरादरी आई और उन्होंने पूछा कि महाराज ! आप किस दिन जालंधर शहर में पधारेंगे ।" महाराज श्री ने उत्तर दिया, "आसाढ़ सुदी दशमी बुद्धवार के दिन जालंधर शहर में आने का विचार है ।"

महाराज श्री ने नियत समय पर शहर की ओर विहार किया । हजारों की संख्या में लोग रास्ते में आ पहुंचे और गगन भेदी जयनाद करते हुए महाराज को शहर के स्थानक में ले गये ।

जालंधर चातुर्मास

संवत् २०१५

महाराज श्री का यह चातुर्मास वि० सं० २०१५ और वीर संवत् २४८४ तथा ई० स० १९५८ में हुआ था।

यहां की जनता ने महाराज श्री के सम्मान में निम्नलिखित अभिनन्दन पत्र प्रस्तुत किया।

सेवा में :—

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन
श्रमणसंघीय प्रचारमन्त्री श्री श्री १००८
पूज्यपाद, जैन भूषण श्री स्वामी प्रेमचन्द
जी महाराज के चातुर्मासार्थ जालन्धर
नगर में पधारने के शुभ अवसर पर (२५-६-५८)

गुरु चरणों में
श्री जैन संघ जालन्धर की ओर से

अभिनन्दन-पत्र

परमपूजनीय, जैन जगत् हृदय सम्राट्, श्रद्धेय गुरुदेव !

आज हम जालन्धर निवासियों के महान् पुण्य का उदय है कि हम लोग अपने परम प्रतापी, दृढ़-संयमी, धर्म-नायक, पूज्यपाद, कृपालु गुरुवर को अपने सम्मुख विराजमान पाते हैं। कितनी प्रसन्नता होती है इस सुन्दर दृश्य को देख

कर और दिल की 'अमीक' गहराइयों में छुपी उस देरीना तमन्ना की तकमील और उस चिरकालीन स्वप्न को साकार रूप धारण करते पाकर जो सहज में ही नहीं बल्कि वर्षों से हमारे मन के अन्दर एक अजीब और अद्भुत उथल-पुथल पैदा कर रही थी।

हे श्रमण संघ शिरोमणि ! बहुत दिन हुए, लगभग चौदह-पन्द्रह वर्ष जब आपने जालन्धर शहर के अंदर अपना पहला चातुर्मास किया था। पंजाब प्रान्त के गौरवशाली क्षेत्र गुजरांवाला, स्यालकोट और फिर रावलपिण्डी के अन्दर सत्य और अहिंसा धर्म का सिंहनाद बजाते हुए और अपने पीछे भक्तों को श्रद्धालु, धर्मप्रेमी जनता का एक ठांठे मारता हुआ समुद्र छोड़कर ई० सन् ४४ में आप अपने चातुर्मास के लिए जालन्धर पधारे थे। चातुर्मास काल में आपने श्रमण भगवान महावीर के अमर और परम पुनीत प्रवचनों को अपनी बुलन्द, सुरीली और मुअस्सर आवाज के अन्दर जिस ढंग से पेश किया था और जीवन-पथ के कण्टकाकीर्ण मार्ग की पहेलियों और पेचीदगियों को ऐसी सुन्दर और मधुर रीति से सुलझाया था कि सदियों से तारीक गुफाओं के अन्दर भटकने वाली परेशान जनता ने आपकी दिखलाई हुई रोशनी में अपने आपको एक ऐसे साफ और चटियल मैदान में खड़ा पाया, जहाँ से हर किसी को अपनी मंजिल-साफ और अयां नजर आने लगी। आपने रूहानियत की 'अमीक' गहराइयों को अपनी परम पवित्र वाणी द्वारा इतना साफ, स्पष्ट और सरल बनाया कि आलिम-विद्वान और ज्ञानीजन तो कुजा साधारण से साधारण व्यक्ति भी बे-दरेग इन गहराइयों में उतर कर आनन्द अनुभव करता रहा। आपके सुरीले और मनमोहक भक्तिरस से सरशार गीतों की मधुरध्वनि ने हर नर-नारी के दिलोदिमाग, मन और मस्तिष्क पर ऐसा कब्जा जमाया कि जबान अपनी तमाम सीमाओं का उल्लंघन करके बेअख्तियार हर समय उन्हें ही रटती सुनाई देने लगी। यहाँ तक कि हर घर, गली, कूचा, बाजार, गर्ज के हर जगह और हर सोसाइटी के अन्दर 'बिलालिहाज मजहबोमिल्लत' हर जबान पर आपका ही मुबारक नाम था। हाँ तो भगवान ! आपके उस अद्भुत चातुर्मास की प्यारी याद को जालन्धर निवासी अभी तक अपने सीनों में थामे हुए हैं।

फिर सन् सैंतालीस का खूनी साल आया। उन दिनों भी आप जालन्धर में ही विराजमान थे। आपने अपने बेसहारा भक्तों का आसरा बनकर अपने महान् संयमी जीवन के तपोबल की मजबूत ढाल की ओट में सबको सुरक्षित रखते हुए मंझधार में घिरे बेड़े के बेखौफ नाखुदा का पार्ट अदा करके वह आसरा और सहारा दिया कि आँधियाँ चलती रहीं, तूफान उमड़ते रहे, बिजलियाँ कड़कती रहीं, जमीन फटी, आसमान फटा, तलवारें चमकीं, खून की नदियाँ वह निकलीं, कत्लोगारत और जुल्मोसितम का वह बाजार गर्म हुआ कि दरो-दीवार भी कांपते नजर आने लगे लेकिन, ऐ कर्मयोगी मुनिवर ! तेरा तप था कि इन तमाम आफतों और मुसीबतों के अन्दर तेरे भक्तों में से किसी का बाल तक बांका न हुआ।

प्रभो ! जालन्धर निवासी उस वक्त को भूले नहीं। आपके उपकार को भूले नहीं। आपके जलाल को भूले नहीं और आज उसी प्रेम और भक्ति के जजबात से मूतासर अपने चमन के माली को "सद्‌भारों" और हजारों रंगीनियों के साथ अपने बगीचे में फिर से वारद होते देखकर जालन्धर निवासी और जालन्धर जैन संघ खुशी से फूला नहीं समाता।

पूज्यवर ! आप चिरकाल तक पंजाब से बाहर रहे। गुजरात, काठियावाड़ और बम्बई प्रान्त के अन्दर चातुर्मास करके जनता को अपनी विद्वत्ता का कायल और 'जातेआली' का गरवीदा बनाया। फिर बहुत दिनों तक राजस्थान के खुश्क और रेतीले रेगिस्तानी इलाके में श्रमणसंघ की एकता को सुदृढ़ और मजबूत बनाने की गरज से पंजाब श्रमणसंघ के एक महान् प्रतिनिधि के रूप में विचरते रहे और आखिर अपनी 'लाजवाब' जिस्मानी ताकत और सेहद के खजाने का काफी अंश उस मरुभूमि के अर्पण करके तप और संयम, तेजोजलाल में कई गुणा इजाफा करके पुनः पंजाब और आज जालन्धर पधारे हैं। जालन्धर की जनता स्वाति नक्षत्र में आसमान की तरफ वर्षा की इन्तजार में मुंह खोले सीपों की भांति आपके मुखारविन्द से होने वाली अमृतवर्षा के इन्तजार में उतावली हुई बैठी है। कौन जानता है कि इस अमृतवर्षा की कौन सी बूंद

गौहरे बेबहार की शक्ल धारण करके संसार को चकाचौंध कर देने वाली सावित हो ।

हे पूज्यपाद ! हम में इतनी बुद्धि नहीं और न ही हमारे शब्दों में इतनी ताकत है कि हम अपने दिल की गहराइयों में रही हुई हार्दिक भावनाओं को लफजी रूप देकर उचित और मुनासिब शब्दों में आपका स्वागत और मान कर सकें। दिल में जज़बात हैं, विचारों में संघर्ष है। एक दूसरे को पीछे धकेल कर दौड़ कर लबों तक आते हैं परन्तु ऐ महर्षि । तेरे जलाल की ताब न लाकर और अपनी निर्धनता पर शर्म खाते हुए होठों में ही समा जाते हैं और वाणी का रूपधारण नहीं कर पाते और हालत यह है कि :—

हम बार-बार हौसला करने के बावजूद
इक बार तुम से अर्जे तमन्ना न कर सके

लहजा हे कृपानिधे ! हमारे शब्दों की ओर कदाचित् ध्यान न देते हुए अपनी 'हमादानी' और 'हमाबीनी' से हमारी भावनाओं को देखते हुए, हमारे प्रेम को अपने विशाल हृदय में मुनासिब जगह दीजिए ।

इन शब्दों के साथ मैं श्री जैन संघ की ओर से आपका हार्दिक स्वागत करता हूं ।

सतीश कुमार जैन
मन्त्री, एस०एस० जैन सभा,
जालन्धर ।

२५-६-५८

यहां हाल की छत पर व्याख्यान शुरू हुआ । यहां लगभग डेढ़ हजार लोगों के बैठने की जगह थी, जो पहले ही दिन ठसाठस भर गई थी । प्रबंधकों ने विचार किया कि अगर अधिक लोग छत पर बैठगए तो छत ही कहीं क्षतिग्रस्त न हो जाय । उन्होंने व्याख्यान के योग्य दो स्थान मुझे दिखाये । एक स्थान वह था, जहां पहले के चातुर्मास में महाराजश्री का व्याख्यान हुआ करता था । उस स्थान को देखकर मैंने कहा कि पहले तो यह सारा चौक खाली था लेकिन अब

यदि श्रमण संघ ही टूट गया तो सभी अपने में स्वतंत्र हैं। फिर किसी से आज्ञा मंगवाने का कोई प्रश्न ही नहीं रह जाता।

इस पत्र की एक प्रतिलिपि आचार्यश्री तथा एक प्रतिलिपि श्री उपाचार्य जी के पास पहुंचा दी गई। फिर श्री उपाचार्य जी का कोई पत्र नहीं आया।

इसके बाद जालंधर की विरादरी के मुखिया लुधियाना में आचार्यश्री की सेवा में पहुंचे और श्री प्रेमचंद जी के ध्वनि यंत्र पर बोलने की अनुमति मांगी। आचार्य श्री ने उत्तर में कहा कि भीनासर सम्मेलन में ध्वनि यंत्र खुल चुका है। अब पंजाब केसरी श्री प्रेमचंद जी महाराज ध्वनि यंत्र पर बोलने में स्वतन्त्र हैं।

पूज्य श्री जी की आज्ञा मिलते ही जालंधर विरादरी के प्रबंधकों ने फौरन ध्वनियंत्र पर बोलने का प्रबन्ध कर दिया।

यहां हमें श्री प्रेमचंद जी महाराज के उत्कृष्ट आचरण से यह शिक्षा मिलती है कि हम भी अनुशासन में रहना सीखें। इतने महान, ओजस्वी वक्ता होते हुए भी उन्होंने बड़ों की सविनय आज्ञा पालन का ज्वलंत उदाहरण हमारे सामने रखा। जनरल की हैसियत होते हुए भी वे सिपाही बन कर रहना अधिक पसंद करते थे। उनका कहना था :—

"लीडरों की धूम है, पर फालोअर कोई नहीं।"

सब तो जनरल हैं यहां, आखिर सिपाही कौन है? मातृभूमि का वह बहादुर सिपाही धर्म का वह बहादुर सिपाही, धर्म का झण्डा लेकर आगे बढ़ा तो बढ़ता ही चला गया।

अस्तु उन दिनों महाराज अपने व्याख्यान में आर्य और अनार्य इस विषय पर विस्तृत प्रकाश डाल रहे थे। उन्होंने कहा हमारे इस भारत देश का नाम ही आर्यावर्त है। आर्य अर्थात् जिन का आचार विचार, रहन-सहन, आहार, व्यवहार सभी कुछ उच्चश्रेणी का होता है। मांस, शराब आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करने वाले ही आर्य कहलाने के अधिकारी हैं। जो लोग इसके विपरीत आचरण करते हैं, वे अनार्य हैं।

जैन शास्त्रों में श्री पन्नवणा सूत्र में नौ प्रकार के आर्य माने गये हैं। यथा :—

क्षेत्रआर्य, कुलआर्य, भाषाआर्य, कलाआर्य, शिल्पआर्य, ज्ञानआर्य, दर्शनआर्य और चरित्रआर्य। जैन शास्त्रों में इन नौ प्रकार के आर्यों का विशद वर्णन मिलता है।

महाराज श्री ढाई महीने तक आर्य शब्द पर व्याख्यान फरमाते रहे। उन्होंने बताया कि जैन शास्त्रों में समस्त संसार के जितने भी चैतन्य शरीरधारी हैं, उन्हें तीन भागों में विभक्त कर दिया हैं :—असंयति, संयतासंयति और संयति।

प्रथम असंयति शब्द में आर्य भी हैं और अनार्य भी। मिथ्यात्वी भी है यथातत मिथ्यात्वी भी और समदृष्टि भी। जैन शास्त्रों के अनुसार चौदह गुण स्थान माने गये हैं। प्रथम गुणस्थान से चौथे गुणस्थान तक असंयति, पांचवे गुणस्थान को संयतासंयति, छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवें गुणस्थान तक संयति। संयतासंयति और संयति ये जीव तो उच्च कोटि के होते हैं, जैसे कि ऊपर नौवें स्थान पर चरित्र आर्य कहा है। छठे गुणस्थान से लेकर चौदहवे गुणस्थान तक के जीव उच्चकोटि के आर्य होते हैं और पांचवें गुणस्थान वाले जीव सच्चरित्र तथा प्रमाणित जीवन बिताने वाले होते हैं।

प्रथम प्रकार के असंयति जीवों के आठ विकल्प हैं। इन का आठ प्रकार से कथन किया गया है। यथा :—

असंयति, अव्रती, अपच्चखाणी (जिस का कोई नियम व्रत नहीं) असंवरी अजागृत, अपण्डित, अधर्मी और अधर्मी व्यवसायी।

अब इन का विस्तृत वर्णन देखिये :—

असंयति—ये सत्रह प्रकार के होते हैं

१. जो पृथ्वीकाय की दया नहीं पालते।

२. जो अपकाय की दया नहीं पालते।

३. जो तेऊकाय की दया नहीं पालते।

४. जो वायुकाय की दया नहीं पालते ।

५. जो वनस्पतिकाय की दया नहीं पालते ।

६. जो तेइन्द्रिय की दया नहीं पालते ।

७. जो बेइन्द्रिय की दया नहीं पालते ।

८. जो चतुरेन्द्रिय की दया नहीं पालते ।

९. जो पंचेद्रिय जीवों की दया नहीं पालते ।

१०. जो अजीव वस्तुओं की यतना नहीं करते ।

११. जो विना देखे काम करते हैं।

१२. उप्पेहा अर्थात् ढीले पसीते साधु या श्रावक को देख कर वैसा ही आचरण करने वाले ।

१३. विना परिमार्जन के वस्तुओं को उठाने वाले और धरने वाले ।

१४. परिठावणिया अर्थात् पानी या मलमूत्र आदि को अयत्न पूर्वक फेंकने वाले ।

१५. मन का असंयम ।

१६. वचन का असंयम ।

१७. काया का असंयम ।

ऊपरलिखित सत्रह बोलों में आर्य और अनार्य दोनों प्रकार के जीव आ सकते हैं। त्रेसठ श्लाघ्य पुरुष भी जब तक घर में रहते हैं, उनके विचारों की ऊंची-नीची असंख्य श्रेणियां हो सकती हैं । वैसे तो सभी त्रेसठ श्लाघ्य पुरुष आर्य ही होते हैं। तथागत मिथ्यात्वी और मिथ्यात्वी तथागत अनार्य ही होने चाहिएँ। जो मिथ्यात्वी हैं वे द्रव्य से आर्य भी हो सकते हैं और अनार्य भी ।

२ अव्रती—जिसका कोई व्रत न हो। अव्रती बारह प्रकार के होतें हैं। पंचेन्द्रिय और मन का अव्रत । छः काया का अव्रत । ये बारह अव्रत हैं ।

३ अपच्चक्खाणी—जिस का कोई नियम पच्चक्खान न हो।

४ असंवरी—पाप से बचने के लिए जो जीवन में कोई भी प्रतिज्ञा न करे। संवर सत्तावन प्रकार का होता है।

यथा :—बाईस परिषह, आठ प्रवचन दया माता के, बारह भावनायें, दस यति धर्म और पांच चरित्र। ये सत्तावन प्रकार का संवर है। इस का विस्तार नौ तत्त्व में देखना चाहिए।

आश्रव बयालीस प्रकार का होता है। विस्तृत वर्णन नवतत्व में देखिए।

अजागता—(सोया हुआ)। जो मनुष्य कुटुम्ब के पोषण में आरम्भ, समारम्भ में जागता है, उसे धर्म के प्रति सोया हुआ माना गया है।

अपंडित—जो पाप करने में भय नहीं मानता और जो पाप में प्रवृत रहता है, उसे अपंडित कहा गया है। शास्त्रकार ने पहले गुणठाणे से चौथे गुणठाणे तक वालों को अपंडित माना है। पांचवें गुणठाणेवाले श्रावक को पंडित एवं अपंडित माना गया है। छठे गुणठाणे वालों को पंडित माना है।

अधर्मी—जो चरित्र धर्म और सूत्र धर्म से शून्य है, उसे अधर्मी कहा गया है।

अधर्म व्यवसायी—वे व्यापार जिन में अत्यधिक आरम्भ-समारम्भ और जीवों का विशेष रूप में वध होता हो, वे अधर्म व्यवसाय के अन्तर्गत आते हैं। जो ऐसे व्यापार करता है, वह अधर्म व्यवसायी कहलाता है। जंगलों को कटवाना, मछलियों को बेचना आदि कार्य अधर्म व्यवसायी हैं।

आश्रव, अपंडित, अधर्म व्यवसायी के विषय में अत्यधिक विस्तृत, विवेचन किया जा सकता है परन्तु पुस्तक के आकार के बढ़ जाने के भय से इन का वर्णन संकोच में ही यहाँ किया गया है।

पीछे जो विवेचन चौथे गुणठाणे का किया गया है, उसमें चौथे गुणठाणे वाले को समदर्शी कहा गया है। समकित संवर, व्रत संवर, अप्रमाद संवर,

अकषाय संवर और शुभ योग संवर ये पांच भेद संवर के माने गए हैं। पहले गुणठाणे से चौथे गुणठाणे तक के आठ बोलों के वर्णन में उसी को असंवर कहा है। समकित को संवर एक स्थान पर कहा गया है और आठ बोलों में चौथे गुणठाणे वाले को असंवरी कहा गया है। इस में ऐसा अन्तर क्यों है? १५ योग को आश्रव कहा गया है। सैंतालीस भेदों को कर्मबंध का कारण माना है, फिर इस को शुभ योग संवर क्यों कहा गया है? जहाँ योग होगा, वहां लेश्या होगी। करण होगा, वहीं कर्म बन्धन होना आवश्यक है। फिर इसे संवर क्यों कहा गया है?

इस का समाधान यह है कि आत्मा की मोहनीय कर्म की दो प्रकृतियाँ मानी गई हैं। दर्शन मोहनीय और चरित्र मोहनीय। दर्शन मोहनीय की तीन प्रकृतियां हैं। समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय। अनन्तानुबन्धी की चार प्रकृतियाँ मानी गई हैं। इन सात प्रकृतियों का मूल से क्षय करने पर क्षायिक सम्यकत्व की प्राप्ति होती है। इन सातों का उपशम करने से उपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। इन सातों का क्षयोपशम करने से क्षयोपशम सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। चौथे गुणस्थान में ये तीनों श्रेणियाँ पाई जाती हैं। पांचवे गुणस्थान में पहुंचने के लिए अप्रत्याख्यानी चौकड़ी का क्षयोपशम करना आवश्यक है। देश विरति से सर्व विरति होने के लिए तीसरी प्रत्याख्यानी चौकड़ी का क्षयोपशम करना नितांत आवश्यक है। चरित्र की अपेक्षा से चौथे गुणस्थान वाला असंवरी है क्योंकि उसने चरित्र में विघ्न डालने वाली प्रकृतियों को नहीं रोका है।

कर्मबंध वीर्य, योग और लेश्या के कारण होता है। वीर्य दो प्रकार का होता है। कर्णवीर्य और लब्धवीर्य। कर्णवीर्य तब तक रहता है जब तक लेश्या और योग रहते हैं। चौदहवें गुणस्थान में पहुंच जाने पर कर्णवीर्य नहीं रहता, लब्ध वीर्य रहता है। जिस समय व्यक्ति तेरहवें गुणस्थान को छोड़कर चौदहवें गुणस्थान में जाता है, उस समय उसका अन्तिम समय रह जाता है। उस समय कर्णवीर्य, शुक्ल लेश्या और शुभ योग ही रह जाते हैं। तेरहवें गुणस्थान में, जो साता-

३ अपच्चखाणी—जिस का कोई नियम पच्चखान न हो।

४ असंवरी—पाप से बचने के लिए जो जीवन में कोई भी प्रतिज्ञा न करे। संवर सत्तावन प्रकार का होता है।

यथा :—बाईस परिषह, आठ प्रवचन दया माता के, बारह भावनायें, दस यति धर्म और पांच चरित्र। ये सत्तावन प्रकार का संवर है। इस का विस्तार नौ तत्त्व में देखना चाहिए।

आश्रव बयालीस प्रकार का होता है। विस्तृत वर्णन नवतत्व में देखिए।

अजागता—(सोया हुआ)। जो मनुष्य कुटुम्ब के पोषण में आरम्भ, समारम्भ में जागता है, उसे धर्म के प्रति सोया हुआ माना गया है।

अपंडित—जो पाप करने में भय नहीं मानता और जो पाप में प्रवृत रहता है, उसे अपंडित कहा गया है। शास्त्रकार ने पहले गुणठाणे से चौथे गुणठाणे तक वालों को अपंडित माना है। पांचवें गुणठाणेवाले श्रावक को पंडित एवं अपंडित माना गया है। छठे गुणठाणे वालों को पंडित माना है।

अधर्मी—जो चरित्र धर्म और सूत्र धर्म से शून्य है, उसे अधर्मी कहा गया है।

अधर्म व्यवसायी—वे व्यापार जिन में अत्यधिक आरम्भ-समारम्भ और जीवों का विशेष रूप में वध होता हो, वे अधर्म व्यवसाय के अन्तर्गत आते हैं। जो ऐसे व्यापार करता है, वह अधर्म व्यवसायी कहलाता है। जंगलों को कटवाना, मछलियों को बेचना आदि कार्य अधर्म व्यवसायी हैं।

आश्रव, अपंडित, अधर्म व्यवसायी के विषय में अत्यधिक विस्तृत विवेचन किया जा सकता है परन्तु पुस्तक के आकार के बढ़ जाने के भय से इन का वर्णन संकोच में ही यहाँ किया गया है।

पीछे जो विवेचन चौथे गुणठाणे का किया गया है, उसमें चौथे गुणठाणे वाले को समदर्शी कहा गया है। समकित संवर, व्रत संवर, अप्रमाद संवर,

अलग मुहल्लों के अलग-अलग मेम्बर बनाये गये। उन के ऊपर दीन दुःखी लोगों को सहायता पहुंचाने और वैजीटेरियन सोसायटी का प्रचार करने का भार डाला गया।

भादवा सुदी द्वादस को महाराजजी ने पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की जयंती मनाई। इस अवसर पर महाराज श्री का व्याख्यान हुआ और अन्य लोगों ने भजन वगैरह गाये।

प्रायः चातुर्मास आरम्भ होते ही यहाँ ऐसे कार्यक्रम चलते ही रहे। महाराज श्री के पंडाल में जाने से पहले ही वहां हर जाति के मुख्य लोग, स्त्री-पुरुष अपने भाषण वगैरह शुरू कर देते थे, क्योंकि महाराजश्री के आने से पहले ही हजारों की संख्या में लोग आ जाते थे। व्याख्यान समाप्त होने के बाद रास्ते में दोनों तरफ महाराज के दर्शनों के लिए हजारों की संख्या में लोग खड़े हो जाते थे। यहां से स्थानक का फासला लगभग ढाई तीन फर्लांग का था।

कार्तिक वदी अमावस को भगवान श्री महावीर जी का निर्वाण दिवस मनाया गया। महाराज श्री ने उनके जीवन पर जिस ढंग से प्रकाश डाला, जनता मंत्र मुग्ध हो उठी। इस चातुर्मास में महाराजश्री ने जो भजन गाये थे, वे बहुत लोकप्रिय हो गये थे। अतः विरादरी के प्रमुख लोगों ने उन भजनों का संग्रह कर के किताबें छपवाईं, जो हजारों की संख्या में लोगों में वितरित कर दी गईं।

इस वर्ष का यह चातुर्मास बजाय चार महीने के पाँच महीने का था, क्योंकि यह वर्ष लौंद का था। अतः पांच महीने पांच दिन तक लगातार महाराजश्री का व्याख्यान होता रहा। चातुर्मास समाप्ति के एक दिन पहले विदाई समारोह मनाया गया, जिस में महाराजश्री को हर समाज के मुख्य नेताओं ने अपनी-अपनी समाज की तरफ से तथा पूरे शहर की जनता की तरफ से दिये गए मानपत्रों को पढ़ कर सुनाया था। जालंधर शहर की तरफ से जो मान पत्र भेंट किया गया था, वह पंजाब के मुख्यमंत्री श्री रामकृष्ण जी ने पढ़ कर सुनाया था। इन मानपत्रों में से कुछेक इस पुस्तक में दिये गये हैं

अखिल भारतीय स्थानकवासी जैन श्रमण संघीय प्रचार मन्त्री, बाल ब्रह्मचारी, प्रसिद्ध वक्ता, जैन भूषण, पंजाब केसरी, परम श्रद्धेय, श्री श्री १००८ श्री स्वामी प्रेम चन्द जी महाराज ठाने तीन के जालन्धर नगर में चातुर्मास की समाप्ति पर उनके पवित्र चरण कमलों में सादर सभक्तिभाव समर्पित

अभिनन्दन-पत्र

जैन जगत हृदय सम्राट् परम पूजनीय श्रद्धेय गुरुदेव ! कहावत है कि आनन्द की घड़ियां व्यतीत होते देर नहीं लगती परन्तु इस हकीकत को साकार रूप में अनुभव करने का अवसर आज से पूर्व नहीं मिला था। अभी कल की ही तो बात है कि जालन्धर निवासी अपने नगर में आपके शुभागमन पर खुशी के मारे फूले न समाते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि चातुर्मास के आरम्भ पर आपकी सेवा में आदर सम्मान और स्वागत के हार्दिक भाव अभी अभी आपके चरणों में प्रस्तुत करके हटे ही हैं कि चातुर्मास समाप्ति का यह अवसर भी आ पहुंचा है। चातुर्मास काल का पाँच मास का लम्बा समय क्षण भर में व्यतीत होगया प्रतीत होता है। चातुर्मास समाप्ति के विचार मात्र से से ही हृदय में एक दर्द सा उठता है, एक हूक सी पैदा होती है, मस्तिष्क चकराने लगता है, दिल परेशान रहता है, विचार आता है कि कहीं यह स्वप्न तो नहीं आँखे मल-मल कर देखते हैं लेकिन फिर भी जब यह हकीकत ही जान पड़ती है तो फिर आँखें बन्द कर लेने को जी चाहता है कि शायद ऐसा करने से यह हकीकत स्वप्न में तबदील हो ही जाए।

हे पूज्यपाद ! आपको अलविदा कहने को दिल नहीं चाहता। होंठों से लगे अमृत भरे प्याले को कौन वह व्यक्ति है जो हटाना पसन्द करेगा। आपकी मधुर सुरीली हृदय की गहराइयों में उतर जाने वाली पवित्र वाणी की 'मुसलसल' और 'मुअस्सर' कानों की राह दिलों दिमाग में उतर रही मीठी धारा, जो रोम-रोम को प्रफुल्लित कर रही थी, को अचानक रुकते देखकर हमारी हालत निर्जल मीन की भाँति प्रतीत होती है। कृष्णवर्णीय गहरे घनघोर

बादलों की गरज के समय जब सुन्दर सुगन्धित पुष्पों की महक से मस्त मोर अपनी सुध-बुध खो कर अपने सुनहरी पंख फैला कर मस्ती में झूम रहा हो, ठंडी-ठंडी हवा चल रही हो, नन्हीं-नन्हीं बूंदें पड़ रही हों तो उस समय अचानक अगर सूर्य देवता अपने तीक्ष्ण, गर्म बाणों का प्रहार शुरू कर दें, आकाश फट जाए, बादल गायब हो जाएँ, हवा रुक जाए, ठंडी-ठंडी सुगन्धित पवन की जगह गर्म 'लू' ले ले तो जो हालत उस अबोध पक्षी की होती है ठीक वही दशा आज हमारी हो रही है। गुरुवर! वर्षा ऋतु को समाप्त हुए बहुत दिन बीत चुके। रेतीले चटीयल मैदान जहाँ बरसात के दिनों में लम्बी-लम्बी हरी भरी घास उग आई थी आज वहाँ फिर गर्द उड़ने लगी है। तालाबों की गोद में खिले कमल कभी के सूख चूके। आकाश पर काले-काले बादलों की उड़ती हुई फौजें कभी की कूच कर चुकीं। पी-पी करते पपीहे कभी के मौन हो चुके! अपने सुन्दर चमकीले पंखों के छत्र को मोर समेट चुका लेकिन भगवन्! आप हैं कि प्रभु-भजन तथा-जीवन-कल्याण हेतु अमृत वर्षा की झड़ी उसी गति से चली जा रही है। इस नदी की चाल में कोई फर्क नहीं आया लेकिन जैसे पर्वतों की कोख से उत्पन्न हो कर जल स्रोत बड़ी आन और शान से बहता हुआ एकदम भूमि में समा जाए तो जो हालत उस प्रवाह में बहते आरहे प्राणियों की होती है वही हालत आज हमारी भी है। लगभग आधा वर्ष होने को है प्रतिदिन मुँह अन्धेरे उठ कर और आवश्यक क्रियाओं से निवृत हो आपके प्रवचन श्रवण करने की एक धुन होती थी जो नगर के नर-नारियों को नगर केकोना-कोना से व्याख्यान स्थान पर खैंच लाती थी। कहते हैं कि मनुष्य का मन इन्द्रियों के विषयों की ओर बहुत जल्द आकर्षित होता है और ऐसे स्थान पर जाने के लिए मनुष्य का मन भागता है परन्तु अच्छे से अच्छे नाटक और बढ़िया से बढ़िया सिनेमा हाल को भी इतनी जल्दी भरते नहीं देखा गया जितनी जल्दी यह विशाल व्याख्यान पंडाल भरा करता था। प्रभो! क्या कुछ कहें और क्या कुछ लिखें जबान कहते थक सकती है, शब्द कोष समाप्त हो सकता है, स्याही खत्म हो सकती है, कलमें घिस-घिस कर टूट सकती हैं, हाथ लिखते थक सकते हैं लेकिन चतुर्मास काल में आपके अमृत प्रवचनों की महिमा गायन नहीं की जा सकती।

पूज्य गुरुवर! यह हम जालन्धर निवासियों का अति सौभाग्य था जो हमारा आपके चरणों के प्रति धर्म-प्रेम आपको प्रांत की एक सीमा से दूसरी सीमा तक खींच लाया। आप ने हमारी विनती को अपने विशाल हृदय में उच्चतम स्थान देकर हमारे नगर में ही चतुर्मास व्यतीत करने का निश्चय किया तो हे गुरुदेव! हमारे प्रेम और भक्ति को इतना मान देकर जालन्धर संघ रूपी विदुर के यहां स्वयं भगवान बन पधारने से आप ने हम पर जो उपकार किया है हमारी लेखनी में वह शक्ति नहीं कि आपके उस उपकार का मुनासिब शब्दों में गुणगान कर सकें।

प्रभो ! आपका संयमी जीवन उस ठोस चट्टान की तरह है जो सागर के मध्य में भयंकर तुफानों का मुकाबला करते रहने पर भी लाखों वर्षों तक अडोल और अडिग रहती है और जिसके आधार पर हम हजारों फुट ऊँचे रोशनी के मीनार अथाह सागर के सीने पर तैरने वाले विशाल जहाजों का सुरक्षित रूप में मंजिल पर पहुचने में सहायक बन कर उनका पथ-प्रदर्शक बनते हैं। श्रवण भगवान् महावीर ने साधु के लिए तप की भट्टी में सदैव तपते रहने वाले जिस सख्त कठोर दृढ़-प्रतिज्ञ और संयमी जीवन का आदेश दिया है और अपनी इन्द्रियों पर पूर्णतया काबू पाकर उनके तमाम बल को आत्म-चिन्तन और जगत् कल्याण के अर्पण करने का जो मार्ग दिखलाया है आप सख्ती से उस मार्ग पर अमल कर रहे हैं। आपका साधु जीवन अडोल ,अडिगय और लाल मिसाल संयमी साधु जीवन है। सिवाय आत्म-चिन्तन और आध्यात्मिक वाद की पेचीदा गांठों को खोल कर श्रोताओं को आत्मपथ का बोध करवाने के, आपको किसी अन्य व्यर्थ की वार्तालाप में रुचि नहीं। साधुवृत्ति के विरुद्ध अर्थात् दुनियावी बंधों और दुनियादारी की बातों में ग्रहस्थों के साथ उलझे रहना आपके स्वभाव में तनिक मात्र भी दाखिल नहीं। आत्मभाव और आध्यात्मिकवाद की बातें घंटों चलती रहें आप इससे नहीं उकताते लेकिन दुनियादारी की व्यर्थ की वार्तालाप में अपना एक क्षण भी जाया करना पसन्द नहीं करते आलस्य और व्यर्थ विश्राम के तो आप महान शत्रु है

भगवन् ! आपका ज्ञान भंडार अथाह सागर की तरह है। शास्त्रों का वह कौन सा रहस्य है जो आप से छुपा है। शास्त्र ज्ञान के समुद्र में कौन सी वह जगह है जहाँ आप की पहुँच नहीं। खुश्क से खुश्क आत्मार्थी विषय को मीठी रसीली, मनमोहक और दिल में उतर जाने वाली सरल और आसान वाणी से प्रतिदिन जीवन में घटने वाले दृष्टान्तों द्वारा अबोध जनता के दिल में उतार देना आपके लिए कोई मुश्किल नहीं। आपके वाणी में जादू सा असर है जो एक बार आप के व्याख्यान में आगया फिर यहीं का हो रहा जिसने एक बार इसका आनन्द पा लिया वह सदैव के लिए इसका मतवाला बन गया। यही तो कारण है कि बीन पर मस्त हो जाने वाले प्राणी की तरह श्रोतागण आपके व्याख्यान में अपने तन-बदन की सुध-बुध भुला कर सिर हिलाते और झूलते नजर आते थे। आपके व्याख्यान में तूफानी दरिया की सी रवानी है लेकिन वह रवानी नहीं जो किनारों को गिराती मिटाती और तबाह बरबाद करती जाए, बल्कि इन्सानी दिलों की तह पर चलने वाली आपके प्रवचनो की यह अमृतधारा सदियों से मन में बसी निर्बलता, परेशानी, बे-विश्वासी, अश्रद्धा, शंका और मिथ्यात्व भाव रूपी दरियाए दिल के शिकस्ता किनारों को मन की गहराइयों में उतर जाने वाले प्रभावित शब्दों रूपी चिकनी मिट्टी से भरती चली जाती है। लगातार पाँच मास बिना एक दिन के नागे के और कई बार तो अपनी शारीरिक वेदना की भी परवाह न करते हुए निरन्तर दो-दो घंटे तक बिना किसी पुस्तक को हाथ में लिए भगवान् महावीर के प्रवचनों के आधार और अपने मस्तिष्क में समाये ज्ञान भंडार के बलबोते पर नित्य नए से नए जनकल्याणकारी आध्यात्मिक विषयों को छेड़ना और उसे नित्य नई मिसालों से समझाना अपने अथाह ज्ञान सागर की गहराइयों से नित्य नए बहुमूल्य लालो-जवाहर निकाल कर इन रत्नों से श्रोताओं की झोलियाँ भरते चले जाना आपही का तो काम था। जो दृष्टान्त एक बार आपके मुख से सुन लिया फिर दुबारा उसका जिक्र न आया, जिस प्रकार नदी में हर समय बढ़ते रहने पर भी पानी कभी समाप्त नहीं होता और उसकी गति सदैव चलती ही रहती है ठीक इसी प्रकार आपके व्याख्यानों का प्रवाह चलता रहा। जिन्दगी का वह

कौन सा मसला है जिसे आपने नहीं छेड़ा। मानव जीवन को उज्जवल बनाने की वह कौन सी विधि है जिसको आपने बयान नहीं किया। मन की विचित्र मशीन में बिछे तारों के जाल में वह कौन सी तार है जिसे आपने नहीं हिलाया। शरीर की वह कौन सी नस है जिस पर आपका हाथ नहीं पड़ा। जीवनोपयोगी वह कौन सा विषय बाकी रहा जिसका आपने विस्तार पूर्वक हल नहीं किया। कदम-कदम पर आने वाली वह कौन सी रुकावट है और जीवन को फिसलाने वाली वह कौन सी घाटी है जिससे बच निकलने की विधि आपने नहीं बताई। एक कुशल वैद्य की तरह आपने आत्मा को पतन की ओर ले जाने वाली तमाम बिमारियों का अचूक और सफल इलाज बतलाने में कोई कसर उठा नहीं रखी। श्रोता हैरान थे कि यह अद्भुत स्रोत कैसा है। रत्नों से भरी यह खान कितनी विशाल है। इस ज्ञान भंडार की सीमाएँ कहाँ-कहाँ तक पहुँच चुकी हैं।

कृपा निधे : ! इस अमृत स्रोत के किनारे बैठ कर कितनों ने अपने जीवन मोड़ को मोड़ा है। मांस, शराब आदि जिनके जीवन की जन्म घुट्टी बन चुकी थी उसका त्याग करके कितनों ने ही अपने जीवन को कुन्दन की भांति चमका लिया है। हर रोज व्याख्यान के समय हजारों जैन-अजैन नर-नारियों के अलावा दोपहर के समय आपके चरणों में श्रद्धालुओं और आत्म जिज्ञासुओं का जो तांता बंधा रहता था उस समय सैंकड़ों ने ही अपने पापमय जीवन की निर्जरा करके और बुराइयों को छोड़कर प्रतिज्ञा और प्रणमय जीवन धारणा को ग्रहण किया है। कहां तक वर्णन करें आपने धर्म और राष्ट्र के आदर्श नेता और वक्ता के रूप में अन्धविश्वास मिथ्यावाद आदि अनेक घृणित कुप्रथाएँ, जो हमारे जीवन के विनाश का कारण हैं, का खण्डन करके जो शिक्षाएँ हमें प्रदान की हैं उन्हें हम कभी भी न भुला सकेंगे—

प्रभो ! इस घोर कलियुग के अन्दर आप जैसे महान्, संयमी, चरित्रवान् शास्त्रज्ञाता, जीवन नौका के निपुण खेवैया, आत्मिक रोगों के कुशल वैद्य, जीवन को अमर बनाने वाली जीवन घुट्टी पिलाने वाले योगीराज का सम्पर्क बड़े ही पूर्व संचित पुण्योदय से प्राप्त होता है। अपनी हृदय स्पर्शी अमृतवाणी से

अधर्मियों को धर्मी, दुराचारियों को सदाचारी, पापियों को धर्मात्मा और नास्तिकों को आस्तिक बनाना आप ही का तो काम है। आप जैसे चरित्रवानों के तपोबल से ही तो भारत बचा हुआ है। आप जैसे तपस्वी सन्तजन ही भारत की महान् विभूति, सम्मान तथा मर्यादा हैं। आप ही हमारे धर्म के परम तेजस्वी, मेधावी कर्णधार हैं। आप सूर्य हो आपका प्रकाश सीमित नहीं परन्तु हम पापी जीवों का मन और हृदय पाप कर्मों से लिप्त होने के कारण चारों ओर से दबा है, इसके इर्द-गिर्द पापों की मोटी तहें चढ़ रही हैं अगर इनमें आपके सदुपदेशों का प्रकाश नहीं जा सका तो इसमें आपका कोई दोष नहीं। हम आपके भंडार से केवल इतना ही ग्रहण कर सके हैं जितना हमारा पात्र था। समुद्र के किनारे आकर भी अगर हम अपना पात्र न भर पाए तो इसमें हमारा ही दुर्भाग्य समझना चाहिए। तो हे गुरुवर! हमें आप से जितना लाभ लेना चाहिए था वह नहीं ले पाए। हम आशा करते हैं कि आप हमारी भूलों, कमजोरियों और त्रुटियों की ओर ध्यान न देकर हमें क्षमा करेंगे। प्रभो ! हम आपके अगाध उपकार को कभी न भूल सकेंगे और हमारी भी आपके श्री चरणों में सविनय प्रार्थना है कि आप भी इन तुच्छ सेवकों और भक्तों को न भुलाकर पुनः जल्दी ही हमारे नगर में पधारने की कृपा करेंगे।

अन्त में हमारी यह प्रार्थना है कि चातुर्मास काल में यदि हमसे आपकी कोई असाधना या भूल हो गई हो, हमारे किसी कर्म से आपके मन को रत्ती भर भी दुःख हुआ हो, हमारी ओर से आपके प्रति श्रद्धा और भक्ति में कोई कमी रह गई हो तो आप अपने विशाल हृदय से क्षमा करेंगे और आशा करते हैं कि आपकी कृपा दृष्टि हमारे इस क्षेत्र पर सदैव बनी रहेगी।

ता० २५-११-५८	आपका चरणोपासक

श्री जैन संघ जालन्धर।

प्रातः स्मरणीय, परमश्रद्धेय, तेजस्वी, त्यागी, तपोनिधि, संत शिरोमणी, प्रसिद्ध वक्ता, बाल ब्रह्मचारी पंडितराज, जैन भूषण श्री श्री १००८ श्री स्वामी प्रेमचन्द जी महाराज के पुनीत चरणार्विन्द में श्री जैन युवक मंडल जालन्धर की ओर से अत्यन्त विनम्रता पूर्वक प्रस्तुत हार्दिक

अभिनन्दन पत्र

हमारे अन्तः स्थल में निवास करने वाले हे परं वन्दनीय **गुरु देव !** आप श्री के पवित्र चरण कमलों में अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि भेंट करते हुए जब हम यहाँ के आज के वातावरण और अपनी वर्तमान दयनीय निराश्रित स्थिति का आज से पांच मास पूर्व चातुर्मास काल के प्रारम्भ के समय की हर्षदायिनी, उत्साह वर्द्धक स्थिति से मुकाबला करते हैं, तो हमें अपनी उन दोनों अवस्थाओं के भीतर आकाश पाताल का सा विशाल अन्तर दृष्टिगोचर होता है ।

एक पूर्णिमा की सी समुज्जवल; शीतल, सरस, शान्तिदायिनी तारों भरी वह सुन्दर रात्रि थी कि जिसके अन्तिम पहर की समाप्ति में आप श्री के अलौकिक, द्विय व्यक्तित्व के प्रकटीकरण का अस्तित्व झलक रहा था और एक आज की घनघोर अन्धकारमयी अमावस की सी भयानक यह निशा कि जिसके अवसान में आप श्री के पवित्र सहवास का दुःखद विछोह प्रतिबिम्बित हो रहा हो । **प्रभो !** देखिये तो सही, हमारे मुख मंडल आज कितने कुम्हलाए हुए हैं । नेत्रों में पहले की सी ज्योति दृष्टिगोचर नहीं हो रही । आपके विहार का दुःखद समाचार पाकर, शोकातिरेक के कारण, श्रावण भादों की सी झड़ी लगा चुकने के पश्चात् यह हमारे अभागे नेत्र शुष्क हो चुके हैं । ऐसा प्रतीत होता है मानो अब उनमें अवशेष कुछ भी नहीं बचा । **भगवन् !** यद्यपि मैं खड़ा हूँ परन्तु मेरे हाथ-पांव लड़खड़ा रहे हैं । बोलना चाहता हूँ परन्तु कण्ठ रुंधा हुआ है और जिह्वा साथ नहीं देती । मेरी ही नहीं **मेरे गुरुवर !** उपस्थित सभी नर-नारियों की प्रायः आज यही दशा है और इसका एकमेव कारण यही है कि हम आज की इस निर्दयी रात्रि के पीछे झलकते हुये उस क्रूर प्रभात को देख रहे हैं कि जिस के उदय होते ही आप श्री तुरन्त ही चकवा चकवी की

भांति हम से विलग हो जाएंगे तथा हमें आप श्री की जुदाई के दारुण दावानल में निरन्तर जलते रहना होगा।

पिंजरे में घिरा पक्षी अकस्मात् उसका मुख खुला देख, कैदखाने से एक दम बाहर हो, उनमुक्त नीलाकाश में यत्र, तत्र, सर्वत्र विचरण करने के लिये तुरन्त ही जिस प्रकार स्वतन्त्र हो जाता है, ठीक उसी प्रकार आगामी निकट प्रभात में ही आप श्री भी चातुर्मास सम्बन्धी काल अवधि के समाप्त होते ही मन चाही उड़ाने भरने में स्वतन्त्र होंगे इस की कल्पनामात्र से ही हमारा हृदय विह्वल हो रहा है। आपके दर्शनों के अभाव में, हे परं पुनीत महात्मन्! हम ही नहीं वरन चरणजीत पुरे के इस रमणीक विशाल पंडाल की यह पवित्र भूमि जो निरन्तर पाँच मास से तीर्थस्थान बनी हुई थी, तथा आपके ज्ञान निर्झर से निरन्तर प्रवाहित होने वाली, कलमल नाशिनी आध्यात्मवाद की सरस मंदाकिनी से पूर्ण रूपेण जिसका सिंचन हुआ था। हे जगत वन्द्य गुरुवर! जिसके कण-कण से उठने वाली तप, त्याग, संयम तथा विश्वमैत्री की विशुद्ध, सुन्दर सरस एवं मुखकर सुवासित भावनाएँ अपनी अनश्वर अध्यात्मिक सुगन्धि से प्राणि मात्र के हृदय में व्याप्त ईर्षा, कलह, विद्वेष, मात्सर्य तथा असहिष्णुता की विशाक्त भावनाओं को मुशक काफूर के समान धोती हुई नव सृजनकारी ऋतुराज वसंत की तरह क्या युवा, क्या बाल, वृद्ध स्त्री और पुरुष सकल प्राणिमात्र के अन्तः करण में पारस्परिक प्यार और स्नेह का सृजन किया करती थी वह भी आपके विहार का कष्ट प्रद समाचार पाकर बालकविहीन माता की शून्य गोदी के समान आज सुनसान पड़ी है।

प्रभो! चातुर्मास के इस स्वर्णिम काल में दया, तथा करुणा का अत्यन्त समुज्वल आदर्श सदा सर्वदा आप हमारे सम्मुख उपस्थित करते रहे हैं। दीन दुखी मानव के अन्तःकरण से झंकृत वेदना भरे स्वरों से एक रूप होकर उसके दुःख दारिद्र को अपना दुःख दारिद्र समझते हुये अविलम्ब उसके कष्टों का परित्राण करने की मङ्गलमयी भावनाओं के सुन्दर पाठ हमारे समक्ष वर्णन करने के लिये, सदैव आपके व्याख्यानों का सर्वोपरि विषय रहे हैं। हे दीन

बन्धु ! व्यथित की व्यथा में व्यथित हो उठना क्या आप ने नहीं सिखाया ? दुःखी के दुःख में रो उठने की भावना क्या आपके व्याख्यानों की विशेषता नहीं रही, नाथ ! क्या दुःखी के नेत्रों से बह रही अश्रुओं की अविरल झड़ी को करुणा और सहानुभूति के सम्मिश्रित जल से शान्त कर उसके संतप्त हृदय में शीतलता की निर्मित भावना आपकी ही सात्विक देन नहीं ? यदि है तो फिर हे दीन बन्धु सुकोमल हृदय महात्मन् ! आप आज इतने कठोर क्यों हो चुके हैं। जनता जनार्दन की शोक ग्रस्त मुद्रा और आंसुओं की अविरलधारा से मुख धोती हुई सजीव मूर्तियों पर आपको दया क्यों नहीं आती। सिसकियां भरती हुई हजारों ही जैन अजैन जनता आपके तंई अपना उत्कट प्रेम प्रदर्शित करती हुई भी आपको यहां पर रुकाये रखने में आज असमर्थ क्यों हो चुकी है। हमारे सम्मुख रखे जाने वाले दया भगवती के अपने महान् आदर्शों का भगवन् तनिक ध्यान तो कीजिये। क्या आप हमें रुलाकर नहीं जा रहे! तनिक विचारिये तो सही। परन्तु हे नाथ विवश हैं हम दोनों। आपके दिव्य व्यक्तित्व का आकर्षण तथा ब्रह्मचर्य के प्रकाश से प्रदीप्त तप त्यागमयी आपके अलौकिक जीवन के प्रति नर-नारी सकल जन समुदाय की अनन्य भक्ति जहां एक ओर आपको अपने मध्य में विराजमान रहने के लिये बाध्य कर रही है, वहाँ दूसरी ओर शास्त्रीय मर्यादाओं में बन्धा होने के कारण आप ऐसा करने में असमर्थ प्रतीत हो रहे हैं।

हे योगी राज ! जालन्धर नगर निवासियों पर आपने जो असीम कृपा की है हम उस के लिये सदा सर्वदा आप श्री के आभारी रहेंगे। जालन्धर नगर का बच्चा-बच्चा स्वामिन् ! आप श्री के उपकारों से दबा पड़ा है। हे तपोनिष्ठ महामुने ! आपका ऋण हम तीन काल में भी नहीं चुका सकते।

सत्य और अहिंसा के अवतार, बिलखती हुई मानवता के त्राता, शान्ति के अग्रदूत जैन धर्म के चौबीसवें तीर्थंकर भगवान् महावीर को पावन मधुमयी अमृतवाणी के अपरिमित ज्ञान कोष से हृदय रूपी अपने निर्मल कलश में सरस एवं शीतल जलकण संकलित कर, प्रभु के संदेश-वाहक के रूप में स्थान २ पर पैदल भ्रमण कर प्राणि मात्र के अन्तःकरण में उनका प्रकाश एवं प्रसार करने

वाले हे दयालु महात्मन् ! जालन्धर नगर निवासियों को प्रदान की हुई चातुर्मास सम्वन्धि अपनी स्वीकृति को पूर्ण करने के लिये कहाँ मुजफ्फर नगर और कहाँ जालन्धर, सैंकड़ों मील की लम्वी यात्रा और मार्ग में उपस्थित होने वाली नाना प्रकार की असहनीय यातनाओं को तृणवत समझते हुये, समाजकल्याण की प्रवल भावना के वशीभूत, शुष्क एवं संतृप्त भूमि के सकल परिताप मोचन हेतु तथा जगत कल्याण की विशुद्ध भावना के वाहुल्य के कारण, पृथ्वी के अनुपजाऊ भाग पर शस्य श्यामल लहलहाती हुई हरी भरी खेतियाँ देखने की मङ्गलमयी कामना के निमित्त अपनी चिर परिश्रम युक्त चिर संचित अथाह जल राशि को लुटाकर अपने जलकण रूपी रक्त विन्दुओं की अविरल झड़ी से सदा सर्वदा सृष्टि का सिंचन करने वाली निर्मल मेघ-मालिका सदृश्य हे दीन दुःखी के करुण क्रंदन पर द्रवित हो अपना सर्वस्व लुटा कर गुलाव की सुन्दर पंखुड़ियों की भान्ति सदा सर्वदा विकसित रहने का गौरव प्राप्त करने वाले श्रद्धेय गुरुवर ! यहाँ पर पधारने की आपकी असीम कृपा के लिये हम सदा आपके आभारी रहेंगे ।

त्याग और तपस्या की उत्कृष्ट सीमा पर आसीन मुनिवर ! निर्मम पतझड़ ऋतु के क्रूर करों द्वारा विनष्ट तहस-नहस श्मशान तुल्य वाटिका में ऋतुराज वसंत के शुभागमन पर पुन: प्रकट होने वाली सुन्दर छटा के समान काम, क्रोध, मद, लोभ विषय विकार आदि आत्मा के आन्तरिक शत्रुओं द्वारा मर्दित हमारी जीवन वाटिका में आप श्री के पावन प्रवचनों से तप, त्याग, संयम. वैराग्य और सदाचार के पुष्पों से युक्त जिस सुन्दर फुलवाड़ी का वीजारोपण हुआ है आप श्री के चले जाने पर भी उसकी सुवासित सुगन्धि से हमारे हृदय कमलविकसित होते रहेंगे तथा आपके उपकारों के प्रति कृतज्ञता के रूप में उन हृदय कमलों से निकलने वाली भीनी-भीनी सुगन्धि दिग्दिगन्त में चिरकाल तक आपका यशोगान करती रहेंगी ।

प्रभो ! हम ही नहीं वरन पशु भी अपनी मूक भाषा में आप श्री के उपकारों से कृत्य कृत्य होने का भाव प्रदर्शित कर रहे हैं । स्वामिन्! आपने मनुष्य

मात्र के कल्याण के लिये तथा उसका कण्टका कीर्ण जीवन मार्ग समतल बनाने में जहां कोई कसर नहीं रखी, वहाँ शुद्धाहार और मांस भक्षण विरोध को लेकर खून पसीना एक करके निरन्तर दो दो घंटे तक निर्बाध गति से भाषण देते हुए सहस्रों मांस भक्षक प्राणियों के पाषाण हृदयों में निस्सहाय मूक, दीन पशुओं के प्रति दया और सहानुभूति का हिलोरे लेते हुआ जो विशाल सागर आपने प्रवाहित किया है, भला उस के लिये वह निःसहाय प्राणी आप श्री का क्यों न आभार माने। यह आप के ही सत्कृत्यों का फल है कि सैंकड़ों नहीं हजारों नर-नारी मांस भक्षण, शिकार न करने आदि का नियम कर अपने जीवन को सुधारने के साथ ही साथ उन दीन जीवों को अभय दान प्रदान कर चुके हैं कि जिन की जीवन लीला, अपनी रसना के आस्वादन मात्र के लिए समाप्त करने में उन्हें तनिक भी संकोच नहीं होता था।

विशुद्ध साधुता के ज्वलन्त प्रतीक हे सर्वश्रेष्ठ त्यागी महात्मन् ! यूं तो भारत वर्ष में कई करोड़ साधु वेष धारियों के झुंड के झुंड भोली भाली जनता का रक्त चूसते हुये, भूभार बनकर पृथ्वी के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक राम नाम की दुहाई देते हुए दिन देखें न रात चौबीसों घंटे अपना उल्लू सीधा करते हुये दिखाई देते हैं परन्तु **हे संत शिरोमणि !** आप सदृश्य साधुता के वास्तविक गुणों से सम्पन्न **महान् मार्ग द्रष्टा !** सूर्य लेकर ढूँढ़ने पर भी शायद ही इस धरती पर कहीं मिलेंगे।

हमारे अन्तः करणों पर अपने तेजस्वी जीवन की अमिट छाप लगाने वाले **हे परं बंदनीय गुरुदेव !** आपके उपकारों तथा हम अज्ञानी जीवन का परिमार्जन करने की महत्त्वाकांक्षा लिये अस्वस्थ होने पर भी जनता के दर्शनाभिलाषी तृषित नेत्रों को तृप्त करने के निमित हमारे मध्य आ विराजमान हो निरन्तर दो दो घंटे तक अमृत वर्षा की झड़ी लगाने के आप श्री के अत्यन्त स्तुत्य प्रयत्नों के प्रति आभार प्रदर्शित करने के लिये हम तो क्या साक्षात सरस्वती भगवती के कोष में भी वह शब्द नहीं कि जिनकी सुन्दर माल प्रस्तुत कर आप के चरण कमलों में अर्पित की जा सके।

प्रभो ! आपने इस पाँच मास के समय में हम अभागों के लिये क्या कुछ

नहीं किया। अपने जीवन की वहुमूल्य शक्ति और अनथक परिश्रम आप श्री ने जो हम पर खर्च किया है। यदि हम लोहा भी होते तो आप जैसे पारस के संसर्ग में आने के कारण कभी का सोना बन चुके होते। सकुशल शिल्पकार के हाथ पड़ने पर उसके हथौड़े और छैनी की तीखी नोक से निर्जीव पत्थर भी भगवान् का रूप धारण कर लेता है, परन्तु हम सजीव होने पर भी तथा आप सरीखे अनुपमेय चित्रकार की प्राप्ति पर भी पर्याप्त रूप में मानवता का परिधान न ओढ़ सके, इस में हमारा दूर्भाग्य ही नहीं तो और क्या है। कुछ बनना एवं ग्रहण करना तो दूर रहा वहुत संभव है कि इस चातुर्मास काल में हम आप श्री का यथेष्ठ सम्मान भी न कर सके हों। अनजान और अज्ञानी होने के कारण हम हतभाग्यों से आप श्री की सेवा में वहुत सी त्रुटियाँ हूई होंगी, इसके लिए अन्यन्त विनम्र भाव से हम क्षमा प्रार्थी हैं।

हे **कृपानाथ** ! हमें छोड़ कर आप आज विहार कर रहे हैं। हमारी शोक ग्रस्त मुद्राएं तथा नेत्रों से वह रही जल धारायें संभवतः आपके वेगवान पैरों की गति को रोक न सकेंगी। अश्रु जड़ है और प्रभो आप चैतन्य। जड़ से चैतन्य भला कब रुका है। जड़ से चैतन्य को रोकने का हमारा यह प्रयास अवश्य विफल ही होना था। परन्तु फिर भी **भगवन्** आपको विदा करते हुये हमारे दिल भरे हुये तो अवश्य हैं, परन्तु निराश नहीं। आपके पीछे आपश्री द्वारा आलोकित पथ के प्रकाश में हम अपने अन्तः करणों में वह आत्म चेतना का प्रकाश भरने का प्रयास करेंगे कि जिस की चुम्बक की सी आकर्षण शक्ति के कारण अपने भक्तों की देख भाल के लिये आप को पुनः तुरन्त ही इधर मुख मोड़ना होगा।

अन्त में आप श्री दीर्घ आयु हों। और आप की सवल छत्र छाया में जगत हितंकर **भगवान् महावीर स्वामी** द्वारा प्रशस्त, तप त्याग, संयम, ब्रह्मचर्य आत्म-निग्रह, अचौर्य एवं अपरिग्रह जैसे वृहत मङ्गलमयी सात्विक सिद्धान्त को प्राणपन से अपने जीवन में उतारते हुये, संसार के समस्त क्षेत्रों में उत्तरोतर उन्नति करता हुआ यह अहिंसक जैन समाज विश्व में उसके सर्वोपरि गौरवान्वित सिंहासन पर आरूढ़ हो सके, शासन देव से हमारी यही प्रार्थना है

इन टूट फूटे शब्दों के साथ हम आपके चरणारविन्द में अपनी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करते हैं।

हम हैं

अत्यन्त अधम, अविनीत, गुरुचरणों का यथेष्ट सम्मान करने की विधि से सर्वथा अनभिज्ञ, आप श्री की चरण धूलि को शिरोधार्य करने का गर्व प्राप्त करने के लिये अत्यन्त उत्सुक

२५-११-५८ आपके चरणोपासक :—

सदस्य श्री जैन युवक मंडल जालन्धर।

जैन-भूषण प्रसिद्ध वक्ता श्रद्धेय श्री स्वामी प्रेम चन्द जी महाराज की सेवा में सादर प्रस्तुत

अभिनन्दन-पत्र

आदरणीय गुरुदेव :—हम जालन्धर-निवासी आपके अतिशय आभारी हैं जो आप ने अपना मूल्यवान् चातुर्मास जालन्धर में व्यतीत किया। आपकी सरल, निश्छल एवं प्रेम-सिक्त वाणी जीवन-पर्यन्त याद रहेगी। जालन्धर की माटी का कण कण आपकी इस उदारता एवं उपकार के लिए कृतज्ञ है। यह सच ही कहा गया है कि—

'बलिहारी वा गुरु की जिन गोविंद दिया मिलाय'

हे कृपालु महात्मन्! आपने इस अल्पकाल में ही हमारे जीवन में जो क्रान्तिकारी परिवर्तन तथा नव-जीवन का संचार किया है उसकी प्रशंसा करते हुए हमारी जिह्वा नहीं थकती। आपकी ओजस्विनी वाणी के प्रभाव-स्वरूप सैंकड़ों नर-नारियों ने मांस, मदिरा तथा अन्य नशों का सेवन सदैव के लिए बन्द कर लेने का व्रत धारण कर लिया है। आपके अमृत-स्वरूप उपदेशों को सुनकर हमारे विलास-मय जीवन में जो संयम, स्फूर्ति एवं सुख का प्रादुर्भाव

हुआ है, उसे नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता। मन, कर्म और वचन में पावनता लाने की आपने स्मरणीय प्रेरणा दी है।

हे प्रकाश-पुंज ! आप परम त्यागी है तथा सांसारिकता और भौतिकता से ऊपर उठ चुके हैं। इसके बावजूद आप सांसारिक जीवों के कल्याण के हेतु अपने अमृतमय उपदेशों द्वारा समाज में प्रचलित भाँति भाँति की रूढ़ियों तथा समाज को खोखला एवं निष्क्रिय करने वाले अन्य बुरे रस्मोरिवाजों के विरुद्ध जो बुलन्द आवाज उठाते हैं, वह आप जैसे बाल ब्रह्मचारी निष्णात मुनिवर तथा कृपालु महात्मा के लिए ही सम्भव है। आपके प्रिय शिष्यों की निष्ठा, पावनता, सरल स्वाभाव और संयम की प्रशंसा करना भी हमारा कर्तव्य हो जाता है। इन सब बातों से आपकी विशाल विद्वत्ता का जो हमें परिचय उपलब्ध हुआ है, वह हमारे लिए एक निधि बन गया है। हम आपकी इस मूल्यवान् पूंजी को सदैव हृदय में सँजोये रखेंगे।

परम पूजनीय महाराज ! सांसारिक भोगों में लिप्त हमारे अन्धकारमय जीवन में आप ने प्रकाश का संचार किया है। आप जैसी महान् आत्माओं के सहारे ही यह ब्रह्मांड टिका है, धरती घूम रही है और प्रकृति के अमूल्य खजाने खुले हैं। आपके व्याख्यान पापियों के लिए वज्र के समान हैं। आपकी सिंहगर्जना सुनकर हम कुछ सोचने को मजबूर हो जाते हैं और सोच कर कुछ कर गुजरने को, जिसमें समाज का हित हो, मूक-प्राणियों का भला हो। समाज-हित ही आपका धर्म है।

तुम में करुणा ओत-प्रोत है, हम में उसका नया स्रोत है।

आप तो रेगिस्तान में हमें पानी पिला रहे हैं। भगवान महावीर के आप जैसे महान् तपस्वी, महान् त्यागी, महान् संयमी और समाज के सजग प्रहरी नायक ही इस संसार सागर में हम जैसे तुच्छ प्राणियों का उद्धार कर सकते हैं।

हे सरल स्वामी, धर्मनायक ! हम आपके इस अगाध उपकार को कैसे भूल सकेंगे ? हमारी आप से सादर एवं सविनय प्रार्थना है कि आप भी अपने

इन श्रावकों के कल्याण-अर्थ पुनः जल्दी ही हमारे नगर में पधारने की कृपा करेंगे। इस बार आप ने जो देरी की है, वह असह्य थी। ग्यारह वर्ष तक इस प्रकार की स्थिति रही जो पानी से बाहर मछली की होती है। हमारी बहनों और माताओं की ओर से अभिवादन स्वीकार कीजिए।

हमें विश्वास है कि आप अपने विशाल हृदय में हमारी भक्ति को स्थान देंगे। आप के सरल स्वभाव और प्रभावशाली व्याख्यानों ने ऐसा जादू डाला है कि हम आपको कभी नहीं भूलेंगे। अपनी त्रुटियों एवं गलतियों के लिए हम क्षमा-प्रार्थी हैं।

कृपया इस श्रद्धा-सिक्त अभिनन्दन-पत्र को स्वीकार कीजिए।

हे तपस्वी ! मैंने देखा, कैसे तुम जनता के।
हृदय-कमल पर सरस्वती के वरद पुत्र से।
इस जीवन में महिमा-मंडित हुए, विराजे।
तुम्हें स्नेह की अक्षय निधि अर्पित करती है।
तरुणों की पीढ़ी, जीवन में मार्ग खोजती।
चट्टानों के बीच फेन की धारा जैसी।
सम्राटों को कब यह जन सम्मान मिला था ?

हम हैं आपके सेवक :—
जालन्धर-निवासी

पंजाब भास्कर, बाल ब्रह्मचारी, निर्भीक वक्ता, जैन भूषण, परम श्रद्धेय श्री प्रेमचन्द जी महाराज के परम पुनीत चरण कमलों में चातुर्मास की समाप्ति पर समर्पित।

पुष्पाञ्जलि

परम पूज्य गुरु देव,

आपके चरण कमलों में यह तुच्छ पुष्पाञ्जली समर्पित करते हुए हमारा

हृदय गद्गद् हुआ जा रहा है। आशा है कि आप इस श्रद्धा और प्रेमभावना से अर्पित की गई इस तुच्छ भेंट को अपने उदार हृदय से स्वीकार कर हमें कृतार्थ करेंगे।

भगवन्—आपके पवित्र गुणों का गान करना हमारी लेखनी से बाहर की बात है पर फिर भी हम साहस कर इन टूटे फूटे शब्दों में अपने हार्दिक उद्गारों को प्रकट कर यह तुच्छ भेंट अर्पित कर रही हैं।

सत्य और अहिंसा के परम पुजारी—आप की अमृत वाणी में वह शक्ति है जो कि मृतक दिलों में भी नवजीवन संचार कर देती है, और कर्म क्षेत्र से दूर भागने वाले व्यक्तियों में आशा तथा उत्साह की लहर उत्पन्न कर उन्हें कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त करती है और भोगवासना के कीचड़ में फँसे हुए व्यक्तियों की जीवनोद्धारक बन कर उन्हें मोक्षमार्ग दिखाने वाली है। वस्तुतः यह सत्य और अहिंसा के अटल पुजारी की अमर घोषणा है।

हे दयानिधे—आपकी अत्यन्त रोचक तथा सजीव भाषण शैली में निर्भीकता और यथार्थता कूट २ कर भरी हुई है। यह आपके प्रवचनों में अनुपम विशेषता है कि आप कठिन से कठिन आध्यात्मिक विषयों को भी किंवदन्तियों, कथाओं, दोहों, शेरों और छन्दों द्वारा अत्यन्त सरल बना देते हैं और इस ढंग से समझाते हैं कि साधारण एवं अनपढ़ व्यक्तियों के हृदय में भी वे सहज ही घर कर जाते हैं।

हे धर्मोपदेष्ठः—आपने अपना समस्त जीवन जनहितार्थ धर्मोपदेश में अर्पित कर रखा है। आप सदा नगर-नगर गाँव-गाँव में पैदल तथा नंगे पाँव घूम कर धर्म प्रेमी जनता को अपने प्रवचनों से कृतार्थ करते रहते हैं। आप धुरन्धर विद्वान् तथा अनेक भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित हैं। यह जालन्धर नगर का सौभाग्य है कि इस वर्ष चौमासा भर आपके वचनामृत का पान कर यहाँ के नर नारियों ने धर्म पिपासा को शान्त किया है। इस शुभ अवधि में आपने अपने मुखारविन्द से धर्मोपदेश की वह झड़ियाँ लगाईं कि बड़े बड़े पापी मनुष्य भी दुर्व्यसनों को छोड़ कर शुभ मार्ग की ओर आकृष्ट हो गये। कईयों

ने माँस खाना, शराब पीना, और जूआ खेलना आदि दुर्व्यसन छोड़ दिये। आपका एक एक शब्द सत्य पर अवलम्बित था। आपकी सौम्यमूर्ति के दर्शन करते ही पापी जीव अपने किये पापों का प्रायश्चित कर सदा के लिए मुँह मोड़ लेता है। आपको सर्वदा प्रतिपल सांसारिक जीवों के कल्याण और देश जाति की भलाई का ही ध्यान लगा रहता है। गरीबों के लिए जो तड़प आपके हृदय में हैं वह आजकल के समय में बहुत कम नेताओं में पाई जाती है। आपकी दृष्टि में छोटे बड़े, धनी निर्धन सब एक समान हैं। काल का चक्र अति तीव्र गति से चलता है। यह चौमासे का लम्बा समय पलों की भाँति व्यतीत हो गया। आज चौमासा व्यतीत कर आप से वियुक्त होते समय हमें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि जैसे हमसे कोई बहुमूल्य पदार्थ छीना जा रहा है। इस छोटे से लेख में आपके हजारों गुणों का वर्णन करना तो सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। आपके महान् उपकारों को भूलना कृतघ्नता तथा परम पामरपन होगा। हम वास्तव में भाग्यशाली हैं कि हमने ऐसे महात्यागी महात्मा के दर्शन किए और लगातार चौमासा भर आपके वचनामृत का पान किया। इन टूटे फूटे शब्दों में अपने हार्दिक भावों को प्रकट करती हुई हम तुच्छ महिलाएँ आप से यही प्रार्थना करती हैं कि इसी तरह भविष्य में भी यथा समय आप हम जालन्धर निवासियों का अपने ज्ञानामृत का पान करा करा कर अज्ञानान्धकार तथा मोहनिद्रा से सचेत करते रहेंगे।

हम हैं आपकी सेविकाएँ
स्त्री सत्संग सदस्याएँ
"श्री बाँके विहारी मन्दिर"
चरनजीत पुरा जालन्धर शहर।

अखिल भारतीय श्री वर्द्धमान स्थानक वासी, जैन श्रमण संघीय, प्रातः स्मरणीय, महा प्रभाविक, अहिंसा, सत्य और शांति की साक्षात् मूर्ति, बाल-ब्रह्मचारी, परमत्यागी महापंडित, व्याख्यान वाचस्पति, सर्वगुणालंकृत, श्री श्री १००८ जैन भूषण श्री स्वामी प्रेमचन्दजी महाराज के पवित्र चरण कमलों में सादर समर्पित।

अभिनन्दन-पत्र

सर्व श्रेष्ठ गुरुवर ! हम समस्त जालन्धर महिला संघ की बहनें आज आपका कोटिशः कोटिशः धन्यवाद करती हैं जो कि दयालु हृदय आपने हजारों मीलों की यात्रा पैदल तय करके मार्ग के ग्रीष्म ताप को सहन करके इस जालन्धर नगर को धन्य किया। जालन्धर की जनता के व्याकुल हृदयों को, अपने अमृत-मय वचनों द्वारा पवित्र जिनवाणी का पान करा कर अनेक सद्‌युक्तिपूर्ण दृष्टान्तों द्वारा शान्त किया।

आदरणीय गुरुवर ! जैन साधु समाज में आपका जीवन उस पुष्प के समान है जिसकी सुगन्धि से तमाम वाटिका महक रही है। आपने अपनी आत्मा का तो कल्याण किया ही, परन्तु इस जगत् के दुःखी जीवों के मनों को शांत करते हुए और भूले भटके मानव को मुक्ति पाने का सहज और सरल मार्ग दिखला रहे हैं। आपके सदुपदेशों से यह निर्धारित हो गया है कि विश्व में से अभी धर्म लोप नहीं हुआ, प्रत्युत आप जैसे साधु फिर से धर्ममय भावना और श्रद्धा की पुनः जागृति कर सकते हैं और कर रहे हैं।

महा प्रभावशाली मुनिराज ! आपने भगवान् महावीर के सन्देश को भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक पहुँचाने में कोई कसर नहीं रखी। बम्बई, मध्य भारत, सौराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़, यू. पी. आदि महान् क्षेत्रों में पैदल विचरण करके मार्ग की धूप, सर्दी के कष्टों को सहन करते हुए वहाँ की जनता को अपने आचार-विचार तथा भाषणों से सत्पथ दिखाया। सत्य और अहिंसा का जो खलासा आपने जैन-अजैन जनता के सामने रखा उसके लिए हम सभी

अहिंसा बुजदिली और भीरुता का लक्षण है, आपने उनकी गलतफहमी और महाअज्ञान को दूर करके उन्हें विश्वास दिलाया कि अहिंसा में वह शक्ति है जो संसार की बड़ी से बड़ी शक्ति को भी पराजित कर सकती है। आपके अमृतमय भाषणों में इतना जादू है कि कोई आदमी घंटों बैठे रहने पर भी नहीं उकताता। आप केवल अहिंसा प्रचारक ही नहीं है अपितु उसके साथ-साथ सामाजिक, राष्ट्रीय सुधार में भी बहुत बढ़-चढ़ कर हैं।

परोपकारी महात्मन्! विशेष कर हम स्त्री जाति के लिए आपने जो उपकार किया हम उसको आजीवन भूल नहीं सकतीं। आपने अपने मनोहर तथा प्रभावशाली उपदेशों द्वारा स्त्री समाज से अज्ञानता, मिथ्यात्व और वहम का अन्धकार दूर किया और उनके हृदय की संकीर्णता को विशालता में परिवर्तित कर दिया। स्त्री जाति को आगे बढ़ने की प्रेरणा देकर उनके भीतर साहस तथा जीवन पैदा किया, स्त्री समाज को धर्म का बोध कराया, उनके भीतर सादगी तथा शुद्ध चरित्र के अमूल्य गुण उत्पन्न किए, उनके दिलों से मिथ्यात्व तथा बुरी प्रथाओं को दूर करके और समाज को धार्मिक तथा सामाजिक रीति से उन्नत करने का घोर यत्न किया। क्या ही सुन्दर ढंग से पतिव्रता धर्म की व्याख्या की कि जिसके आगे बड़े-बड़े सम्राटों के भी मान भंग हो गए। आपने हमें यह बोध दिया कि यदि हम अपने धर्म, अपने देश, और अपनी समाज का कल्याण चाहती हैं और यदि हम वही गौरव चाहती हैं जो कि हमें प्राचीन काल में प्राप्त था तो हमें प्राचीन भारतीय सभ्यता, सादगी और शीलाचार को अपनाना ही होगा।

अहिंसा प्रचारक! आपका ज्ञान उस विशाल समुद्र की तरह है जिसका पानी हवाओं में उड़ कर आकाश की प्यास बुझाता है और धरती पर बरस कर तपती, पथरीली और खुश्क जमीन को तर करता है। जैन-अजैन जनता को यह बताया कि जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव संवर आदि नौ तत्त्वों का सारांश क्या है ये सूत्र की गाथाएँ अभी तक हमारी समझ में नहीं आ रही थीं लेकिन आपने क्या ही सरल ढंग से हमें उनका प्रकाश दिया। श्रावक के बारह व्रत बहुत बार सुने भी, कण्ठस्थ भी किए लेकिन भगवन्! आपने एक एक व्रतको

कैसे सुन्दर ढंग से, कितने विस्तार से समझाया जिससे प्रत्येक गृहस्थ को यह मालूम हो जाए कि वह गृहस्थ में रहता हुआ भी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। पाँच महीने तक खून पसीना एक करके आपने लगातार अमृत वर्षा की, जिसने भी इस वचनामृत का पान किया वही अपने आपको भाग्यशाली समझने लगा। सैंकड़ों माँसाहारियों ने सदा के लिए माँस छोड़ने का नियम किया, हजारों को जूआ, मदपान आदि व्यसनों के चंगुल से छुड़ा कर उनके जीवन को सुधार दिया।

गुरुदेव ! हम आपकी विद्वत्ता का कहाँ तक वर्णन करें। आपके गुण अथाह सिन्धु की तरह हैं जिसका वारावार पाना हमारी तुच्छ बुद्धि के बाहर है।

अतः हम सब बहनों की आप श्री जी के चरण कमलों में यही प्रार्थना है कि यदि चातुर्मास काल में हम से कोई असातना या भूल हो गई हो तो आप उसकी ओर ध्यान न देखते हुए अपने विशाल हृदय से हमें क्षमा करेंगे और हम पर सदैव कृपा दृष्टि रखेंगे। जो भक्ति के पौदे आपने लगाए हैं उन्हें समय-समय पर सींचते रहेंगे।

आपकी चरणोपासिका
जैन महिला मंडल जालंधर।

अहिंसा परमो धर्मः

श्री श्री १००८ बाल ब्रह्मचारी त्याग मूर्ति ज्योतिवर जैन भूषण स्वामी प्रेमचन्द जी महाराज के चरण कमलों में

श्रद्धाञ्जलि

जलते सूर्य की प्रचण्ड गर्मी में मरुस्थल और भी तमतमा उठा। दूर जलती रेत के ऊंचे टीले पर प्यास से व्याकुल एक चातक आकाश की ओर टिकटिकी लगाए बैठा रह कर आकाश की ओर देखता मगर गर्म वायु के झोंकों के

सिवा कुछ भी तो न पाता। आशा निराशा में परिवर्तित हो रही थी, प्यास बढ़ रही थी, शक्ति क्षीण हो रही थी मन में घोर वेदना लिये उसकी आत्मा क्रंदन कर उठी स्वाति की बूंद के लिये क्योंकि उसे इसके सिवा और चाहिये भी क्या था, दिल में आशा थी, आस्तिकता की उमंग थी आंखों में आंसू भर कर परम परमात्मा से प्रार्थना कर उठा——भगवान् का हृदय द्रवित हुआ प्रार्थना स्वीकार हुई, भगवान् सदा शिव मेघ माली के रूप में नगे पांव घुमड़-घुमड़ कर बढ़ आये, रिम झिम रिम झिम ज्ञान अमृत की झड़ी लग गई। जलती हुई रेत गुलशन में बदल गई, जंगल मे मंगल हो गया, सूखी झाड़ियां सरसब्ज हो गई, सरसब्ज झाड़ियों के नये-नये रंग विरंगे मधुर सुगन्धित फूलों को जन्म दिया और फूल मेघ माली की छाया में खिल उठे, मुस्करा उठे, रेगिस्तान के कन-कन ने सहस्र-सहस्र मुखों से ज्ञान अमृत का जी भर कर पान किया, युग युगान्तर से लगी दिल की प्यास को बुझाया। उधर मेघ माली भी दिल खोल कर अमृत बरसाते रहे। तापस बुझ गई, वायु मण्डल शान्त हो गया, नित्य नये अमृत के पुंज से कल-कल शब्द करती हुई ज्ञान गंगा बह उठी जिस में मरुभूमि के निकृष्ट पाप धुल चले। पतित आत्मा में ज्ञान का संचार हुआ, चातक आत्म विभोर हो उठा—लौकिक व्यावहारिक तथा आध्यात्मिक लहरों को आंचल में लिये सत्पथ की ओर गंगा बढ़ चली उस प्रेम की चरम सीमा की ओर गंगा बढ़ चली—गंगा बढ़ चली उस प्रेम को चरम सीमा की ओर महां जन्म जन्मान्तर की प्यासी आत्मा अपने ही कृष्ण स्वरूप का आलिंगन करती हुई अनंत सत्य की गोद में जा गिरती है जहां प्रेम के सिवा कुछ नहीं कुछ भी नहीं वह बढ़ती चली। उस स्वयं प्रदीप्त परम धाम की ओर जहां मायावाद छूता भी नहीं और यद्गत्वा न निवर्तन्ते स च परमं धाम मम उस धाम में प्रवेश कर चली। पांच मास बीते और एक दिन मेघ माली अपने ही हाथों लगाए हुए गुलशन को छोड़ चले, किसी उजड़े बगीचे को सरसब्ज करने के लिए किसी भी बरबाद नगरी को आबाद करनेके लिये या किसी टिमटमाते दीप में आत्म ज्योति का प्रसार करने के लिए चातक ने गुलशन पर नजर दौड़ाई, फिर मेघ माली की तरफ देखा दिल में प्यार का तूफान उमड़ आया। आंखों से

आंसुओं की धारा बह चली और वह प्यार में पुकार उठा ।

१. माया के प्रपंच में रहता हुआ माया से दूर ।
ज्ञान के सागर का मोती भक्ति की मस्ती में चूर ॥
लोग जिसको ढूंढ़ते हैं तूने उसको पा लिया ।
तेरी आंखों में झलकता है उसी हस्ती का नूर ॥

२. दोनों हाथों से लुटाकर ज्ञान गंगा जल दिया ।
रात दिन मेहनत से पैदा रेत से गुलशन किया ॥
देखेंगे जब तेरा गुलशन फूलता फलता हुआ ।
तेरा किन शब्दों में माली हम करेंगे शुकरिया ?

३. आप के दिल में समाया देश का सम्मान है ।
भावना में आपकी हर जीव का कल्याण है ॥
ज्ञान तेरा धार है गंगा के निर्मल नीर की ।
या कृष्ण भगवन् की मुरली की सुन्दर तान है ?

४. प्रेम के सन्देश को घर-घर पहुंचाया आप ने ।
गाफिलों को नींद से आकर जगाया आप ने ॥
भूले भटके बेखुदी में पीछे तेरे हो लिये ।
जैन भूषण ऐसा कुछ जादू जगाया आप ने ॥

५. दिल में तेरे है तमन्ना हर बशर आजाद हो ।
जिन्दगी की धड़कनों में प्रेम की आवाज़ हो ॥
दिल में तेरे प्यार है जब जीव मात्र के लिये ।
फिर बसा हर दिल में प्रभु वर क्यों न तेरी याद हो ?

६. आपके चरणों से बन उपवन पवित्र हो गया ।
जल थल पवित्र हो गये जीवन पवित्र हो गया ॥
धरती से आकाश तक वायु पवित्र हो गया ।
और जालन्धर नगर का कन-कन पवित्र हो गया ॥

७. ज्ञान गंगा में नहा कर बुझ रही थी दिल की प्यास।
कैसे खुश आनन्द में बीते थे पिछले पांच मास॥
चरण धूलि आपकी पाकर के खुश किस्मत थे हम।
कल तलक थी खुश दिली पर आज है कुछ दिल उदास॥

८. समझता हूँ यह जुदाई रात दिन तड़पाएगी।
हर सुबह तेरी सुहानी याद ले कर आएगी॥
पर तेरे सच्चे विचारों की चमकती रोशनी।
काली रातों में सही रस्ता हमें दिखलाएगी॥

९. आपके उपदेश सुन कर दिल के ताले खुल गये।
ज्ञान गंगा मे हमारे पाप सारे धुल गये॥
आज इन आंखों से बहती जा रही है इक झड़ी।
प्यार की बदली उठी दो मेघ काले घुल गये॥

डा० रमेश चन्द्र महेन्द्रु,

प्र० दी नैशनल मैडिकल हाल जालन्धर

द्वारा संयोजित तथा ला० फेरु मल महेन्द्रु द्वारा समर्पित

१०. यह तेरी ऊंची उड़ाने यह तेरे ऊँचे विचार।
यह तेरी रंगी मजाजी यह तेरा हर इक से प्यार॥
धरती और आकाश दोनों गीत गाते हैं तेरे।
योग साधन है तेरा या इसको समझें चमत्कार ?

११. प्रेम तेरी प्रेम वाणी हर किसी को भाएगी।
जिस पे आखिर चल के इक दिन चैन दुनिया पाएगी॥
कौम को बेदार करने की तेरी कुर्बानियां।
देख लेंगे दुनिया वाले रंग इक दिन लाएंगी॥

१२. जैन भूषण ही नहीं इस विश्व के भूषण भी हो।
बन के पावन शुद्ध गंगा विश्व में बहते रहो॥
माया वादी दौड़ में पिछड़े हुए इस विश्व को।
अमर हाथों से अमर वरदान तुम देते रहो॥

१३. सबके मन मन्दिर में है झांकी तेरी तस्वीर की ।
देख लेंगे जब जरा गर्दन झुका लेंगे कभी ॥
जाइये पर हम पे अपनी याद छोड़े जाइये ।
हम उसी को अपने सीने से लगा लेंगे कभी ॥

१४. आपके एहसान हम पर हम भुला न पाएंगे ।
गीत गा लेने से यह कर्जा चुका न पाएंगे ॥
बिछड़ने पै आप से दिल ही तो है भर आएगा ।
लाख रोकेंगे मगर आंसू न रुकने पाएंगे ॥

१५. बिछड़ने का दर्द देते हो खुशी से दीजिए ।
दर्द देना है दवा इस दर्द की भी दीजिये ॥
जल्दी आने का प्रभु वर वचन देते जाइये ।
आप दयालु हैं यही एहसान हम पे कीजिये ॥

१६. तू जो आया था चमन में लौट आई थी बहार ।
चाह है ऐसी बहारें हम पे आयें बार-बार ॥
बेकरारी दिल में है और सीने में यह जुस्तजू ।
देना दर्शन जल्दी स्वामी हम करेंगे इन्तजार ॥

१७. इन्तजारी की तड़प तुझ तक पहुंच ही जाएगी ।
प्रेम के बन्धन में तुम को बाँध कर जो लाएगी ॥
हाथ लाखों बढ़ चलेंगे तेरे स्वागत के लिये ।
और लाखों आंखें तेरी राह में बिछ जाएंगी ॥

१८. फर्ज के आगे लो सब आदमी मचल कर रह गये ।
अब खुशी के आंसुओं ने कह दिया है अल्विदा ॥
अल्विदा तुलसी मुनि बनवारी स्वामी अल्विदा ।
अल्विदा ए जैन भूषण प्रेम स्वामी अल्विदा ॥

हम हैं आपकी चरण धूलि में पड़े हुए

विश्व शांति के अनन्य उपासक जालन्धर निवासी

ॐ

श्री श्री १००८ बाल ब्रह्मचारी महा तेजस्वी धर्म
धुरेन्द्र, तत्ववेत्ता प्रसिद्ध वक्ता जैन
भूषण पूजनीय गुरु श्री स्वामी
श्री प्रेमचन्द जी महाराज
के पवित्र चरणों
मे "श्रद्धांजलि"

परम पूज्य गुरुदेव !

आप श्री के पवित्र चरणों में अपनी श्रद्धा के पुष्प किस पद्धति से अर्पित करूँ ? यह मेरे लिए एक गम्भीर समस्या है ! आपके सम्बन्ध में कुछ कहना निर्बल भुजाओं से समुद्र को पार करना है ! मौन हो बैठ जाने को भी जो नहीं चाहता फिर उत्साहीन न हो कर कुछ कहने का साहस करने लगी हूं !

यह बात स्वाभाविक सिद्ध है कि मानव मात्र में एकाध गुण-अवगुण हुआ करते है, परन्तु आप श्री में कोई भी अवगुण नही है । आप सर्वगुण सम्पन्न हैं! आपकी वाणी में सुधा रस छलकता है! एक बार जिसने आप श्री के प्रवचन सुने वह सदा के लिए आप श्री के चरण कमलों का भ्रमर बन गया! आपकी सत्य-वाणी ने किस-किस जीवन का उत्थान, निर्माण, कल्याण किया मेरे जैसी तुच्छ हैसियत के लिए विस्तार पूर्वक वर्णन करना कठिन है। असंख्य नर-नारियों ने आपकी वाणी के नेतृत्व में अपना भविष्य अत्युज्जवल बनाया! आपकी वाणी में जादू है । क्या बालक, क्या जवान, क्या वृद्ध, सभी पर इसने अपना प्रभाव डाला है ! आपके प्रवचनों में यह भी विशेषता है जहां आप आत्म सुधार के लिए जोर देते हैं, वहां समाज सुधार, राष्ट्र सुधार पर भी आप ने पूरा बल दिया है। आपके भाषणों में सभी दृष्टिकोण उचित स्थान पाते हैं ! जैन अजैन सभी का कल्याण करना आप का ध्येय है !

आपके साधु जीवन के प्रभाव से वज्र हृदयी आत्मायें भी नतमस्तक हो जाती हैं । आपकी वाणी से जो सत्यता और मधुरता की झलक पड़ती है, वह

पत्थर दिलों को भी पिघला देती है। परम पूज्य महाराज ! पहली बार ही आपके दर्शन मात्र करने से इस तुच्छ शिष्या का जीवन बदल गया ! सोती हुई आत्मा में चेतना जाग उठी मन में विशुद्ध भाव उभरने लगे, और यह आत्मा पुकार उठी कि हमारे शहर में भगवान आये हैं, कीड़ी के घर नारायण का आना हुआ है। आत्मा में एक तड़प सी पैदा हो गयी ! हमारी श्रद्धा बढ़ने लगी, बढ़ती ही जाएगी, सीप बन कर ही आप श्री के अमृत प्रवचनों का पान कर रहे हैं और करेंगे !

ईश्वर आपको तन्दुरुस्ती प्रदान करे, आप की दीर्घ आयु हो, आपकी छत्र छाया सदा ही हतसिरे मार पर बनी रहे! आज आप हम सबको छोड़ कर जा रहे हैं ! हम आपके उपकार कभी नहीं भूल सकते !

....

जय-जय "गेंदा" नन्द तुम्हें हम वन्दन करते हैं,
वन्दन करते हैं नाथ हम वन्दन करते हैं !
धन्य-धन्य साहिबा माई जिस जायो 'प्रेमचन्द राही,
पापी से करते प्रेम पाप से घृणा ये करते हैं।
जय जय गेंदा नन्द

अहिंसा का डंका बजा कर, है सत्य का दीप जलाया,
मांसाहारी लोगों को निरामिष कहते हैं जय जय।

है दुइ को दूर हटाया एकता का पाठ पढ़ाया,
अमृत उपदेश सुनाया मुखों जिन मोती झरते हैं,
जय-जय "गेंदा" नन्द तुम्हें हम वंदन करते हैं।
प्रभु हमारी अर्ज सुन लीजो इस सभा पे कृपा कीजो
वरदान ध्यान का दीजो, ध्यान हम तुमरा धरते हैं !
जय-जय..............................

....

आपकी तुच्छ शि
रमा

सेवा करने का मौका भी सोसाइटी को मिला था। यह भी सच है कि पिछले कई वर्षों से सोसायटी हिजा के काम में ढील आ गई थी लेकिन अब आपके बरवक्त तशरीफ लाने पर मेम्बरान सोसाइटी फिर से जाग उठे हैं और उसी जोर-शोर से काम करने का निश्चय कर लिया है। जिस जोशो खरोश से सोसाइटी को जारी किया गया था। हम आपको यकीन दिलाते हैं कि आइन्दा सोसाइटी के काम में सुस्ती नहीं आने दी जाएगी हमारी आप से दस्तबस्ता मुल्तमस है कि आप अपने हाथ से लगाए हुए बगीचे को बक्तन फबक्तन तशरीफ लाकर सींचते रहें।

हम हैं आपके सेवक

मैम्बरान श्री प्रेम वैजीटैरियन सोसाइटी जालन्धर शहर

इस दिन का कार्यक्रम काफी लम्बा-चौड़ा हो गया था। अतः कुछ अभिनंदन पत्र रह गये जो पढ़ कर नहीं सुनाये जा सके थे। दूसरे दिन जब महाराज श्री पंडाल में पहुंचे तो पहले दिन का शेष कार्य-क्रम प्रस्तुत किया गया। इस दिन जनता की उपस्थिति लगभग पंद्रह-सोलह हजार थी। महाराजश्री वास्तव में ऐसे फकीर बादशाह थे, जो जनता के दिलों पर राज्य करते थे। उन्होंने कुछ प्रवचन किया और बाद में निम्न भजन गाया :

ये रुहें उड़ जानी, हुण ये रुहे उड़ जानी ।। टेक ।।

वीर प्रभु दा सुमरन करलो, दया धर्म दी खेप जो भर लो।
यह जग समझो फानी ।। रूहें उड़ जानी ।।

तन धन जीवन अथिर कहावे, सदा नहीं ये रहने पावे।
जैसे ओस दा पानी ।। रूहें उड़ जानी ।।

मनुष्य जन्म मुश्किल से पावे, बार-बार नहीं मौका आवे।
यह समझ ले तू अज्ञानी ।। रूहें उड़ जानी ।।

दान पुण्य और सुकृत करदे, पाप कर्म तो निस दिन डरदे।
वे जग उत्तम प्राणी ।। रूहें उड़ जानी ।।

से भरा हुआ होता है। जैन साधु का जीवन ग्रंथि रहित है। किसी प्रकार का गठबंधन किसी से नहीं। खुली पुस्तक की तरह जैन साधु का जीवन है। चाहें जिधर से पढ़िये। जैन साधु अपने जीवन की चादर को बड़े ही यत्नपूर्वक ओढ़ते हैं। कबीर के शब्दों में :—

"दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया।"

महाराजश्री की विदा-वेला में जनता की आँखों से आंसू उमड़ पड़े, लेकिन संतों के चार मास तक एक स्थान पर रुकने की अवधि पूर्ण हो चुकी थी। गाँव-गाँव नगर-नगर पैदल घूम कर जनता के दिलों में धर्म की आस्था पैदा करने के दृढ़ संकल्पी ये संत जालन्धर की जनता को जगा कर औरों को जगाने की बलवती इच्छा ले कर वहीं से, उसी पंडाल से ही विहार कर गये।

हजारों की संख्या में लोग जयनिनाद करते हुए साथ चल पड़े। कम्पनी बाग के पास रुक कर महाराजश्री ने मंगल पाठ सुनाया। बहुत से लोग वापस चले गये। लगभग दो हजार व्यक्ति जालंधर छावनी तक साथ-साथ पहुंचे। छावनी पहुंच कर महाराजश्री ने वहां के भाई वकील ताराचंद के मकान के सामने वाले खुले मैदान में प्रवचन दिया। फिर महाराजश्री ने सबको मंगल पाठ सुनाया। वहाँ के भाइयों ने महाराज को छावनी तक छोड़ने आये हुए भाइयों के लिए जलपान का प्रबन्ध किया। जनता दर्शन कर के वापस चली गई। दूसरे दिन से उसी स्थान पर महाराजश्री का प्रवचन शुरू हो गया। यहां भी जालन्धर शहर की जनता व्याख्यान का लाभ लेती रही।

जालन्धर छावनी में अग्रवाल भाइयों की एक कांफ्रेंस हुई थी, जिस में बाहर के भी काफी भाई आये थे। कुछ भाइयों ने आकर महाराजश्री से प्रार्थना की कि आप कांफ्रेंस में पधार कर हमारे लिए मार्ग प्रशस्त करें। महाराज श्री ने स्वीकृति दे दी।

जालंधर छावनी में कुछ दिन ठहरने का विचार था क्योंकि भाई हरज्ञान जी की दीक्षा तिथि निकट थी।

महाराजश्री की कांफ्रेंस में पधारने की स्वीकृति पाकर कांफ्रेंस के प्रति-

अवसर पर यहां पूज्य आत्माराम जी के पोते चेले श्रीख़जानचंद जी के शिष्य और उनके गुरु भाई श्री फूलचंद जी भी विराजमान थे।

दीक्षा के बाद महाराज श्रीप्रेमचंद जी यहां दो-तीन दिन रहे। फिर आप ने फगवाड़े की तरफ विहार कर दिया। फगवाड़े पहुंच कर चार-पांच दिन तक व्याख्यान दिया। लुधियाना एक रात बीच में ठहर कर आप फलौर पहुंचे। यहां की धर्मशाला में व्याख्यान दिया और अगले दिन यहां से विहार कर के लुधियाना पहुँचे। यहाँ की बिरादरी के सैकड़ों आदमी स्वागत के लिए पहुंचे हुए थे। महाराजश्री लुधियाना स्थानक में पधारे। यहां पूज्य श्रीआत्माराम जी महाराज विराजमान थे। यहीं श्रीदयाचंद जी महाराज को बड़ी दीक्षा का पाठ पढ़ाया गया। दस-पंद्रह दिन लुधियाना में ठहर कर आप ने खूब प्रभावशाली प्रवचन दिये। यहां आपके कई सार्वजनिक व्याख्यान हुए। उसके बाद आपने गुज्जरवाल के लिए विहार कर दिया। एक रात माडलटाउन में लगाकर आप गुज्जरवाल पधार गए। गुज्जरवाल के स्थानक में दो तीन व्याख्यान हुए। एक व्याख्यान धर्मशाला में हुआ। यहां से विहार कर के आप अहमदगढ़ मंडी पधारे। यहाँ से विहार करके मालेरकोटला पधारे। यहाँ आप २०-२६ दिन ठहरे। चार-पांच व्याख्यान बाहर हुए, जिसमें हजारों लोगों ने लाभ उठाया। बाकी व्याख्यान स्थानक में हुए।

इस के बाद आप ने रायकोट के लिए विहार किया। रास्ते में एक रात मोहली क्षेत्र में लगाकर आप रायकोट पधारे। रायकोट में आप आठ-दस दिन रहे। यहाँ आपके कई व्याख्यान सार्वजनिक हुए। इसके बाद आपने जगरावां के लिए विहार किया। यहाँ कुछ दिन रुक कर आपने खूब धर्मलाभ दिया। कई व्याख्यान सार्वजनिक भी हुए। इस के बाद महाराज श्री जगरावां से विहार करके मोगा में आठ दिन रहे। मोगा से विहार कर चूवचक पधारे। वहां एक व्याख्यान हुआ। एक रात वहाँ बिता कर आप जीरे पहुंचे। यहाँ एक बहुत बड़े पंडाल में महाराजश्री का व्याख्यान होता रहा। आठ-नौ दिन बाद आप ने पट्टी के लिए विहार किया। एक रात व्यास में लगाकर आप पट्टी पधारे। यहाँ भी आठ-दस व्याख्यान स्थानक में और २

उपस्थिति की संख्या बढ़ते-बढ़ते चौदह पन्द्रह हज़ार तक पहुंच गई। यहां वैजीटेरियन सोसायटी की मीटिंग भी बुलाई गई। यहीं पर अमृतसर की बिरादरी ने आकर प्रार्थना की कि पूज्य सोहनलालजी महाराज का स्वर्गवास दिवस नज़दीक है। आप इस अवसर पर कुछ दिन पहले ही पधारने की कृपा करें। महाराजश्री ने स्वीकृति दे दी।

यहाँ जालन्धर में महाराजश्री ने २३-२४ के लगभग व्याख्यान दिये। रविवार को विदाई समारोह मनाया गया। उस दिन सोलह सतरह हज़ार के लगभग जनता की उपस्थिति थी। महाराजश्री यहां से विहार करके आदर्श नगर में रायसाहब कपूरचंद की कोठी में पधारे। अगले दिन बड़े ही जोर से वर्षा हुई, इसलिए महाराजश्री को अगले दिन भी यहीं रुकना पड़ा। इससे अगले दिन विहार करके महाराजश्री कपूरथला में पधारे। दो तीन दिन रुक कर दो रात रास्ते में ठहरते हुए व्यास पधारे। फिर वहाँ से रियामंडी। यहां से विहार करके जंडियाला गुरु पहुंचे। दो तीन दिन वहां रुक कर आपने अमृतसर के लिए विहार किया। अमृतसर की जनता ने हज़ारों की तादाद में इकट्ठे होकर स्वागत किया। यह चातुर्मास विक्रम संवत् २०१६ वीर संवत् २४८५ और ईस्वी सन् १९५९ का था। यहां के केसरी बाग में ही महाराजश्री का प्रवचन सुनने के लिए पंडाल बनाया गया था। अमृतसर की जनता उमड़ घुमड़ कर व्याख्यान सुनने के लिए आती थी। जनता की यह उपस्थिति दिनों दिन बढ़ती गई।

दिन झटपट बीतते गये। वक्ता और श्रोता दोनों ही अपने-अपने विचारों में लीन थे। पर्यूषण पर्व भी आ गये। इन दिनों साधु-संत अपने चर्चित विषय को छोड़ कर 'अंतगढ़' और श्री कल्पसूत्र पर व्याख्यान ही नहीं देते बल्कि यह शास्त्र गाथा सहित सुनाते हैं। यह परम्परा साधु समाज में शुरू से ही चली आ रही है। श्री अंतगढ़ सूत्र में ९९ महापुरुषों की जीवनी पर प्रकाश डाला गया है। इन कहानियों को सुनकर भगवान नेमिनाथ, पार्श्वनाथजी के जमाने की याद तो आती ही है पर भगवान महावीर का जमाना तो ऐसा निकट लगता है कि शास्त्र सुनते हुए हम भी उसी युग में विचरण करने के इच्छुक हो उठते हैं।

महाराजश्री प्रेमचंदजी के शास्त्र सुनाने का ढंग अनोखा और मनोहारी था शास्त्र की गाथाएँ जब आप के कण्ठ से मधुर स्वर लहरियों के रूप में निकलती थीं तो जनता मंत्रमुग्ध हो जाती थी। इन दिनों महाराजश्री अंतगड़ सूत्र की वाचना कर रहे थे। जनता मंत्र मुग्ध सी सुन रही थी। इसी शास्त्र में भगवान् श्रीकृष्णजी की द्वारका के जलने का प्रसंग आया। द्वारका के जलने के कारण दो बने थे, द्वैपायन ऋषि का क्रोध और यादव वंशियों में बढ़ता शराब का दौर।

जैन शास्त्रों के अनुसार बाइसवें तीर्थंकर श्रीनेमिनाथजी ने श्रीकृष्णजी के पूछने पर यह घोषणा की थी कि द्वैपायन ऋषि बड़े उग्र तपस्वी हैं। यादव कुमार शराब के नशे में झूमकर उससे छेड़खानी करेंगे। क्रोध में आकर ऋषि यह नियाना (दृढ़संकल्प) करेंगे कि यदि मेरी तपस्या में बल है तो मैं मरकर द्वारका का नाश करने वाला बनूं। नियाना करके वह ऋषि मरकर अग्नि कुमार जाति के देवों में पैदा होगा और द्वारका को जलाने के लिए बार-बार आयेगा। जरद कुमार के हाथों तुम्हारी मृत्यु होगी। जब उन्होंने नेमिनाथ से पूछा कि मैं मरकर कहाँ जाऊँगा तो नेमिनाथजी बोले, "तीसरी पृथ्वी में" "श्रीकृष्णजी ने द्वारका में जाकर यह घोषणा की कि जो व्यक्ति जैन साधु बनना चाहता हो, वह खुशी से बन जाये। उसके परिवार का पूरा प्रबंध मैं करूँगा। उन्होंने कहा कि मेरे पुत्र, भाई-बन्धु तथा अन्य पारिवारिक जन जो भी दीक्षा धारण करना चाहें, कर सकते हैं। जिनके माता-पिता वृद्ध या गरीब हैं उनकी सेवा मैं करूँगा। जो गरीब हैं, उनको राजकोष से धन दिया जायेगा। अर्थात् जो लोग दीक्षा धारण करना चाहते हैं, निर्भय होकर दीक्षा लें। यह घोषणा सुनकर हजारों की संख्या में लोगों ने दीक्षा धारण की। श्रीकृष्णजी ने नेमिनाथजी से द्वारका को बचाने का उपाय पूछा था तो उन्होंने कहा था कि जबतक द्वारका में आँयबिल तपस्या होती रहेगी तबतक द्वारका को जलाने के लिये देवता का वश नहीं चलेगा। नेमिनाथजी का यह वचन सुनकर श्रीकृष्णजी ने द्वारका में आंयबिल तपस्या करने की घोषणा करवा दी। यह क्रम काफी देर तक चला। इस बीच में देवता द्वारका को जलाने के लिये

घूमता रहा किन्तु उसका वश नहीं चला। एक वार ऐसा हुआ कि शहर की जनता में आलस्य आ गया और किसी ने भी आयंविल नहीं किया।

द्वारका के विनाश का समय आ चुका था, अतः किसी को भी आंयविल करना याद न रहा। देवता आया और द्वारका में आग लगा दी। द्वारका जलनी शुरू हो गई। नगरी में हाहाकार मच गया। श्रीकृष्ण और वलभद्र आपस में मिले और विचार किया कि हमें अव क्या करना चाहिये। हमारा यह नित्य नियम है कि माता-पिता को नमस्कार किये विना हम लोग कोई कार्य नहीं करते तथा अन्न, जल भी ग्रहण नहीं करते। यदि यहाँ सभी कुछ जल जायेगा तो माता-पिता कहाँ रहेंगे? चलो माता-पिता को रथ में विठाकर निकाल लें। यह सलाह करके दोनों भाई माता-पिता के पास गये और उन्हें रथ में विठाया। वैल के स्थान पर जोतने को कुछ नहीं मिला। अतः दोनों भाई रथ लेकर चल पड़े। नगर द्वार के पास रथ को ले आये। दोनों भाई दरवाजे के वाहर निकल चुके थे परन्तु वाकी रथ अभी पीछे था। अचानक नगरी का दरवाजा टूटा और माता-पिता दवकर मर गये। दोनों भाई दुःखी होते हुए कोशाम्वी वन को चल दिये। उन्होंने आपस में विचार किया कि मुसीवत के समय भाई वन्धु रिश्तेदार कोई भी काम नहीं आता लेकिन मथुरा में हमारे मित्र हैं। वे हमारी सहायता करेंगे। ऐसा सोचकर जिस समय वे कोशाम्वी वन में गये वहाँ श्रीकृष्ण को वहुत प्यास लगी। उनको व्याकुल जानकर वलभद्र पानी लेने गये और श्रीकृष्ण पाँव पर पाँव पाँव रखकर लेट गये। उनके पाँव पर पद्म का चिन्ह था, जो पुण्यवानी की निशानी था। उधर जरद कुमार पहले से ही वनवासी होकर जंगल में घूम रहा था। उसने हिरण समझकर तीर मारा जो श्रीकृष्ण को आकर लगा। जव जरद कुमार पास आया तो श्रीकृष्ण को देखकर उसने वड़ा विलाप किया लेकिन श्रीकृष्ण जी को उसपर गुस्सा न आया। उन्होंने कहा "भवितव्यता को कोई टाल नहीं सकता। तुम इतने दिनों मेरे कारण घर त्यागकर भीलों की तरह घूम रहे हो। आज जव मेरी द्वारका जल चुकी है और मैं परेशान होकर इस जंगल में आया

पार्थिव शरीर को लिए घूमते रहे। अंत में जब उनका मोहनीय कर्म उपशांत हो गया तब देवता उन्हें समझाने में सफलता प्राप्त कर सका। जब बलभद्रजी ने समझ लिया कि मेरा भाई अब इस संसार में नहीं है तो उन्होंने उनका अंतिम संस्कार कर दिया।

यह प्रसंग महाराज श्री ने अपने व्याख्यान में सुनाया था। पर्युषण पर्व समाप्त होने के बाद सनातन सभा की तरफ से एक पत्र लाला हरजस राय को आया, जिस में उन्होंने ऐसा संदेह व्यक्त किया था कि महाराज श्री ने अपने व्याख्यान में ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जिस से श्रीकृष्ण जी के गौरव में न्यूनता आती है। लाला हरजसराय ने यह पत्र पढ़ कर महाराज श्री को सुनाया। महाराजश्री ने लाला जी से कहा तुम सनातन सभा वालों को सूचित कर दो कि हम श्री कृष्ण जी को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखते हैं। लाला जी ने महाराज श्री के यह विचार पत्र द्वारा सनातन सभा को पहुंचा दिये। महाराज श्री ने व्याख्यान में यह घोषणा कर दी कि जैन शास्त्र श्री कृष्ण जी को गोपियों के वस्त्र चुराने वाला नहीं मानता। प्रसंगवश कहना पड़ता है कि इन लोगों ने श्रीकृष्ण जी के विषय में जो कुछ लिखा है, उन ग्रंथों को पढ़ने वाला भी शर्मिंदा हो जाता है। ऐसे उल्लेख महापुरुषों के विषय में नहीं होने चाहिएँ। ऐसे लेख श्री कृष्ण जी के जीवन को कलंकित करने वाले हैं। सुख सागर ग्रंथ में राधा कृष्ण के प्रसंग में लिखा हुआ मिलता है ग्वाले की लड़की राधा जिस की आयु उस समय आठ साल की थी और श्री कृष्ण जी जिनकी आयु छः साल की थी राधा के अद्भुत रूप को देख कर कहते हैं, "तुम हमारे घर खेलने आया करो।" वह श्रीकृष्ण जी की बात मान कर उन के घर आने लगी। इस पर राधा के माता-पिता नाराज होने लगे। नंद वहां के मुखिया थे। ग्वालों पर उनका प्रभाव था। इस लिए राधा के माता-पिता की कोई पेश नहीं चली। कुछ दिनों के बाद यशोदा ने राधा को भांवरे डाल दीं। आगे चल कर श्री कृष्ण जी और राधा का आपस में क्या सम्बंध हुआ यह स्वयं सुखसागर पढ़ कर देख लें।

एक अन्य प्रसंग में देखिये। गोपियाँ श्री कृष्ण जी के ध्यान में खड़ी थीं।

के दो भाग हैं। एक कर्म भूमि दूसरा अकर्म भूमि। कर्म भूमि पंद्रह प्रकार की है।

कर्म भूमि उसे कहा गया है जहां पर रहने वाले लोग पुरुषार्थ कर के अपना जीवन यापन करते है। वहां राजनीति भी है और धर्म नीति भी है।

अकर्म भूमि उसे कहते हैं जहां पर राजनीति तथा धर्म नीति नहीं हैं। वहां रहने वाले मनुष्यों को जुगलिये कहा जाता है। जुगलिये उन्हें इस लिए कहा जाता है कि वे अपने माता पिता की युगल संतान होते हैं जो एक ही बार जन्म लेते हैं। एक बालक एक बालिका यही युगल जोड़ी आगे चल कर दाम्पत्य जीवन यापन करने लगते हैं। उनके जीवन निर्वाह के लिए दस प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं जिनके द्वारा उनकी हरेक इच्छा पूर्ण होती है। उन्हें सब कुदरत से ही मिलता है। पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। उन कल्पवृक्षों के नाम इस प्रकार है :—

१. मतङ्ग वृक्ष—इस से मधुर फल प्राप्त होते हैं।

२. भिगावृक्ष—इस से रत्न जड़ित सुवर्ण भाजन प्राप्त होते हैं।

३. तुड़ियंगावृक्ष—इस वृक्ष से ४६ जाति के मनोहर वजंत्र नाद सुनाई देते हैं।

४. दीव वृक्ष—इससे रत्न जड़ित दीपका के समान सुंदर प्रकाश मिलता है।

५. जोति वृक्ष—यह वृक्ष रात्रि में सूर्य के समान प्रकाश देते हैं।

६. चितंगा वृक्ष—इस वृक्ष से सुगंधित फूलों के आभूषण प्राप्त होते हैं।

७. चितरस वृक्ष—इस वृक्ष से १८ प्रकार के मनोज्ञ भोजन मिलते हैं।

८. मनोवेगा वृक्ष—इस वृक्ष से स्वर्ण, रत्न के आभूषण मिलते हैं।

९. गिहंगारा वृक्ष—मनोवांछित गृह की प्राप्ति होती है।

१०. अनिय गणाऊ वृक्ष—नाक की श्वांस से भी उड़जाये ऐसे महीन वस्त्र प्राप्त होते हैं।

सभी जीव नाश को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु जैन धर्म के अनुसार कुछ मनुष्य और पशु आदि रह जाते हैं। अर्थात् बीज रूप में सभी जीव रह जाते हैं। सम्पूर्ण नाश किसी का भी नहीं होता। यह परिवर्तन भी दस क्षेत्रों में ही होता है, बाकी पांच में नहीं।

जो पांच महाविदेह क्षेत्र हैं उन की १६० विजय हैं। एक-एक में ३२-३२ विजय हैं। इन में कम से कम २० तीर्थंकर होते हैं। ज्यादा से ज्यादा १६० तीर्थंकर होते हैं। बाकी दस क्षेत्रों में भी तीर्थंकर होवें तथा पांच भरत और इर्यावर्त्त में भी तीर्थंकर होवें तो १७० तीर्थंकर होते हैं। ये पांच क्षेत्रों की १६० विजय हैं। छः खंडों को जीत कर जो चक्रवर्ती राज्य करता है, उसे विजय करते हैं। जो महाविदेह के विजय हैं वे १६० हैं क्योंकि पांच महा विदेह जो हैं उन की ३२-३२ विजय हैं। चक्रवर्ती कम से कम एक समय वीस हो सकते हैं। बलदेव और वासुदेव भी वीस से कम नहीं होते। जिस समय में कम से कम वीस होवें उस समय बलदेव वासुदेव १४० हो सकते हैं, जिस समय बलदेव और वासुदेव २० हों उस समय चक्रवर्ती १४० हो सकते हैं। पांच भरत और पांच इर्यावर्त्त में भी हों तो १५० चक्रवर्ती हो सकते हैं। जहां वीस विजयों में बलदेव और वासुदेव होते हैं वहां चक्रवर्ती नहीं होते है। जहां वीस चक्रवर्ती होते हैं वहां वासुदेव बलदेव नहीं होते। क्यों कि चक्रवर्ती ने छः खंड पृथ्वी पर राज्य करना है। उस समय के समस्त राजे उस के अधीन होगे। वासुदेव और बलदेव की राज्य सीमा तीन खंड पृथ्वी है। वहां के समस्त राजा उन्हीं के अधीन होंगे। अतः चक्रवर्ती और वासुदेव-बलदेव का राज्य अपने-अपने में स्वतंत्र होता है। वासुदेव जो राज्य करेगा वह प्रति वासुदेव को मार करके करेगा। जब तक प्रति वासुदेव जिन्दा रहता है तब तक वासुदेव, बलदेव मांडलिक राजा कहलाते हैं। प्रति वासुदेव भी तीन खंड पृथ्वी का स्वामी होता है, पर उस के राज्य में स्थिरता नहीं आती। वासुदेव जब उसे मार कर राज्य ले लेता है, तब उस में स्थिरता आ जाती है। प्रति वासुदेव की आज्ञा का उल्लंघन होता रहता है, जैसे जरासिसंध प्रति वासुदेव

सभी जीव नाश को प्राप्त हो जाते हैं परन्तु जैन धर्म के अनुसार कुछ मनुष्य और पशु आदि रह जाते हैं। अर्थात् बीज रूप में सभी जीव रह जाते हैं। सम्पूर्ण नाश किसी का भी नहीं होता। यह परिवर्तन भी दस क्षेत्रों में ही होता है, बाकी पांच में नहीं।

जो पांच महाविदेह क्षेत्र हैं उन की १६० विजय हैं। एक-एक में ३२-३२ विजय हैं। इन में कम से कम २० तीर्थंकर होते हैं। ज्यादा से ज्यादा १६० तीर्थंकर होते हैं। बाकी दस क्षेत्रों में भी तीर्थंकर होवें तथा पांच भरत और इर्यावर्त्त में भी तीर्थंकर होवें तो १७० तीर्थंकर होते हैं। ये पांच क्षेत्रों की १६० विजय हैं। छः खंडों को जीत कर जो चक्रवर्ती राज्य करता है, उसे विजय करते हैं। जो महाविदेह के विजय हैं वे १६० हैं क्योंकि पांच महा विदेह जो हैं उन की ३२-३२ विजय हैं। चक्रवर्ती कम से कम एक समय बीस हो सकते हैं। बलदेव और वासुदेव भी बीस से कम नहीं होते। जिस समय में कम से कम बीस होवें उस समय बलदेव वासुदेव १४० हो सकते हैं, जिस समय बलदेव और वासुदेव २० हों उस समय चक्रवर्ती १४० हो सकते हैं। पांच भरत और पांच इर्यावर्त्त में भी हों तो १५० चक्रवर्ती हो सकते हैं। जहां बीस विजयों में बलदेव और वासुदेव होते हैं वहां चक्रवर्ती नहीं होते है। जहां बीस चक्रवर्ती होते हैं वहां वासुदेव बलदेव नहीं होते। क्यों कि चक्रवर्ती ने छः खंड पृथ्वी पर राज्य करना है। उस समय के समस्त राजे उस के अधीन होंगे। वासुदेव और बलदेव की राज्य सीमा तीन खंड पृथ्वी है। वहां के समस्त राजा उन्हीं के अधीन होंगे। अतः चक्रवर्ती और वासुदेव-बलदेव का राज्य अपने-अपने में स्वतंत्र होता है। वासुदेव जो राज्य करेगा वह प्रति वासुदेव को मार करके करेगा। जब तक प्रति वासुदेव जिन्दा रहता है तब तक वासुदेव, बलदेव मांडलिक राजा कहलाते हैं। प्रति वासुदेव भी तीन खंड पृथ्वी का स्वामी होता है, पर उस के राज्य में स्थिरता नहीं आती। वासुदेव जब उसे मार कर राज्य ले लेता है, तब उस में स्थिरता आ जाती है। प्रति वासुदेव की आज्ञा का उल्लंघन होता रहता है, जैसे जरासिसंध प्रति वासुदेव

था। उसके विद्रोही बार २ सिर उठाते रहते थे। श्रीकृष्ण द्वारा मारे जाने पर श्रीकृष्ण जी ने निर्विघ्न राज्य किया।

एक-एक जमाने में ये नौ वासुदेव और नौ ही बलदेव होते हैं। नौ प्रति वासुदेव होते हैं। लक्ष्मण जी से पहले सात वासुदेव हो चुके थे। राम से पहले सात बलदेव हो चुके थे। रावण से पहले सात प्रति वासुदेव हो चुके थे। इसी प्रकार से नौ-नौ अवसर्पिनि और उत्सर्पिणी काल का चक्र चलता रहा है। १७० तीर्थंकर भी सभी विजय में ही होते हैं। इस का कारण यह है कि बलदेव, वासुदेव और चक्रवर्ती का मिलाप तो इसलिए नहीं होता कि उन्होंने स्वतंत्र राज्य करना होता है परन्तु तीर्थंकरों का किसी के साथ किसी प्रकार का भी विरोध नहीं। भगवती सूत्र सत्तक बारहवां उदेश नौवा पहली गाथा में पांच प्रकार के देव हैं।

पांच देव—श्री भगवती सूत्र के १२ वे शतक के नौ उद्देसे में पांच देवों का वर्णन है। उसके दस द्वार ये हैं:—

प्रश्न—श्री गौतम स्वामी भगवान महावीर से पूछते हैं, "भगवन! देव कितने प्रकार के है?"

उत्तर—हे गौतम देव पांच प्रकार के हैं—भव्यद्रव्य देव, नर देव, धर्म देव, देवाधिदेव, भाव देव।

अर्थ द्वार—हे प्रभु! भव्य द्रव्य देव किसे कहते हैं?

उत्तर—गौतम! जो जीव अभी मनुष्य और तिर्यंच गति में हैं पर जिन्हों ने आगे चल कर देव गति में उत्पन्न होना है, उन्हें ही भव्य द्रव्य देव कहते हैं।

नर देव—जिन के पास ८४ लाख हाथी, ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख रथ, ९६ करोड़ पैदल और ६४ हज़ार रानियां हैं, जो चारों दिशाओं के स्वामी हैं, ६ खंड पृथ्वी के भोक्ता है, ३२ हजार मुकुटधारी राजा जिन की सेवा में रहते हैं उन्हें ही नरदेव कहते हैं।

धर्म देव—भगवान श्री महावीर ने कहा "गौतम! जो अणगार के २७ गुणों का धारण करते हैं, उन्हें धर्म देव कहते हैं।"

देवाधिदेव—३४ अतिशय ३५ वाणी के गुणों के सम्पन्न केवल ज्ञान, केवल दर्शन के धारक सर्वज्ञ, सर्वदर्शी तीर्थकर भगवान को देवाधिदेव कहते हैं।

भाव देव—भवन पति, वाणव्यंतर, ज्योतिषी और वैमानिक ये चार जाति के देवता भावदेव कहलाते हैं।

आगति द्वार—भव्य द्रव्य देव की आगति २८४ की। १७९ की लड़ी। अर्थात् १०१ सम्मूछिम मनुष्य, ४८ तिर्यंच, पंद्रह कर्म भूमि के पर्याप्त व १५ अपर्याप्त ये १७९ की सिद्धि। ७ नारकी सर्वार्थ सिद्धि को छोड़ कर ९८ जाति के देव के पर्याप्त ये सब २८४।

नरदेव की आगति—८२ की। पहली नारकी १० भवन पति २६ वाण व्यंतर, १० ज्योतिषी। १२ देवलोक। ९ लोकांतिक। ९ ग्रेवैयक और ५ अनुत्तर विमान के पर्याप्त।

धर्म देव की आगति—२७५ की। १७१ की लड़ी १७९ में तेऊकाया और वायुकाया के आठ कर्म करके ९९ जाति के देवता और ५ नारकी के पर्याप्त २७५।

देवाधिदेव की आगति—३८ की १२ देवलोक ९ लोकांतिक व ग्रेवैयक ५ अनुत्तर विमान और ३ तारकी के पर्याप्त ये ३८ भाव देव की आगति—१४ की। १०१ सन्नी मनुष्य ५ सन्नी तिर्यच और पांच असन्नी तिर्यच पंचेन्द्रिय इन सभी के पर्याप्य। कुल १११ का आगति।

गति द्वार—भव्य देव की गति-१९८-९९ जाति के देवता के पर्याप्त गति।

नरदेव की आगति गति नरख की। यदि दीक्षा ले ले देवलोक या मोक्ष की।

धर्मदेव की गति ७० की १२ देवलोक ९ लोकांतिक वगेवैयक ५ अनुत्तर विमान। इन ३५ के पर्याप्त अपर्याप्त।

देवाधिदेव की गति—मोक्ष की।

भाव देव की गति—४६ की १५ कर्मभूमि ५ सन्नी तिर्यच, वादर पृथ्वी, पानी और प्रत्येक वनस्पति। इन २३ के पर्याप्त और अपर्याप्त।

स्थिति द्वार—भव्यद्रव्य देव की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूत की उत्कृष्टि ३ पल्योपम की।

नरदेव की स्थिति—जघन्य ७०० वर्ष। उत्कृष्ट ८४ लाख पूर्व की।

धर्मदेव की स्थिति—जघन्य एक समय की उत्कृष्ट ८४ देशउनी करोड़ पूर्व की। देवाधिदेव की स्थिति जघन्य ७२ वर्ष की, उत्कृष्ट ८४ लाख पूर्व की भावदेव की स्थिति—जघन्य दस हजार वर्ष उत्कृष्ट ३३ सागर की।

वैक्रियद्वार—भव्य द्रव्य देव और धर्मदेव इनमें लब्धि भी और नहीं भी। नरदेव और भावदेव में वैक्रय लब्धि होती है। १-२-३ उत्कृष्ट संख्याता असंख्याता करने की शक्ति है और अपनी इच्छानुसार करते भी हैं।

संचिट्ठा काल—जिस प्रकार स्थिति कही उसी प्रकार कहना चाहिये। परन्तु इसकी विशेषता यह है कि धर्मदेव का काल जघन्य। जघन्य एक समय का है।

अवगाहना द्वार—भव्य द्रव्य देव की अवगाहना। जघन्य अंगुलि की असंख्यातवां भाग उत्कृष्ट १ हजार योजन नरदेव की अवगाहना—जघन्य ७ धनुष उत्कृष्ट ५०० धनुष। धर्मदेव की अवगाहना जघन्य ७ हाथ उत्कृष्ट ५०० धनुष। भावदेव की अवगाहना जघन्य १ हाथ उत्कृष्ट ७ हाथ।

अन्तर द्वार—भव्य द्रव्य देव की अन्तर जघन्य १० हजार वर्ष और अन्तर्मुहूर्त उत्कृष्ट अनन्त काल। नरदेव का अन्तर जघन्य एक सागर अधिक उत्कृष्ट। देश अणा अर्द्ध पुद्गल परिवर्तन। धर्मदेव का अन्तर जघन्य पल्योपम उत्कृष्ट अर्द्ध पुद्गल परावर्तन। देवाधिदेव का अन्तर ही नहीं अल्प बहुत्व—सबसे थोड़े नरदेव उनसे देवाधिदेव संख्यातगुणा उनसे धर्मदेव संख्यात गुणा। उनसे भव्य द्रव्य देव असंख्यात गुणा उनसे भावदेव, असंख्यात गुणा नरदेव कम से कम २० और इसी प्रकार भावदेव भी कम से कम २० तो होते हैं। उत्कृष्ट नरदेव १५० हो सकते हैं। देवाधिदेव १७० हो सकते

हैं। जघन्य रूप में यह बराबर हैं। उत्कृष्ट में देवाधिदेव २० ज्यादा हैं। संख्यात गुणे कैसे हो सकते हैं। संख्यात गुणे तब होंगे जब वे ३०० से ज्यादा हों। सर्पिणी काल में १२ चक्रवर्ती होते हैं तो इनकी अपेक्षा इनसे दुगुने हो सकते हैं। १२-१२-२४। परन्तु ये तो आगे पीछे होते हैं। इसलिए युक्ति ठीक नहीं बैठती। पूज्य मोलक ऋषि महाराज जी ने अपने जैन तत्व प्रकाश में लिखा है कि जिस समय बीस तीर्थंकर शास्वत होते हैं। उन प्रत्येक के साथ ८३-८३ गृहवास में रहते हैं जिस समय वह बीस तीर्थंकर मोक्ष चले जाते हैं उनके स्थान पर ८३ गृहवासी तीर्थंकरों में से बीस उनके स्थान पर भाव तीर्थंकर बन जाते हैं। अतः तीर्थंकरों की संख्या १६८० हो जाती है अतः वे संख्यात गुणा हो जाते हैं, जैसे बीस तीर्थंकर शास्वत हैं वैसे ही बीस चक्रवर्ती भी शास्वत हैं अतः इन २० चक्रवर्तियों के साथ भी गृहवास भी ८३-८३ द्रव्य रूपसे चक्रवर्ती होने चाहिएं अतः इससे निष्कर्ष निकला कि दोनों बराबर हुए।

महाराज श्री का अमृतसर में चौमास होने के कारण लोगों की धर्म-ध्यान में रुचि बढ़ गई थी। लोग यहां सामायिक, दया, पौषधव्रत आदि तपस्या करने लगे। यहां गोचरी पानी के लिए सहूलियत हो गई। दोपहर की गोचरी ज्यादातर उन लोगों के घर से लाते थे, जो इसी चातुर्मास में महाराजश्री के धर्म प्रेमी बने थे।

यहां वेदान्तिक सम्मेलन होता था जिस में दूर-दूर तक के लोग आते थे। यहाँ पर एक निर्मलस्वामी नाम के संत थे। उनका काफी शिष्य समुदाय था। जब महाराज श्री के व्याख्यान वहां शुरू हुए तो उनके अनुयायी भी व्याख्यान में आने लगे। उनके मुख्य कार्यकर्त्ताओं ने आकर महाराजश्री से विनती की कि आप हमारे सम्मेलन में पधार कर वेदांत पर उपदेश देने की कृपा करें। महाराजश्री ने उत्तर दिया "आपके निमंत्रण पर मैं आ सकता हूँ और उपदेश भी कर सकता हूँ पर हमारे बैठने का स्थान आपके स्थान से अलग होना चाहिए। जिस स्थान पर औरतें बैठती हों और फूलों के हार तथा फल आदि रखे जाते हैं, हम उस स्थान पर नहीं बैठते। हम ने जीवन भर के लिये स्त्री

और सचित्त वस्तुओं को न छूने का दृढ व्रत लिया है। इसलिए हम ऐसे स्थान को सदोप मानते हैं। हम उपदेश देकर वापिस आ जायेंगे क्योंकि हमारी चर्या दिन-दिन की है। हमें आहार पानी वगैरह दिन अस्त होने से पहले लेना पड़ता है। हम अपने श्रावक भाइयों को भेजकर स्टेज दिखा लेंगे। अगर उन्हें हमारे अनुकूल स्थान लगेगा तो हम आप के यहां आ सकते हैं।"

महाराज के लिए दो श्रावक भाई वहां स्टेज देखने गये। उन्होंने पूछा कि महाराज श्री के लिए कौन सा प्लेटफार्म बनेगा? जिस पर उन्होंने उत्तर दिया कि उन्हें इसी प्लेटफार्म पर बैठना पड़ेगा। अत: वे दोनों भाई वहां महाराजश्री के बैठने के लिए इन्कार कर आये, और आकर महाराज श्री को यह समाचार कह सुनाया। महाराज श्री ने दूसरे रोज केसरीबाग वाले पंडाल में जहां कि नित्य प्रति उनका व्याख्यान होता था; व्याख्यान में यह सूचित कर दिया कि "जो भाई वेदान्त सभा की तरफ से हमें आमंत्रित करने आये थे उनके यहां हमारे दो श्रावक भाई स्थान देखने गये थे। लेकिन वहां के कार्यकर्त्ताओं ने उत्तर दिया कि अलग प्लेटफार्म नहीं बन सकता। महाराजश्री को इसी प्लेटफार्म पर बैठना पड़ेगा। हमारे सिद्धांत के अनुसार फल-फूल व स्त्रियों युक्त वह प्लेटफार्म सदोप हैं। हम इसे संघट्टा कहते हैं। इसलिए हम वहां नहीं गये।"

यहां केसरीबाग के पंडाल में पांच-सात हजार की संख्या में जनता रोज उपस्थित होती थी। व्याख्यान में अकाली सिक्ख भी आते थे। एक दिन महाराजश्री ने व्याख्यान में फरमाया कि सूजी, मैदा, घी, चीनी आदि से बने हलवे को तो प्रसाद कहते हैं और माँस को जो कि गंदगी से बना है महाप्रसाद कहा जाता है। प्रसाद तो गुरुद्वारे में बंटता है लेकिन महाप्रसाद को कोई गुरुद्वारे मे नही बांटता। गुरुद्वारे में अगर कोई ऐसा काम करे तो कितनी बदनामी होगी। इसलिए महाप्रसाद कोई अच्छी वस्तु नहीं है। इस से सबको दूर रहना चाहिए।

व्याख्यान के बाद आर्य समाजी भाई महाराजश्री से मिले और कहने

लगे कि जितनी बातें आपने महाप्रसाद के लिए कही हैं, यही अगर हम अपने प्लेटफार्म से सिक्ख भाइयों के लिए कह देते तो वहां सिक्खों की कृपाणें और तलवारें निकल आतीं। महाराजश्री ने फरमाया कि हम किसी के मजहब को बुरा नहीं कहते। हमने तो उनके सामने सिद्धांत रखा है। हम किसी की कांट-छांट नहीं करते। सिद्धान्त के सामने सबको झुकना पड़ता है।

महाराजश्री के इस चातुर्मास में सैंकड़ों की तादाद में लोग आते रहे। खास कर जालंधर शहर के सैंकड़ों लोग दर्शनों के लिए आये।

चातुर्मास समाप्ति से नौ-दस दिन पहले यहाँ की गौशाला कमेटी के प्रतिनिधि आये और गोपाष्टमी के अवसर पर गौशाला में पधारने के लिए विनती की। महाराजश्री ने उनकी विनती स्वीकार कर ली। गोपाष्टमी के दिन जब महाराज श्री गऊशाला में जाने लगे तो जैन बिरादरी के बहुत से भाई एकत्रित होकर उनके साथ गये। गऊशाला के कार्यकर्त्ताओं ने प्रवचन करने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने गउओं के विषय पर प्रवचन किया। इसी प्रवचन के दौरान वेदान्त सम्मेलन के कर्णधार श्री निर्मल स्वामी पधारे। उनके साथ कई सज्जन भी आये थे। गौशाला कमेटी के कार्य-कर्त्ताओं ने उसके गले में फूल मालायें डालीं। तत्पश्चात् श्री निर्मलस्वामी वहां आये जहाँ महाराजश्री प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने अपने गले से फूलमाला निकाल कर अपने साथियों को दे दी। महाराज श्री के चरणों में नमस्कार किया। वे जानते थे कि महाराजश्री प्रेमचंद जी फल-फूल और स्त्री आदि का स्पर्श नहीं करते, क्योंकि वे इन में जीव मानते हैं। अत: जैन, साधु इन्हें स्पर्श नहीं करते। महाराज श्री का अपनी मर्यादा पर दृढ़ रहने का निर्मलस्वामी पर यह प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने गले से हार उतार कर महाराज के चरणों में वंदना की। महाराजश्री प्रेमचंद जी की यही विशेषता थी कि वे जो प्रचार करते थे अपनी साधु मर्यादा में रह कर ही करते थे। उन्होंने कभी साधु-मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया।। संवत् १९६८ की बात है। महाराज श्री रावलपिंडी चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् रावलपिंडी छावनी पधारे। वहां पर गोल्डासरीफ के कुछ

भाइयों ने आकर अपने कस्बे में पधारने की विनती की। महाराजश्री ने स्वीकृति दे दी। अत: जब उन्होंने गोल्डासरीफ के लिए विहार किया तो रावलपिंडी के बहुत से जैन-अजैन भाई साथ हो लिए। गोल्डासरीफ मुसलमानों का बहुत बड़ा माना हुआ तीर्थस्थान है। वहां मुसलमानों का बड़ा पीर रहता है। यहां के सभी हिन्दू मुसलमानों पर उस का प्रभाव है। उन दिनों उसके पास तुर्की का एक माना हुआ पीर आया हुआ था। महाराजश्री के प्रचार को सुनकर वह महाराजश्री के पास आया। उसने मिलने के विचार से अपना हाथ आगे बढ़ाया, परन्तु महाराजश्री ने अपना हाथ संकोच लिया। इस पर उसने पूछा, "आपने अपना हाथ क्यों संकोच लिया मैंने हाथ मिलाकर मित्रता का परिचय देना चाहा था। ऐसा वर्ताव कर के क्या आप ने मेरी मानहानि नहीं की ?"

इस पर महाराज श्री ने कहा, "जैन साधु किसी से हाथ नहीं मिलाते। हम परस्पर स्वयं में भी एकदूसरे से हाथ नहीं मिलाते। हम लोगों को गृहस्थ लोग नमस्कार करते हैं। अत: यदि उनमें भी पुरुष लोग हमें छूना चाहें तो केवल हमारे पांव ही छू सकते हैं। इसलिये आप मेरे हाथ न मिलाने से अपना अपमान न समझें। यह तो हम जैन साधुओं की मर्यादा है। अत: जैन साधु अपनी मर्यादा नही छोड़ते। महाराजश्री ने उसे बहुत खुलासा कर के जैन साधु की मर्यादाओं से अवगत करवाया। इसके बाद उनके साथ जो दूसरे पीर महाशय थे, उनको हमेशा के लिए मांस भक्षण न करने का नियम करवाया गया।

तात्पर्य यह है कि महाराजश्री हमेशा अपनी मर्यादा का ध्यान रखते थे। यही कारण था कि निर्मल स्वामी ने अपने गले से फूल-हार उतार कर चरण-वंदन किया।

महाराजश्री ने गौ के संरक्षण और संवर्द्धन पर बड़ा ही प्रभावशाली व्याख्यान दिया, जिसका जनता पर बड़ा प्रभाव पड़ा। व्याख्यान के पश्चात् गऊशाला कमेटी के प्रबंधकों ने महाराजश्री का आभार प्रकट किया। महाराज वापस स्थानक में पधार गये। इसके बाद भी उनके व्याख्यान पंडाल में

होते रहे। अन्त में विहार के दिन विदाई समारोह में जैन, अजैन जनता ने हजारों की संख्या में उपस्थित होकर महाराजश्री का अभिनन्दन किया। महाराज श्री ने इस का उत्तर अपने उपदेश में दिया और विहार करने से पूर्व निम्न भजन गाया था उस समय १०-१२ हजार के लगभग लोग उपस्थित थे।

भजन

सुन लै प्यारिये संगते जान्दी वार दे सनेड़े ॥टेक॥

दीन दुःखी दी सेवा करना, पाप कर्म तों निश दिन डरना।

क्योंकि भोगने होनगे कर्म कीते जेड़े ॥१॥ सुन लै······

माता-पिता और बन्धु भाई मतलब के हैं सब संसारी।

अन्त वेले कोई न आवे नेड़े ॥२॥ सुन लै·········

अज असां ने है टुर जाना, खबर नहीं फिर कद मुड़ आना।

ज्यों डाल तों पंछी उड़दे सवेरे ॥३॥ सुन लै········

झूठी दुनियां दा झूठा बंदा, मोह माया विच फंस रहा बंदा।

धर्म नहीं आन्दा इन्हा दे नेड़े ॥४॥ सुनलै

सब जीवों से प्रेम जो करदे, आपस में हरगिज नहीं लड़दे

प्रभु वसदा उन्हा दे नेड़े ॥ सुन लै············॥५॥

यह है प्रेम मुनि दा गाना, सब जीवों से खिमत खिमाना।

धरम करो तो पार होवे बेड़ा ॥६॥ सुन लै·········

इस भजन के पश्चात् उन्होंने मंगलाचरण पढ़ा और अन्त में यह शेर पढ़ा :—

शेर—आये थे मिसाले बुल-बुल,
सैर गुलशन की कर चले।
ओ बागबां! संभाल बाग अपना,
हम मुसाफिर चले॥

यहां से विहार करके महाराजश्री स्कूल में ठहरे। स्कूल में मनुष्यों के बारे में संक्षिप्त उपदेश फरमाया और उपस्थित जनसमुदाय को मंगलपाठ सुनाया। यहां एक रात ठहरने के बाद विहार करके गुरुजंडियाले में पहुंचे। वहां भी उस दिन तो स्वागत के लिए आये लोगों को मंगलपाठ सुनाकर विदा किया और दूसरे दिन से सार्वजनिक व्याख्यान आरम्भ किया। यहां व्याख्यान में प्रतिदिन हजारों लोग धर्मलाभ प्राप्त करते थे। यहां हर रविवार को जालंधर पट्टी आदि निकटस्थ स्थानों के लोग दर्शनों के लिए आते थे।

गुरु जंडियाला प्रेम वैजीटेरियन सोसायटी का मुख्य केन्द्र था। यहाँ प्रति वर्ष वैजीटेरियन सोसाइटी की तरफ से आंखों के आपरेशन करवाये जाते थे। आस-पास के गाँवों में यह सूचना भेज दी जाती थी कि जिन लोगों को ऑपरेशन करवाना हो वे अमुक दिन जंडियाला पहुंच जायें। ऑपरेशन करने के लिए दिल्ली से डाक्टर बुलाये जाते थे। श्री प्रेमवैजीटेरियन सोसायटी की तरफ से आठ दिन तक मरीजों की सब प्रकार की सेवा सोसायटी की तरफ से की जाती थी। यह सिलसिला अब तक चल रहा है। यहां पर श्री प्रेमवैजीटेरियन सोसायटी की सभा हुई, जिस में यह प्रस्ताव पास किया गया कि सोसायटी की तरफ से एक धर्मार्थ औषधालय खोला जाय। सभा में प्रस्तावित योजना पर रविवार के दिन महाराजश्री ने व्याख्यान में भी प्रकाश डाला। सैंकड़ों की संख्या में लोग बाहर से आये हुए थे। व्याख्यानोपरात हैडमास्टर श्री जयचंद जी ने अपील की। श्री प्रेमवैजीटेरियन सोसायटी की तरफ से होमियोपैथिक औषधालय खोलना चाहते हैं, जिसके लिए धन की आवश्यकता है। जो सज्जन इसमें दान देना चाहें या कमेटी का सदस्य बनना चाहें, वे सहर्ष भाग ले सकते हैं।

हैडमास्टर जी की इस अपील पर बहुत से लोग मेम्बर बने और बहुत से लोगों ने काफी दान दिया। फलस्वरूप पुराने स्थानक में औषधालय खोल दिया गया। इसके कुछ समय बाद औषधालय के लिए स्वतंत्र भवन का निर्माण कर दिया गया। एक मास का कल्प पूरा करके महाराजश्री ने पट्टी क्षेत्र की

तरफ विहार कर दिया। धर्मप्रचार करते हुए दो-तीन दिन रास्ते में लगा कर आप पट्टी क्षेत्र में पधारे। वहां की बिरादरी ने हर्षोल्लास से महाराजश्री का स्वागत किया। महाराजश्री ने संक्षिप्त उपदेश तथा मंगलाचरण सुना कर लोगों को विदा किया।

पट्टी क्षेत्र में महाराजश्री पन्द्रह-बीस दिन तक विराजे तथा नित्य प्रति व्याख्यान देकर जनता को धर्मलाभ देते रहे। इस पट्टी क्षेत्र को महाराजश्री ने अनेकों बार फरसा था। विक्रमी संवत् २००० को यहाँ महाराजश्री का चातुर्मास हुआ। उन्हीं दिनों महाराजश्री के सान्निध्य में श्री एस० एस० पंजाब सभा की कॉंफ्रेंस हुई। उन्हीं दिनों श्री प्रेमवैजीटेरियन सोसायटी की भी कांफ्रेंस हुई। कॉंफ्रेंस के बाद भी महाराजश्री ने पट्टी क्षेत्र को फरसा, लेकिन उनका यह फरसना अन्तिम बार का फरसना था।

महाराज यहां से विहार करके दो दिन रास्ते में लगाकर जीरा नामक कस्बे में पधारे। रास्ते में महाराजश्री ने धर्मप्रचार द्वारा बहुत से लोगों से मांस, शराब छुड़ाया। मांस शराब का त्याग उन्होंने जीवनभर के लिए किया था। जीरे में महाराजश्री दस-बारह दिन तक विराजे। उन दिनों उनके पास दो वैरागी थे। उनकी दीक्षा का मुहूर्त नाई मुंशीराम ज्योतिषी से निकलवाया गया था। इस मौके पर फरीदकोट की बिरादरी आई और विनती की कि हाई स्कूल का उद्‌घाटन करना है। पहले दीक्षा दी जायगी और फिर उद्‌घाटन होगा।

महाराजश्री ने विनती स्वीकार कर ली। आप यहां से विहार करके मुदकी गांव पधारे। फिर तलमंडी मुदली फरसते हुए फरीदकोट पहुंचे। फरीदकोट में भी दूसरे दिन से आपके व्याख्यान आरम्भ हो गये और दीक्षा की तैयारी भी।

दीक्षा से एक दिन पहले वैरागियों का जलूस निकाला गया। जलूस में कई भजन मंडलियों का प्रबंध था और बाजे वालों का भी। खूब रौनक थी जलूस में। शाम को मेंहदी रचाई गई। अगले दिन हाई स्कूल में दीक्षा दी गई। वैरागियों के धर्म पिता बसंतामल के सुपुत्र श्री कस्तूरीचंद बने थे। इस

दीक्षा समारोह में हजारों आदमी इकट्ठे हुए। दीक्षा समारोह के पश्चात् महाराजश्री स्थानक में पधार गये। इसके वाद हाई स्कूल के उद्घाटन की तैयारियाँ शुरू हो गई। उद्घाटन की तिथि समीप आ रही थी। लेकिन प्रधान किसे बनाया जाए, इस बात का निर्णय अभी यहाँ का समाज नहीं कर पाया था। विकट समस्या थी। दैवयोग ही समझिये कि महाराज श्री के भक्त श्री यशवंत सिंह जो भटिंडे में रहते हैं; फरीदकोट बिरादरी के आग्रह पर और महाराजश्री की प्रेरणा से समाज सेवी श्री यशवन्तसिंह जी ने प्रधान बनना स्वीकार कर लिया। हम साधु संत गृहस्थियों के मामले में दखल नहीं देते। यशवंत सिंह महाराजश्री के पुराने श्रद्धालु हैं। १९९३ में महाराजश्री भीखी में दो-तीन महीने रहे थे, क्योंकि महाराजश्री के गुरु श्री वृद्धिचन्द्र उन दिनों अस्वस्थ थे। सुगर की तकलीफ थी। इसलिए ज्यादा घूम फिर भी नहीं सकते थे। इसलिए महाराजश्री का चौमासा बुढ़लाढ़ा मंडी में मंजूर हुआ था। उसी समय से यशवंत सिंह महाराजश्री का श्रद्धालु बना था। यशवंत सिंह को प्रधान बनाकर शहर में जलूस निकाला गया। अगले दिन जलसा शुरू हुआ जिसमें प्रधान श्री यशवंत सिंह ने अपनी तरफ से दस हजार रुपया दान देने का वचन दिया। बिरादरी को इतनी राशि प्राप्त होने की उम्मीद नहीं थी। उनका विचार ज्यादा से ज्यादा पाँच हजार का था। श्री यशवंतसिंह खुले हाथों दान देते हैं। अब तक वे १½ डेढ़ लाख रुपया दान कर चुके हैं। साधु-संतों का इशारा पाते ही समाज को दान देना उनका स्वभाव है। अकालग्रस्त लोगों को, वाढ़ ग्रस्त लोगों को सहायता पहुंचाना आदि दया के कामों में भाग लेते रहते हैं।

स्कूल का उद्घाटन हो गया। बाद में महाराजश्री ने व्याख्यान दिया। यहाँ पर महाराजश्री से यह प्रश्न किया कि गेहूँ, चने आदि में एक-एक जीव होता है या अनेक जीव हैं। उन्होंने कहा कि एक सम्प्रदाय वालों का ऐसा सिद्धांत था कि दानों में जीव नहीं है। महाराजश्री ने कहा इस संप्रदाय का नाम अजीवमति था। अर्थात् ये लोग दाने में जीव नहीं मानते। मेरे विचार से उनकी यह धारणा गलत है। भगवती सूत्र सत्तक २४वाँ जिसके २४ दण्डकों के

हैं। वैसे २४ उद्देश्य हैं। जिनमें पांच स्थावर तीन विकलेंद्रिय ये आठ दण्डकों के जीव यह विषय बहुत गहन है। यह चौबीसवां सत्तक है। इसका नाम गम्मे का सत्तक है। इसलिए जितने सत्तक है सब दण्डकों के ऊपर ही चलते हैं। गम्मे का अर्थ है गमन करना अर्थात् एक गति से दूसरी गति में आना-जाना। यहां गम्मे नौ होते हैं। इन गम्मों से जो जीव मर के जाते हैं, वे गम्मे की वजह से जाते हैं। इनमें तीन गम्मे औधिक के, तीन गम्मे जघन्य के और तीन गम्मे उत्कृष्ट के हैं। जो पहला गम्मा है, वह औधिक का है। औधिक का मतलब है समूच्चा से आना, जीना मरना आदि। मरना जीना सब औधिक का मतलब है। जघन्य तिथि का जघन्य मे जाना उसकी तिथि का उसकी तिथि में आना।

दूसरा गम्मा है औधिक जघन्य। औधिक जघन्य जहां जायगा वहां उसकी उमर थोड़ी होगी। वह ऐसे ही स्थान पर जायगा उसकी आयु थोड़ी होगी। तीसरा औधिक उत्कृष्ठा जहां से आयेगा वह तो समूच्चा, जहां जायेगा वहाँ उत्कृष्ठा (ज्यादा से ज्यादा)। जघन्य औधिक चौथा है। जाने वाले की उमर तो कम होगी। जहां जा रहा है वहां कम भी हो ज्यादा भी। पांचवां गम्मा है जघन्यते-जघन्य। जहां है वहां भी थोड़ी आयु होगी, जहाँ जायेगा वहां भी थोड़ी होगी।

छठा गम्मा है जघन्य उत्कृष्ट का। जहां से जायगा वहां से थोड़ी उमर वाला जायगा। जहां जाएगा वहां ज्यादा उमर वालों में जाएगा। सातवां गम्मा हैं उत्कृष्ट····· जहाँ से जाएगा वहां उसकी आयु ज्यादा होगी। जहा जायगा वहां उसकी आयु थोड़ी भी होगी और ज्यादा भी होगी। आठवां गम्मा है उत्कृष्ट की तरह जघन्य जहां से आयेगा। वहां तो उसकी आयु ज्यादा होगी। जहां जायेगा वहाँ कम से कम आयु होगी। नौवाँ गम्मा है उत्कृष्ट से उत्कृष्ट। जहां से जायेया वहां भी आयु ज्यादा होगी और जहाँ जायेगा वहां भी आयु ज्यादा होगी। इसका नाम हैं उत्कृष्ट से उत्कृष्टता। इस प्रकार गम्मों का वर्णन तो बहुत ही सूक्ष्म है, परन्तु जो प्रश्न वनस्पति के बारे में हैं इसका

समाधान यह है कि पृथ्वी काया अर्थात् मिट्टी के जीव नौ गम्मों से उत्पन्न होते हैं। पहला दूसरा गम्मा, चौथा, पांचवां गम्मा। इन में जो जीव जन्म-मरण करते हैं, वे कितने जन्म-मरण करते हैं। पहले गम्मा में जघन्य दो भव करे और उत्कृष्टा असंख्याते भव करे। परिमाण का मतलब एक समय में कितने जीव पैदा होते हैं। परिमाणतः समय-समय असंख्याते जीव उत्पन्न होते हैं। जैसा पहले कहा है, वैसा ही दूसरा समझना चाहिए। जैसे दूसरा वैसे ही चौथा पांचवां समझना ये चार गम्मे भव की अपेक्षा दो भव करे। उत्कृष्ट असंख्याते भव करे।

जीव उत्पन्न होने का प्रमाण क्या है ?

समय-समय पर कितने पैदा हों। जैसे पृथ्वी काया के चार लिखे हैं। ऐसे ही जो पृथ्वी काया के जीव उत्पन्न हों वैसे ही उनका भी समझ लेना। तेऊ काया (अग्नि के जीव) उनका भी ऐसे ही समझ लेना। हवा के जीवों का भी ऐसे ही समझना। जो वनस्पति के जीव जमीन में पैदा हों उनका भी ऐसे ही समझना। इन पांचों के चार-चार गम्मे तो कुल २० गम्मे हो गये। पांचों के २०-२० गम्मे तो कुल १०० गम्मे हो गये। जो चार-चार स्थावर हैं उनके चार-चार के हिसाब से १६ गंमे हो गये। वनस्पति वनस्पति में उत्पन्न होवे तो चार गम्मे के जीव चार गम्मे में पैदा होवे तो जघन्य दो भव करे, उत्कृष्टा अनन्त भव करे। परिमाणतः समय-समय पर अनन्त उत्पन्न होते हैं। इसीलिए ये चार गम्मे अनन्त के हैं। इन्हीं चार गम्मों में अनन्त पैदा होवें और १७ गम्मे असंख्यात जीव पैदा होवें। पांचों में द्विइन्द्रिय तेइन्द्रिय, चउइन्द्रिय, भव तो असंख्याते होंगे और उत्पत्ति—समय-समय पर असंख्यातें उत्पन्न हों वे भी उनके चार-चार मिलकर ३२ हो जायेगे। ३२ गम्मे आठों के साथ लगा दें तो २५६ हो जायेंगे। २५६ में तो समय-समय पर असंख्य उत्पन्न होवें और चार गम्मे जो हैं, वे वनस्पति के हैं। इनमें समय-समय पर अनन्त जीव उत्पन्न होवें।

अब रहा दाने में जीव का प्रश्न। अजीव पंथियों का कहना है कि वनस्पति

में संख्याते असंख्याते, अनन्त, जीव उत्पन्न होते हैं। इसलिये दाने में एक जीव की धारणा गलत है, क्योंकि एक दो जीव तो वनस्पति में पैदा होते ही नहीं। और जो सभी किस्म के अनाज हैं उनमें एक जीव नहीं मानना चाहिए। क्योंकि एक जीव तो होता ही नहीं इसलिए यह धारणा गलत है।

मालूम होता है जब वनस्पति में एक जीव उत्पन्न नहीं होता तो दाने में जीव नहीं होना चाहिए।

इस प्रश्न का समाधान—

उपरोक्त धारणा ठीक नहीं है, क्योंकि जो पृथ्वी-पृथ्वी में जावे तो नौ गम्मा से जावे। चार गम्मा में तो समय-समय असंख्यात उत्पन्न होते हैं। रह गये पाँच गम्मे। तीसरा गम्मा, छठा गम्मा, सातवां गम्मा, आठवां गम्मा, नवाँ गम्मा, ये पांच गम्मे भवतः। ये पांच गम्मे दो भव करे और उत्कृष्ट आठ भव करे। परिमाण से कितने-कितने जीव, उत्पन्न होते हैं। परिमाण से एक दो तीन चार पांच असंख्याते। आठ गम्मों के पांच २ गम्मे तो कुल ४० हो गये। पृथ्वी के पाँच। इसी तरह आठ स्थानों के ३२० गम्मे हो गये। जो ३२० गम्मे हैं वे एक दो तीन असंख्याते उत्पन्न होते हैं। उनमें पांच गम्मे वनस्पति के भी हैं। उन चार गम्मों के समय-समय पर अनन्त जीव उत्पन्न होते हैं। पांच गम्मो के वनस्पति में समय-समय पर, १, २, ३, असंख्यात जीव उत्पन्न होते हैं। यह उनकी विचारधारणा गलत सिद्ध होती है। इन गम्मों के वारे में उन्होंने विचार नहीं किया। अगर विचार करते तो वे ऐसा नहीं कहते। इस कारण से वे अजीव पंथी कहलाये। दाने में एक जीव के होने में कोई शंका नहीं है। जब वह सब्जी रूप में था तो उसमें असंख्यात जीव थे लेकिन सूख जाने पर उसमें एक ही जीव है। शास्त्रकार मानते हैं कि जब अंकुर उगता है तो उसमें अनन्त जीव होते हैं, इसीलिए उसे उगमाने अनन्ते कहा गया है। जिस सब्जी में से दूध निकलता है, उसमें अनन्त जीव होते हैं। जब कोई मान्यता वाले कोई रूढ़ि पकड़ लेते हैं तो सम्प्रदायें खड़ी हो जाती हैं।

महाराजश्री बम्बई से राजकोट जा रहे थे। रास्ते में आप अहमदावाद में ठहरे। लगभग २०-२१ दिन तक अहमदावाद में रहे। वहाँ दरियापुर संप्रदाय के आचार्य ठहरे हुए थे। महाराजश्री का व्याख्यान भी होता रहता था। काफी लोगों ने लाभ उठाया। महाराजश्री के साथ आचार्य जी की बातचीत हुई। महाराजश्री ने कहा, "आपको नये संघ में शामिल हो जाना चाहिए।" उन्होंने कहा, "हमारी सम्प्रदाय तो ८ कोटि की है। जो संघ बना हुआ है उनके छः कोटि के श्रावक बने हुए हैं।" इस प्रकार का उत्तर पाकर महाराजश्री ने उनसे बातचीत छोड़ दी। उन्होंने मुझे बताया कि आचार्य जी कहते हैं कि हमारे श्रावकों की संख्या ८ कोटि की है और संघ दो राशि मानता है। वे लोग बिहार राशि और अविहार राशि दोनों को मानते हैं। हम एक बिहारराशि ही मानते हैं। अतः हमारा मेल नहीं मिलता।

हम विहार राशि मानते हैं अविहार राशि नहीं मानते। मैंने श्री ईश्वर दास जी महाराज से प्रश्न किया कि जो ८ कोटि श्रावक संप्रदाय चल रही है उसके विषय में क्या विचार है? पच्चीस बोल के थोकड़े में श्रावक के व्रतों में ४९ भांगे है। उसमें आपका ८ कोटि का पच्चखान है तो वह कौन से भांगे से है? हमारा जो ६ कोटि श्रावकों का पच्चखान हैउनमें भागों में से श्रावक के तीन भांगे निकल जाते हैं। मन का अनुमोदना, वचन की अनुमोदना और काया का अनुमोदना। तीन भांगे ये निकल जाने के बाद भांगे छः रह गये क्योंकि श्रावक का अनुमोदना के बिना रहना असंभव है। इसलिए श्रावक के अनु-मोदना के तीनों भांगे खुले हैं, और आप ने तो काया और वचन का अनुमोदना भी बंद कर दिया, केवल मनका अनुमोदना खुला रखा है। हमारा छः कोटि पच्चखान श्रावक के ४९ भांगों में से ४० भांगे से होता है। पोसह, सामायिक आदि भी ४० के भांगों से होता है। आपका ८ कोटि श्रावक पच्चखान कौन से भांगे से होता है? आचार्यश्री बोले हम भांगे नहीं जानते। इस बारे में हमें ज्ञान नहीं है। जो श्रावक सामायिक पोसह करने बैठे थे, वे बोले उस साधु ने ऐसी प्रथा चलाई है कि ८ कोटि की जानकारी हमें नहीं है। उनका दूसरा विचार था कि ये विहार राशि को मानते हैं। श्वेताम्बर शास्त्रों में ऐसा कहीं

देखने को नहीं मिलता, जिसमें अविहार राशि को खुले रूप में प्रकट किया गया हो ।

बहुश्रुत श्री समर्थमल जी महाराज ने श्री भगवती सूत्र के २८वें शतक में बताया, जिसके आठ भांगे हैं । उन्होंने कहा, "कर्मों को इकट्ठा कहाँ करते हैं और कहाँ भोगते हैं ?"

प्रथम भांगे में कहा है कि सभी जीवों ने कर्म तिर्यंच गति में किये और तिर्यंच में भोगे । यह भांगा असंजोगी है । इसका किसी के साथ कोई सम्बंध नहीं है ।

दूसरा भांगा है तिर्यंच गति और नरक गति में बांधे और इन्हीं में भोगे ।

तीसरा भांगा है तिर्यंच और मनुष्य गति में बांधे और इन्हीं में भोगे ।

चौथा भांगा है तिर्यंच और देवगति में बांधे और इन्हीं में भोगे ।

पाँचवा भांगा तिर्यंच गति, नर्क गति और मनुष्य गति में बांधता है और इन्हीं में भोगता है ।

छठा भाँगा तिर्यंच गति, नर्क गति एवं देव गति में बांधता है और इसी में भोगता है ।

सातवाँ भाँगा तिर्यंच गति, मनुष्य गति एवं देवगति में बांधता है और इन्हीं में भोगता है ।

आठवां भांगा तिर्यंच गति, नर्क गति, मनुष्य गति, और देवगति, में बांधता है और इन्हीं में भोगता है ।

मालूम रहे कि पहला भांगा असंयोगी का है ।

आठ भांगों में प्रथम भांगा १ असंजोगी है । तिर्यंच में कर्म बांधे और तिर्यंच में ही भोगे । इस भांगे से अव्यवहार राशि को सिद्ध करना चाहते हैं क्योंकि तिर्यंच गति की कायास्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त की है । उत्कृष्ट स्थिति अनन्ताकाल की है । मिथ्यात्व मोहनीय कर्म की स्थिति ७० कोटाकोटि-

सागर की है। अतः तिर्यच की माया स्थिति के कई बार ७० कोटा कोटिसागर की स्थिति भोग सकता है। अतः तिर्यच में ही बांधे और तिर्यच में ही भोगे, इस बात में कोई आपत्ति नहीं। अतः अव्यवहार राशि सिद्ध नहीं होती। दिगम्बर विचारधारा वाले लोग अव्यवहार राशि को मानते हैं किन्तु उनका गोम्मट सारग्रंथ मेरे देखने में आया है। उस ग्रंथ में यह प्रश्न किया गया है कि क्या जीव अव्यवहार राशि से व्यवहार राशि में आ सकता है या नहीं ? इस प्रश्न के उत्तर में उसी ग्रंथ में लिखा है कि नहीं आ सकता। अव्यवहार राशि की नित्यनिगोद है। यदि अव्यवहार राशि में से आवे तो नित्यनिगोद नहीं मानी जा सकती। अतः अव्यवहार राशि में से व्यवहार राशि में नहीं आ सकता। मेरे ख्याल से जैसे वनस्पति में ढ़ाई पुदगल, परावर्तन और असंख्याति पुद्गल परावर्तन, इन को छोड़कर वनस्पति में तीन भांगे मानने चाहिए। अनादि-अनंत, अनादिशांत, सादिशान्त। अभाषक में चार भांगे मानने चाहिएँ। अनादि-अनन्त, अनादिशांत, सादिशांत, सादिअनन्त। यदि ये चारों किसी शास्त्र में मिल जायें तो मेरे ख्याल से फिर अव्यवहार राशि सिद्ध हो सकती है। इस पर विद्वान लोगों को विचार करके इसकी खोज अवश्यमेव करनी चाहिए क्योंकि यह चीज उलझी हुई है। कोई कुछ कहता है दूसरा कुछ और कहता है। इसके विषय में एक मान्यता नहीं है।

यहाँ से विहार करके आप भटिंडा पधारे। वहाँ की बिरादरी ने बड़ा भव्य स्वागत किया। महाराजश्री ने फरीदकोट आदि नगरों को कई बार फरसा, चातुर्मास भी किये, पर अब की बार यह इधर की अन्तिम फरसना थी। यहां एक बहुत बड़ा पंडाल बनाया गया था। जहां जैन, अजैन जनता हजारों की तादाद में आकर लाभ उठाती थी। यहां के भाइयों ने चातुर्मास के लिए विनती की। महाराजश्री ने स्वीकृति दे दी, और दस-पंद्रह दिन तक ठहरे। व्याख्यान धूम-धाम से होते रहे। यहीं दूसरे क्षेत्र के भाइयों ने आकर जंगल देश के लिए विनती की। महाराजश्री ने कहा, "भटिंडे का चातुर्मास इसीलिए मैंने मंजूर किया है, क्योंकि मेरा जंगलदेश को फरसने का भाव है।

यहां से महाराजश्री ने गीदड़बाहा मंडी की तरफ विहार किया। एक रात रास्ते में लगाकर आप गीदड़बाहा मंडी पहुंचे, जहां उनका भव्य स्वागत किया गया। उस दिन तो लोग मंगलपाठ सुनकर चले गये। दूसरे दिन से खुले मैदान में व्याख्यान शुरू हो गये जनता आठ नौ सौ की तादाद में रोज आकर लाभ उठाने लगी। यहां महाराजश्री आठ-दस दिन रहे। यहीं पर से खेवो वाली की तरफ विहार किया। रास्ते में एक रात ठहरे। उस गांव का जमींदार बहुत बड़ा आदमी था। उसे मांस शराब का त्याग करवा कर अगले दिन खेवा वाली पहुचे। यहां के भाइयों ने खूब स्वागत किया। यह सिक्ख लोगों का गढ़ है। यहां के लोग काफी देर से जैनधर्म को मानते आये हैं। कई लोगों ने रात्रि भोजन का त्याग कर रखा है। यहां के लोगों ने अपने क्षेत्र और बाहर से चंदा इकट्ठा करके बहुत बड़ा स्थानक बनाया है। इसी में ये लोग सामायिक, दया, व्रत पौषध-व्रत आदि करते हैं। यहां पर महाराजश्री ने आठ दिन ठहर खूब धर्म लाभ दिया। यहां के भाइयों की बहुत दिनों से प्रबल इच्छा थी कि महाराज श्री हमारे क्षेत्र को पवित्र करें। यह दिन खेतों की कटाई के थे। फिर भी जनता उमड़-घुमड़ कर व्याख्यान में आती थी। रात को तो भाई काफी संख्या में आते थे।

यहां से महाराजश्री ने डाबा वाली की तरफ विहार किया। वहां के भाइयों ने आपका खूब स्वागत किया। यहां खुले मैदान में व्याख्यान होते रहे। महावीर जयंती नजदीक होने के कारण भाइयों ने काफी धूम-धाम से महावीर जयंती मनाने की इच्छा प्रकट की। बाहर भी निमंत्रण पत्र भेजे गये। भजन मंडलियों और भाषण देने वालों में बड़ा उत्साह था।

श्री महावीर जयंती के दिन हजारों की संख्या में लोग इकट्ठे हुए। भजन और भाषण हो चुकने के बाद महाराजश्री ने श्री महावीर भगवान के जीवन पर प्रकाश डाला। पूरे अमन के साथ यह समारोह सम्पन्न हुआ।

भाइयों ने रात के प्रोग्राम में भी महाराजश्री को आमंत्रित किया पर उन्होंने यह कह कर इन्कार कर दिया कि रात्रि को अपने स्थान से बाहर जाना मेरी साधु मर्यादा के विरुद्ध है।

दूसरे दिन राणीग्राम के भाइयों ने अपने ग्राम में पधारने की विनती की। महाराजश्री ने उन्हें स्वीकृति दे दी और तीन-चार दिन बाद राणीग्राम के लिए विहार कर दिया। दो दिन रास्ते में लगाकर राणीग्राम पहुंचे। वहां के भाइयों ने बड़े उत्साह से स्वागत किया। दूसरे दिन से महाराजश्री का व्याख्यान शुरू हुआ। यहां मुसलमानों का बहुत जोर है। लगभग १५-१६ तो मस्जिदें हैं। यहां पंजाब के शरणार्थी लोग काफी संख्या में आये हुए हैं। महाराजश्री के उर्दू के शेर सुनकर वे लोग बहुत ही खुश होते थे।

यहां से महाराजश्री ने सरसा की ओर विहार किया। राणीग्राम की जनता दो तीन मील पदयात्रा कर आपके साथ गई। आप के आग्रह पर वे वापस लौटे, उदास मन से। उनके नेत्र सजल थे और हृदय कमल म्लान क्योंकि वे अमृतमय वचनों को सुनने से वंचित हो गए थे। महाराजश्री अपनी मण्डली सहित चले जा रहे थे अपने गन्तव्य स्थान की ओर। सूर्य देवता शिखर पर पहुंच चुके थे। अतः थोड़ी देर ठहरकर दोपहर का आहार आप ने मार्ग में किया। सूर्य के अस्ताचलगामी होने से पूर्व ही आप सिरसा पहुंच गए। सिरसा शहर पहले पंजाब में था, अब हरियाणा प्रान्त में है। महाराजश्री जी के स्वागतार्थ सैकड़ों की संख्या में लोग मार्ग में अगवानी के लिए खड़े थे। महाराजश्री के दैदीप्यमान ललाट और भव्य वेशभूषा के दर्शन होते ही महाराजश्री के जयकारों से आकाश गूंज गया। वन्दना-नमस्कार के उपरान्त महाराजश्री के चरणों का अनुसरण करते हुए जनसमुदाय चला आ रहा था। प्रभु गीतों की स्वर लहरियां गूंज रही थीं दिशाओं के आंचल में। सिरसा का स्थानक आ गया था। आज्ञा लेकर महाराजश्री ने अपनी शिष्यमण्डली सहित स्थानक में प्रवेश किया। महाराजश्री के बैठ जाने के बाद जनसमुदाय भी वहां बैठ गया। महाराजश्री के मुखारविन्द से निकले हुए वचनों से उन्हें आत्मिक शान्ति मिली। मंगलपाठ श्रवण कर जनसमुदाय ने अपने-अपने घर की राह ली।

अगले दिन से व्याख्यान का क्रम चल पड़ा। जैन और अजैन सभी आप के वचनों को सुनने के लिए आने लगे। आप के अनमोल वचनों से अधिक लोग

लाभ उठा सकें, इस दृष्टिकोण के अन्तर्गत सार्वजनिक व्याख्यानों की व्यवस्था की गई। स्थानक के बाहर बाजार में एक विशाल पंडाल बनाया गया। पंडाल की साजसज्जा भी देखने योग्य थी। व्याख्यान में अत्यधिक भीड़ रहती थी। आपके वचनों से यहां के लोग बहुत ही प्रभावित हुए। पांच-सात सार्वजनिक व्याख्यान ही आपके हुए थे कि दुधाड़ की बिरादरी आपकी सेवा में वहां के श्रीसंघ की विनती लेकर आ पहुंची। उनके अत्यधिक आग्रह और प्रेम को आप ठुकरा न सके। इसीलिए तो कवियों ने कहा है कि :—

"वश में होते आए भगवान् भक्त के।"

भगवान् भी जब प्रेम के कारण भक्त के वश में हो जाते हैं तो फिर इन्सान की बिसात ही क्या है? आप ने उनकी विनती स्वीकार कर उन्हें सुखे समाधे आने का वचन दिया। जैन मुनि निश्चयात्मक वाणी में कभी कुछ नहीं कहता। हो सकता है कि शरीर की अस्वस्थता या किन्हीं परिस्थितियों के कारण वह अपना वचन पूरा न कर सके, अतः वह कहता है कि सुखे समाधे आपका क्षेत्र फरसने की भावना है। महाराजश्री से स्वीकृति पाकर वहाँ के लोग सिरसा में विराजित आर्या वल्लभवती जी के पास गए और उनसे भी दुवाड़ पधारने की विनती की। सती जी ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर अपनी सहमति दे दी। तदनन्तर दुधाड़ का संघ महाराजश्री के चरणों में पहुंचा और उन्होंने निवेदन किया कि सती वल्लभवती जी भी दुधाड़ पधार रही हैं। यह बात सुनते ही महाराजश्री चिन्तासागर में डूब गए। उनके मुख पर भाव बनते और मिटते रहे। डाबावाली में भी यह सती हमारे साथ थी..............आज्ञा लेकर व्याख्यान सुनने के लिए यह सती अपनी शिष्यमण्डली सहित राणीग्राम में भी आई। ....अब यह दुधाड़ जाना चाहती है।...........क्या साध्वी का किसी साधु के साथ इस प्रकार विचरण करना उचित है?........क्या लोग लांछन नहीं लगाएंगे?.......... क्या व्यवहार नय की दृष्टि से यह उचित है? आपकी निर्णय शक्ति प्रबल थी। तुरन्त ही आपने दुधाड़ न जाने का निश्चय मन ही मन कर लिया। महाराजश्री के इस मौन ने उपस्थित जनसमुदाय के मनों को

कुम्हला दिया। सभी एक दूसरे के मुख की ओर देख रहे थे। तभी श्री पन्नालाल जी जो वहां की विरादरी के मन्त्री थे, सन्नाटे को तोड़ते हुए बोले, "गुरुदेव ! साध्वी वल्लभवती के पधारने की बात सुनकर आप ने मौन क्यों साध लिया ?"

"उनके साथ जाने से धर्म के प्रति लोगों की आस्था में कमी हो जाने की सम्भावना है। डावावाली में भी यह सती हमारे साथ थी। आज्ञा लेकर व्याख्यान सुनने के हेतु यह सती अपनी शिष्याओं सहित राणीग्राम पधारी और अब दुधाड़ जाना चाहती है। साध्वी का साधु के साथ इस प्रकार विचरण करना अनेक सन्देहों को जन्म देता है। लोगों को अंगुली उठाने का अवसर प्रदान करता है। मन और चरित्र चाहे कितना ही उज्ज्वल हो परन्तु व्यवहार नय की दृष्टि से इस प्रकार इकट्ठा विचरण करना या एक गाँव-शहर में ठहरना उचित नहीं है। अत: आप सती जी को ले जाइए। मेरा विचार इस परिस्थिति में वहाँ जाने का नहीं है।"

महाराजश्री के विचारों का समर्थन सभी भाइयों ने किया। धर्म का प्रभाव हीन नहीं होना चाहिए, इस बात से प्रेरित होकर मन्त्री महोदय ने सारी परिस्थितियों से सती जी को अवगत कराया। उन्होंने अन्यत्र जाने का अपना विचार बना लिया। दुधाड़ के श्रीसंघ की पुन: विनती को महाराज ठुकरा न सके। दुधाड़ को फरसने के बाद महाराजश्री ने डूढाल को विहार किया। दो दिन के बाद महाराजश्री जी डूढाल पहुंचे। डूढाल के भाइयों ने आप का शानदार स्वागत किया। महराजश्री जी यहां पर नौ दिन तक ठहरे। स्थानक के सामने के विशाल मैदान में महाराजश्री के सार्वजनिक व्याख्यान हुए। सैंकड़ों की संख्या में लोग आपकी मधुरवाणी का रसास्वादन करने आते थे।

यहाँ से विहार कर महाराजश्री रोड़ी पहुंचे। रोड़ी की जनता महाराजश्री के आगमन का समाचार सुनकर फूली न समाई। खुशी के मारे उनके पाँव अब जमीन पर पड़ते ही न थे। धीरे-धीरे स्थानक में जनसमुदाय की भीड़ लग गई। लोग महाराजश्री के चरणस्पर्श करके अपने को कृतकृत्य समझने लगे

थे। महाराजश्री ने जनता को धर्मोपदेश दिया। आपकी वाणी का लोगों के हृदय पर अच्छा प्रभाव पड़ा। एक दिन आपके पास रोड़ी के एक दो भाई आए और बोले, "भगवन्। कुछ निवेदन करना चाहते हैं?"

"आप जो कुछ कहना चाहते हैं, निस्संकोच कहिए।"

"भगवन्। हमारी समाज के कर्णधार अन्य धर्मावलम्बी लोगों को विवाह आदि कार्यो के लिए स्थानक प्रयोग करने की अनुमति प्रदान कर देते हैं। वे लोग स्थानक में शराब सेवन करके स्थानक की पवित्रता को नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। अतः स्थानक का प्रयोग धार्मिक कार्यों के लिए ही होना चाहिए, ऐसी हमारी धारणा है।"

"आप लोगों के विचार सुन्दर हैं। मैं यहाँ के नेताओं से समय मिलने पर इस सम्बन्ध में अवश्य बातचीत करूंगा।"

वे दोनों महानुभाव आश्वासन पाकर चले गए। अवसर पाकर महाराजश्री ने यहाँ के मुखियाओं से इस विषय पर विचारविमर्श किया। आपके कहने का ढंग ऐसा सुन्दर था, जिससे वे अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने निर्णय किया कि भविष्य में किसी भी व्यक्ति को स्थानक का प्रयोग विवाहादि सांसारिक कार्यों के लिए करने की अनुमति नहीं देंगे। स्थानक केवल धार्मिक अनुष्ठानों के लिए ही प्रयुक्त किया जाएगा। यहां पर भी महाराजश्री के सार्वजनिक व्याख्यान ही हुए। आप के उपदेशों का प्रभाव जनता पर बहुत ही अच्छा पड़ा।

महाराजश्री का विचार यहाँ से कालावाली मण्डी जाने का था, अतः आप ने कालावाली मण्डी की ओर विहार कर दिया। सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास के परिषहों को सहन करते हुए आप चले जा रहे थे। मार्ग के एक गाँव में आपको ठहरना पड़ा क्योंकि दिन का अवसान हो रहा था। धर्मशाला और स्थानक आदि के अभाव में आपको एक जमींदार के मकान में ही ठहरना पड़ा। आपके धार्मिक नियमों के अनुरूप यह स्थान आपके ठहरने के योग्य था,

तभी आपने यहाँ ठहरना स्वीकार किया था। महाराजश्री ने इस मकान में दो शिकारी कुत्ते एक जगह बंधे हुए देखे। महाराजश्री ने जमीदार महोदय को वलाया और पूछा, "श्रीमान् जी ! ये कुत्ते यहाँ किस लिए बाँध रखे हैं ?"

वह बोला, "महाराज ! ये कुत्ते मेरे पुत्र के हैं। वह शिकार करने का शौकीन है। वह इन कुत्तों का प्रयोग शिकार के लिए करता है तथा अन्य शिकारियों को भी ये कुत्ते शिकार में सहायतार्थ देता है। मेरे समझाने पर भी वह मेरी बात नहीं मानता। यदि आप की कृपा दृष्टि से वह इस दुष्कृत्य को छोड़ दे तो मैं अपने आप को सौभाग्यशाली समझूँगा।"

"यदि हो सके तो उसे हमारे पास लाना।"

महाराजश्री से आज्ञा प्राप्त कर वह अपने पुत्र को उनके चरणों में ले आया। महाराजश्री के ब्रह्मचर्य के तेज से चमकते हुए मुख की ओर वह न देख सका। वह हाथ जोड़कर नतमस्तक होकर बैठ गया। वार्तालाप करते-करते महाराजश्री ने उसके शौक को उसके मुख से जान लिया। तदनन्तर महाराजश्री ने शराब, शिकार और मांस भक्षण से होने वाली हानियों का दिग्दर्शन उस आखेटक को इस प्रकार से दरशाया कि वह प्रभावित हुए बिना न रह सका। सन्तों के समागम ने और उनके वचनों ने किसका उद्धार नहीं किया ? सन्तों का समागम और उनके प्रवचनों को सुनने का सुअवसर किसी भाग्यशाली को ही प्राप्त हुआ करता है।

इसीलिए तो तुलसीदास जी ने भी कहा है कि—

सन्त समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय

महाराजश्री की अमृतवर्षा से उसके हृदय की कालिमा धुल गई। उसकी आत्मा से पाप का आवरण हट गया। उसे कुछ बोध हुआ। उसने शिकार न खेलने का, मांस न खाने का और शिकार के लिए कुत्ते न देने का प्रण कर लिया।

सूर्योदय होने पर महाराजश्री चल पड़े अपने गन्तव्य स्थान कालावाली मण्डी की ओर। स्थानीय जैन और जैनेतर जनता आपके स्वागतार्थ चल कर आई। कालावाली मण्डी से दो मील पूर्व जनता का आपसे साक्षात्कार हुआ।

श्रद्धा से नत होकर गिर पड़े आपके चरणों में। गुरुभक्ति का अभूतपूर्व मिलन था।

अब महाराजश्री के कदमों का अनुसरण करते हुए लोग उनके पीछे चले आ रहे थे। प्रभु गीत गाते हुए और महाराजश्री के गुणानुवादों का गायन करते हुए। स्थानक में पहुंचने पर ईर्यापथिक की आलोचना करने के उपरान्त महाराजश्री ने सबको मंगल पाठ सुनाया।

यहाँ पर रह कर आप ने कई सार्वजनिक व्याख्यान दिए। उपस्थिति चौदह पन्द्रह सौ की हुआ करती थी। मण्डी की जनता में शराब व माँस का प्रचलन अत्यधिक मात्रा में था इसलिए आपके प्रवचनों का प्रमुख विषय मांस मदिरा का त्याग ही रहा। आपके वचनों से प्रभावित होकर कई लोगों ने आजीवन मांस मदिरा का त्याग किया।

रामामण्डी में धर्म का डंका बजाकर महाराजश्री ने भटिण्डा की ओर प्रस्थान किया। क्योंकि भटिण्डा से भाइयों के अत्यधिक आग्रह पर महाराजश्री ने इस वर्ष का चातुर्मास भटिण्डा में करना स्वीकार कर लिया था। अतः समय से पूर्व वहाँ पहुंचना आवश्यक था। महाराजश्री अपनी शिष्य मण्डली सहित भटिण्डा की ओर चले जा रहे थे। भटिण्डा अभी नौ मील दूर था। रात्रि का अन्धकार संध्या की लालिमा को निगलने के लिए चला आ रहा था। विवश होकर महाराजश्री को मार्ग के एक गांव में ठहरना पड़ा। जिस मकान में महाराजश्री ठहरे थे, वह जमींदार का था। महाराजश्री की दृष्टि उस मकान में इधर उधर भागते हुए मुर्गों पर पड़ी। उन्होंने अनुमान लगाया कि यह व्यक्ति मुर्ग-मुर्गियों को तथा उनके अण्डे बेचने का व्यापार करता है। उनका मन इन मूक प्राणियों के वध से बेचैन हो उठा। वे जमींदार से बातचीत करने के लिए अवसर खोजने लगे। रात्रि में वह जमींदार दैवयोग से महाराजश्री के पास आया। महाराजश्री ने उसे धर्मोपदेश दिया अहिंसा का महत्व बताया। मांस भक्षण से होने वाली हानियों को दरशाया। उसे बताया कि जब हम किसी को जीवन दान नहीं दे सकते तो हमें उससे जीवन छीनने का कोई अधिकार नहीं है। विश्व के किसी भी प्राणी को मौत प्रिय नहीं है। जो व्यवहार हम

भटिण्डा चातुर्मास

संवत् २४८६

इस प्रकार वीर संवत् २४८६ सन् १९६० का चातुर्मास भटिण्डा में हुआ। भटिण्डा वर्तमान समय में हरियाणा प्रान्त में है। इससे पूर्व यह पंजाब प्रान्त का प्रसिद्ध शहर था। यहां पर जैनी लोग काफी संख्या में रहते हैं।

दूसरे दिन महाराजश्री के प्रवचन प्रारम्भ हुए। पांच दिन तक प्रवचनों का स्थान स्थानक रहा। तदनन्तर महाराजश्री के व्याख्यानों का आयोजन एक विशालकाय मैदान में किया गया। लोग आपकी वाणी को श्रवण करने के लिए आने लगे। जो भी व्यक्ति आपके वचनों को सुनता था वह आपकी प्रतिभा का लोहा मान अपने इष्ट मित्रों में आपकी प्रशंसा किए अघाता न था। अब भटिण्डा शहर में चतुर्दिक आप की विद्वत्ता तथा चरित्र का बोल बाला था। श्रोताओं की उपस्थिति की संख्या तीन हजार प्रतिदिन होने लगी थी प्रवचन में। जैन जैनेतर सभी लोग आपकी वाणी से लाभ उठा रहे थे।

अमृतमुनि के कारण यहां के अजैन भाइयों की जैन धर्म के प्रति आस्था कुछ शिथिल हो गई थी, वह महाराजश्री के उपदेशों से फिर दृढ़ हो गई। लोगों ने महाराजश्री के सान्निध्य में रहकर सामायिक, प्रतिक्रमण सीखा और उनका आराधन किया। पर्यूषण पर्व के शुभ अवसर पर महाराजश्री ने अन्तगढ़ सूत्र का वाचन किया। इस सूत्र में ऐसे निन्यानवें जीवों के जीवनचरित्र का वर्णन है, जो महान तपस्या के द्वारा अपनी आत्मा को कुन्दन सम बनाकर मोक्ष के अधिकारी बने हैं। सूत्र के वाचन को जैनेतर लोगों ने भी बड़े प्रेम से

उत्तर—हे गौतम ! अज्ञान, संशय, मिथ्याज्ञान, राग द्वेष, मतिभ्रंश, धर्म में अनादर बुद्धि, शुभ अशुभ योग और दुर्ध्यान, ये प्रमाद के आठ भेद हैं। इस आठ प्रकार के प्रमाद में और योग के निमित्त से जीव कांक्षा मोहनीय कर्म का बन्धन करता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! प्रमाद किस से उत्पन्न होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! प्रमाद योग से उत्पन्न होता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! योग किस से उत्पन्न होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! योग वीर्य से उत्पन्न होता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! वीर्य किस से उत्पन्न होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! वीर्य शरीर से उत्पन्न होता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! शरीर किससे उत्पन होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! शरीर जीव से उत्पन्न होता है और जीव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषकार पराक्रम से यह करता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या श्रमण निर्ग्रंथ भी कांक्षामोहनीय कर्म भी वेदते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! वेदते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! इस के क्या कारण हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! इसके तेरह कारण शास्त्रों में बताए गए हैं। प्रथम कारण ज्ञानान्तर है। एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान को ज्ञानान्तर कहते हैं। इनके विषय में शंका हो जाना कि ऐसा क्यों है ? यथा—अवधिज्ञानी चौदह राजु लोक के परमाणु से लेकर अनन्त प्रदेशी स्कंध को जानता है। मनःपर्यायज्ञानी अढ़ाई द्वीप के सभी जीवों के मन की बात को जानता है। अवधिज्ञान तीसरा ज्ञान है और मनः पर्यायज्ञान चौथा है। मनःपर्यायज्ञानी अवधिज्ञानी से कम क्यों जानता है ? ऐसी शंका उत्पन्न होती है। इसका उत्तर यह है कि अवधिज्ञान के साथ में अवधिदर्शन की सहायता है, इसलिए अवधिज्ञानी अधिक जानता है और अधिक देखने की सामर्थ्य रखता है। मनः पर्याय ज्ञान के साथ दर्शन का सह-

क्षयोपशम और उपशम का लक्षण एक नहीं है। अलग-अलग है । अतएव दोनों से होने वाला सम्यक्त्व भी अलग-अलग है। क्षयोपशम और उपशम का भेद यह है—क्षयपोशम में उदय में आए हुए कर्म का तो क्षय हो जाता है और उदय में नहीं आए हुए का विपाक से उपशम होता है किन्तु प्रदेश से उपशम नहीं होता। उपशम सम्यक्त्व में विपाकानुभव और प्रदेशानुभव दोनों ही नहीं होते । इस के अतिरिक्त औपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति अन्तर्मुहूर्त्त मात्र की है और क्षायोपशमिक सम्यक्त्व की स्थिति ६६ सागर झाझेरी (कुछ अधिक) है। इस प्रकार दोनों दर्शन भिन्न-भिन्न हैं ।

चारित्रान्तर—चारित्र के विषय में शंका होने पर कांक्षामोहनीय कर्म को निग्रंथ वेदता है । जब सामायिक चरित्र में सर्व सावद्य योग का त्याग है और छेदोपस्थापनिक चरित्र में भी सर्व सावद्य योग का त्याग है । फिर इन दोनों चरित्रों को अलग २ क्यों कहा गया है ? इस का समाधान यह है कि प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ होते हैं। अन्दर से उनका हृदय सरल होता है अन्तिम तीर्थंकर के साधु वक्रजड़ (अर्थात् ऊपर से जड़ (यानी मंद बुद्धि वाले) और अन्दर से छल, कपट वाले) होते हैं। इसलिए प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के साधुओं को समझाने के लिए छेदोपस्थापनीय चरित्र का निरूपण किया गया है। बाईस तीर्थंकरों के साधु ऋज प्राज्ञ (अर्थात् ऊपर से तीक्ष्ण बुद्धि वाले और हृदय से सरल) होते हैं। इसलिए उनके लिए सामायिक चरित्र का निरूपण किया गया है ।

लिगान्तर—कांक्षामोहनीय के वेदन का चौथा कारण लिगान्तर है । लिंग अर्थात् वेश के विषय में यह शंका होती है कि प्रथम और अन्तिम तीर्थंकर के साधु ही केवल सफेद वस्त्र क्यों रखते हैं जबकि बीच के बाईस तर्थकारों ने अपने साधुओं के लिए जैसा वस्त्र मिले, वैसा ही वस्त्र रखने की आज्ञा दी हुई है। इनके शासन में रंग और परिमाण का कोई नियम नहीं है । सर्वज्ञों के वचनों में परस्पर विरोध नहीं होता। फिर यह दो तरह की आज्ञा क्यों है ?

इस शंका का समाधान गह है कि प्रथम तीर्थंकर के साधु ऋजुजड़ और

कारण है तो फिर जिनकल्प का उपदेश क्यों दिया गया है ? इसका समाधान यह है कि दोनों कल्प सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्रतिपादित हैं। अवस्था भेद से दोनों कर्मक्षय के कारण हैं। कष्ट और अकष्ट विशिष्ट कर्मक्षय के लिए कोई कारण नहीं हैं।

मार्गान्तर—मार्ग का अर्थ है—परम्परा से चली आती हुई समाचारी पद्धति। कोई आचार्य हीननमोत्थुणं देते हैं। किसी की समाचारी दो लोगस्स का कायोत्सर्ग करने की है और किसी की इस से भिन्न है। इस में ठीक क्या है ? इस का समाधान यह है कि जो समाचारी आचरित लक्षण युक्त हो, वही ठीक है। सरल स्वभाव वाले निष्कपट पुरुष ने जिसका आचरण किया हो, शास्त्र में किसी जगह पर जिसका निषेध न किया गया हो, जो निष्पाप हो तथा बहुजन द्वारा अनुमत हो उसे आचरित कहते हैं।

मतान्तर—एक ही विषय में आचार्यों का भिन्न २ मत होना मतान्तर कहलाता है। सिद्धसेन आचार्य दिवाकर केवल ज्ञान और केवल दर्शन का होना एक साथ मानते हैं और आचार्य जिनभद्र गणि क्षमाश्रमण केवल ज्ञान और केवल दर्शन का उपयोग अलग २ मानते हैं। शंका होती है कि इन दोनों मतों में कौन सा मत-(विचार) सत्य है। पन्नावणा सूत्र में कहा गया है कि केवली भगवन् जिस समय देखते हैं उस समय जानते नहीं है और जिस समय जानते हैं उस समय देखते नहीं है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केवल ज्ञान और केवल दर्शन का एक साथ उपयोग होना शास्त्र सम्मत नहीं है। शास्त्र में दोनों का उपयोग अलग २ समय में बताया गया है अतएव जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण की बात शास्त्रानुकूल है। कौन सी बात शास्त्र सम्मत है और कौन सी बात आगम सम्मत नहीं है इस बात का निर्णय तो बहुश्रुत पुरुष ही कर सकते हैं परन्तु जो बहुश्रुत न हो, वह इस बात का निर्णय नहीं कर सकता, तब क्या करना चाहिए ? विवादग्रस्त बात के लिए इस प्रकार विचार करना चाहिए कि—आचार्यो का यह मत सम्प्रदायादि के दोष से है। परन्तु जिनेन्द्र भगवान् का मत तो एक है और वह परस्पर अविरुद्ध है क्योंकि वे रागादि रहित हैं।

भंगान्तर—द्रव्यादि संयोग से होने वाले भंगों को देखकर इस प्रकार शंका हो जाती है। हिंसा के सम्बन्ध में चार भंग कहे गए हैं। यथा—

द्रव्य से हिंसा भाव से नहीं।
द्रव्य से हिंसा नहीं, भाव से हिंसा
द्रव्य से भी हिंसा नहीं, भाव से भी हिंसा नहीं।
द्रव्य से भी हिंसा, भाव से भी हिंसा।

इन में से पहले भंग के लिए यह शंका उत्पन्न होती है कि उस में हिंसा लक्षण नहीं करता। हिंसा की शास्त्रकारों ने व्याख्या की है कि जो पुरुष प्रमादी है, अंहकार, विषय, कषाय, आदि प्रमादों के वशवर्ती है। उसके योग द्वारा प्राणी की जो हिंसा होती है, उसे हिंसा समझना चाहिए। अतः हिंसा का लक्षण पहले भंग में घटित नहीं होता। इसका समाधान यह है कि हिंसा का यह लक्षण द्रव्य हिंसा का नहीं है लेकिन द्रव्य और भाव दोनों हिंसा का है। केवल द्रव्य हिंसा का लक्षण तो—जीव का मरना मारना है। यह लक्षण प्रथम भंग में घटित हो जाता है। अतः हिंसा के लक्षण में सन्देह करने का कोई कारण नहीं है।

दूसरा भंग है—द्रव्य से हिंसा नहीं परन्तु भाव से हिंसा। जैसे तन्दुलमच्छ। यह मच्छ मछलियों को खा जाने का विचार तो करता है, परन्तु मारता नहीं है। इस में द्रव्य हिंसा तो नहीं हुई किन्तु भाव हिंसा अवश्य है। हिंसा का तीसरा और चौथा भंग स्पष्ट ही है।

नयान्तर—नैगम, संग्रह आदि सात नय हैं। इन के संक्षेप में दो भेद हैं। द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक। द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा से जो वस्तु नित्य है वही वस्तु पर्यायार्थिक नय की अपेक्षा अनित्य है। यहाँ यह शंका हो सकती है कि एक ही वस्तु में नित्यता और अनित्यता दो विरोधी धर्म कैसे रह सकते हैं?

इस शंका का समाधान यह है कि एक ही वस्तु में नित्यता और अनित्यता ये दोनों भिन्न २ अपेक्षाओं से घटित होती है। अर्थात् द्रव्य की अपेक्षा से

वस्तु नित्य है और पर्याय की अपेक्षा से वस्तु अनित्य है। एक ही समय में एक ही वस्तु में भिन्न २ अपेक्षाओं से विरुद्ध धर्मों का समावेश होता है। यह बात लोक में प्रसिद्ध है कि एक ही आदमी अपने पिता की अपेक्षा पुत्र कहलाता है और अपने पुत्र की अपेक्षा वह पिता कहलाता है। इसलिए अपेक्षा भेद से वस्तु में विरुद्ध धर्म रह सकते हैं। इस में शंका की कोई बात नहीं है।

नियमान्तर—नियम का अर्थ है अभिग्रह। इस में शंका होती है कि जब साधुपन अंगीकार कर लेने पर सब प्रकार के सावद्य योग का प्रत्याख्यान किया जाता है फिर पोरिसी, दो पोरिसी आदि का पच्चक्खाण क्यों किया जाता है? सर्वविरति सामायिक करने में सब गुण आ जाते हैं फिर शास्त्र में पोरिसी आदि का त्याग क्यों बतलाया गया है?

इस शंका का समाधान यह है कि सर्व विरति सामायिक होने पर भी पोरिसी आदि का पच्चक्खाण करना ठीक ही है, क्योंकि सर्वविरति सामायिक कर लेने पर भी प्रमाद का नाश करने वाले और अप्रमाद गुण की वृद्धि करने वाले पोरिसी आदि पच्चाक्खाण करना ही श्रेयस्कर है। सामायिक में अवगुण ग्रहण करने का त्याग किया है, गुण ग्रहण करने का नहीं। अतः गुण ग्रहण करने के जितने भी नियम धारण किए जाएँ, अच्छा ही है।

प्रमाणान्तर—शास्त्र में प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम और उपमान ये चार प्रमाण माने गए हैं। शंका होती है कि प्रत्यक्ष भी प्रमाण है और आगम भी। इन दोनों में विरोध प्रतीत होता है। आगम में कहा गया है कि सूर्य सुमेरु पर्वत की समतल भूमि से आठ सौ योजन ऊपर घूमता है परन्तु प्रत्यक्ष में सूर्य पृथ्वी से निकलता हुआ दिखाई देता है। इन दोनो में कौन सा प्रमाण सच्चा है।

इस का समाधान यह है कि जिस तरह से हम सूर्य को पृथ्वी से निकलता हुआ देखते हैं, यह प्रत्यक्ष सत्य नहीं है, भ्रांति है क्योंकि दूर की वस्तु बहुत छोटी दिखाई देती है और उसके विषय में भ्रांति भी हो सकती है। सूर्य हमारे

क्षय करे, एक को वेदे, यह भी पतित नहीं हो सकता है। ऐसे भांगे वाले को एक ही समय बाद क्षायिक सम्यकत्व हो जाती है। सात प्रकृतियों का क्षय करने वाला पतित नहीं हो सकता। सात प्रकृतियों को उपशम करने वाला पतित होत है। पहला भांगा, चौथा भांगा, छटा भांगा और नौवाँ भांगा वाले पतित होते हैं शेष नहीं।

श्री बहूसूत्री जी महाराज की मान्यता है कि सात भांगों में से एक भांगे वाला पतित होता है। वह है छह प्रकृतियों का उपशम करने वाला और एक को वेदने वाला। इस भांगे के उन्हों ने दो नाम बताए हैं। वेदक समकित और क्षयोपशम समकित। वेदक समकित की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त्त की और उत्कृष्ट स्थिति ६६ सागर से अधिक की मानी है। विचारणीय विषय यह है कि उदय में आई हुई प्रकृतियों का उपशम नहीं होता। जो प्रकृतियाँ सत्ता में रहती हैं, उनका ही उपशम हो सकता है। सत्ता में स्थित छह प्रकृतियों का ७७ सागर तक उदय में न आना कहाँ तक सम्भव है। अधिक से अधिक किसी भी प्राकृति का भी अवाधा काल सात हजार वर्ष से अधिक नहीं। समकित मोहनीय प्रकृति के ६६ सागर तक बने रहने से फिर समकिल में स्थिरता कैसे आ सकी है। ऐसा होने से संशय दोष भी आ सकता है क्योंकि समकित मोहनीय में मिथ्यात्व की प्रकृति का चौथा भाग विद्यमान है। अतः ऐसी समकित में जीव को आनन्द कैसे आ सकता है ? जिस में मिथ्यात्व का उदय निरन्तर बना रहता है। उल्लेखनीय बातें तो अन्य और भी हैं किन्तु विस्तार भय से इस विषय को यहीं तक सीमित रखा गया है।

भटिण्डा को पधारते समय महाराजश्री मार्ग में जिस जमींदार के यहाँ ठहरे थे, जाते हुए भी वे उसी मकान में ठहरे। महाराजश्री के दर्शन कर के जमींदार का समस्त परिवार कृतकृत्य हुआ। उन्होंने महाराजश्री से कहा, "गुरु देव ! आप ने हमें मांस त्याग तथा मुर्गे मुर्गियों का व्यापार न करने का नियम कराया था, उसका पालन हमने मन, वचन और कर्म से किया है

अगले दिन सूर्योदय होने के उपरान्त महाराज श्री ने मोड़मण्डी को

पन्द्रह भाई भी महाराज श्री के साथ पैदल चल कर आए थे। वड़ाढ़ा मण्डी के भाइयों ने खूब धूमधाम से महाराज श्री का स्वागत किया। धूमधाम से स्वागत का अभिप्राय वाजों से स्वागत करने का नहीं है। अर्थात् वहाँ के लोगों में महाराज श्री के प्रति अटूट श्रद्धा थी। श्रद्धा के सुमन चरणों में अर्पित करने के लिए वे अपने गाँव से कई मील चलकर महाराजश्री के स्वागतार्थ आए थे। कई मील चलने के वाद महाराजश्री वड़ाढामण्डी में पधारे। स्थानक में पहुँचने के वाद कुछ धर्मोपदेश महाराज श्री ने दिया। फूलों की मधुर वर्षा की। सुगन्धि से उपस्थित जनता के मन प्रफुल्लित हो उठे। मंगल पाठ के वाद न चाहते हुए भी जन समुदाय ने अपने २ घरों की राह ली क्योंकि महाराज श्री को भी विश्राम करना था और अपनी दैनिक क्रियाओं से निवृत होना था।

अगले दिन से चल पड़ा महाराजश्री के सार्वजनिक भाषणों का क्रम। एक दीर्घकाय मण्डप में आप अमृत वर्षा किया करते थे, जिसका रसास्वादन करने के लिए हजारों की संख्या में धर्म प्रेमी लोग आया करते थे। शनैः शनैः आप की ख्याति इस गाँव के कोनें २ में फैल गई।

नदी का जल जव तक वहता रहता है तव तक वह निर्मल-पवित्र रहता है और रुक जाने पर वह जल मटमैला हो जाता है, इसीलिए साधु को विना किसी कारण एक स्थान पर कल्पवास से अधिक रहना भगवान ने वर्जित किया है। अतः आप जीवन पर्यन्त एक स्थान से दूसरे स्थान को विचरण करते रहे।

यहाँ से चलकर आप वरेटा मण्डी पधारे। रात्रि व्यतीत कर सूर्योदय होने पर आप ने जाखल मण्डी की ओर प्रस्थान कर दिया। दूसरे दिन आप का जाखल मण्डी में सार्वजनिक प्रवचन हुआ। मोणक ग्राम और जाखल मण्डी के हजार के लगभग धर्मप्रेमी आप की मधुर वाणी को सुनने के लिए आए थे। मोणक ग्राम के भाइयों ने मोणक ग्राम को पवित्र करने की महाराजश्री से प्रार्थना की। भाइयों के आग्रह को आप टाल न सके। आपने उनकी विनती स्वीकार कर मोणक ग्राम की ओर दूसरे दिन विहार कर दिया। इस गाँव में भी जैन स्थानक है अतः महाराजश्री स्थानक में ही ठहरे। स्थानक में स्थान

नाम है शम्भू । दोपहर का आहार महाराजश्री ने शिष्यमण्डली सहित इसी गाँव में किया । शाम को महाराजश्री अम्वाला के स्थानक में आ विराजे । स्थानक में पधार जाने के वाद अम्बाला के भाइयों को महाराजश्री के आगमन की सूचना मिली । फिर क्या था ? भाइयों के आने जाने का तांता लग गया । यहाँ के भाई महाराजश्री का भव्य स्वागत करने की योजना वना रहे थे परन्तु सूचना न मिलने के कारण उनकी भावना को साकार रूप न मिल सका था अतः उनके मन कुमुदिनी की तरह कुम्हला गए थे । विरादरी के मुखिया ने सूचना न मिलने की वात महाराजश्री से कही । मुखिया की वात सुनकर महाराजश्री वोले, "जो तुम करना चाहते थे, वह यहाँ कर लेना ।" इन वचनों से नेता को कुछ सांत्वना मिली । महाराजश्री के सार्वजनिक प्रवचन कराने के लिए प्रवन्ध व योजनाएँ वनाई गई । नवीन स्थानक वन रहा था । हाल पर छत पड़नी वाकी थी । उस पर शामियाना लगवाया गया । इस शामियाने के नीचे तीन चार हजार के लगभग श्रोता लोग आसानी से वैठ सकते थे । अम्वाले के स्थानक का यह हाल कमरा वहुत वड़ा है । यह लगभग सौ फुट लम्वा है और चालीस फुट चौड़ा है । इसके दो ओर ग्यारह-ग्यारह फुट की गैलरी है । उसकी चौड़ाई इस प्रकार वासठ फुट के लगभग हो जाती है । इसके तीन तरफ खुला मैदान है जोकि स्थानक के क्षेत्र के अन्तर्गत है । अगले दिन से इस विशाल मैदान में महाराजश्री के प्रवचन होने लगे । एक दिन कुछ भाई महाराजश्री के चरणों में आ वैठे । उन में लाला रामलाल फकीरचन्द्र और लाला अमरनाथ जी के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं । इन भाइयों ने स्थानक निर्माण के लिए चन्दा संग्रह करवाने की प्रार्थना आपश्री से की । महाराज श्री वोले, हमारा काम केवल दया दानका उपदेश देना है उससे लाभ उठाना आप लोगों का कार्य है । इस आश्वासन पर रविवार के दिन जैन समाज अम्वाला के मन्त्री की ओर से महाराजश्री के प्रवचन से पूर्व दान की अपील की गई । तदनन्तर महाराजश्री का दान के महत्त्व पर एक सारगर्भित प्रवचन हुआ । पंजाव केसरी की वाणी का सवके हृदयों पर गहरा प्रभाव पड़ा । विरादरी के प्रधान लाला अमरनाथ जी ने पांच हजार

बादग्राम में मनाया। अम्बाले से भी काफी संख्या में लोग पधारे थे, अम्बाला निवासी श्री गोरेलाल जी ने महाराजश्री का जनता को परिचय दिया। अम्बाला के कई भाइयों ने महावीर प्रभु के गीत गाए और उनके उपदेशों पर प्रकाश डाला। तदनन्तर महाराजश्री का सारगर्भित भाषण हुआ। महाराज श्री की वाणी का वहाँ के भाइयों पर अच्छा प्रभाव पड़ा। उनके आग्रह पर महाराजश्री ने रात्रि में भी उपदेश दिया। सैकड़ों लोगों ने लाभ उठाया। प्रातः सूर्योदय के उपरान्त महाराजश्री पुनः गुरुकुल आ गए।

यहाँ से प्रस्थान करके महाराजश्री सूरजपुर पधारे। सूरजपुर में सीमेन्ट की एक बहुत बड़ी फैक्टरी है। महाराजश्री तथा शिष्यमण्डली की इच्छा इस कारखाने को देखने की थी अतः सभी ने इस फैक्टरी को देखा। रात्रि में यहाँ महाराजश्री का मधुर प्रवचन हुआ।

यहाँ से चलकर महाराज श्री कालका पधारे। कालका से पहाड़ी चढ़ाई शुरू होती है। शिमला को जो छोटी लाइन जाती है, यह उसका प्रथम स्टेशन है। कालका के भाइयों ने कई मील आगे पहुँच कर महाराजश्री का स्वागत किया। स्थानक में पहुँचने के उपरान्त ईर्यापथिक आलोचना करके आप ने उपदेश दिया। मंगल पाठ के बाद उस दिन का कार्यक्रम समाप्त हुआ। कालका में आप का एक सार्वजनिक व्याख्यान वहाँ की एक धर्मशाला में हुआ था।

महाराजश्री की भावना शिमला जाने की थी। इससे पूर्व भी कई बार आपका विचार शिमला जाने का बना था। जैन विधि विधान के अनुसार शौचादि क्रियाओं की व्यवस्था समुचित न बैठने के कारण तथा रहने की व्यवस्था ठीक न होने के कारण आप अपनी भावना को साकार रूप न दे सके। उस समय कई स्थानक वासी भाई शिमला में निवास कर रहे थे। रहने की व्यवस्था विधि विधान के अनुरूप बैठ सकती थी इसलिए आप की इच्छा शिमला जाने की थी। परन्तु विधाता को कुछ और ही मंजूर था। तीव्र ज्वर ने आपको आ घेरा। तीव्र ज्वर के प्रकोप से आप तीन दिन तक ग्रसित रहे।

तभी शिमला से सूचना आई कि वहां पर प्रचण्ड गर्मी पड़ रही है। अस्वस्थता के कारण आप को शिमला जाने का विचार बदलना पड़ा।

अब आपके कदम नालागढ़ की ओर उठ पड़े। एक रात्रि मार्ग में लगा कर आप नालागढ़ पहुँच गए। नालागढ़ की जनता ने आपका हार्दिक स्वागत किया। चार पाच व्याख्यान आपके स्थानक में हुए। उसके बाद आप के सार्वजनिक व्याख्यान बाहर की धर्मशाला में हुए। आप नालागढ़ में पच्चीस दिन तक ठहरे। खूब धर्म प्रभावना हुई।

यहां से विहार करके आप साटिया गांव में पहुँचे। जैन दीक्षा लेने से पूर्व इस गांव में आपका मामा रहा करता था। जैन परिभाषा से अब वह आपका संसारी मामा था। यहां पर आप के दो प्रवचन हुए। "यहां से चलकर आप दघोटा गांव में पहुँचे। यह आपका संसारी गांव था। सैकड़ों की संख्या में लोग आप के प्रवचन को श्रवण करने आया करते थे। एक दिन वहां के सरपंच ने कुछ कहने के लिए महाराजश्री से आज्ञा मांगी। अनुमति प्राप्त हो जाने के बाद वह बोला, "गुरुदेव ? कुछ समय से जैन साधुओं का इस गाँव में आवागमन हो रहा है। नांगल भाखड़ा जाते हुए साधु महाराज इस गाँव को हो अपने चरणों की धूलि से पवित्र करके जाते हैं। यहाँ पर यदि एक मकान साधुओं के ठहरने के लिए बन जाए तो बहुत ही अच्छा रहेगा।"

सरपंच की बात सुनकर महाराज श्री बोले, "चौधरी साहिब मकान और जमीन का त्याग करके मैं फकीर बना हूं। अब मैं नवीन मकान बनवाऊँ यह हम साधुओं की वृत्ति नहीं है। जितनी बार मैं यहां आया हूँ, मुझे मकान निवास के लिए मिला है। फिर भी जब कभी आऊँगा तो ठहरने के लिए मकान अवश्य मिलेगा, ऐसा मेरा विश्वास है।" महाराज श्री का यह उत्तर सुन कर मुखिया जी मौन हो गए।

यहाँ से चलकर महाराजश्री भरतगढ़ पहुँचे। यहाँ पर भी आपके एक दो सार्वजनिक प्रवचन हुए। यहाँ से चलकर एक रात रास्ते में लगाकर आप

रोपड़ पधारे । रोपड़ पधारने पर आप का भव्य स्वागत किया गया जिसका वर्णन करने में लेखनी और वाणी दोनों असमर्थ हैं ।

दूसरे दिन से महाराजश्री का व्याख्यान गांधी चौक में प्रारम्भ हो गया । हजारों की संख्या में जनता की उपस्थिति होती थी । सार्वजनिक प्रवचन का यह कार्यक्रम धारावाहिक रूप से पन्द्रह दिन तक चला ।

एक दिन महाराजश्री जी भ्रमणार्थ सतलुज पुल की तरफ निकल गए । दैव योग से आप का पैर पटरी से नीचे उतर गया । झटका लगने के कारण आप की कमर का माँस कट गया । जैसे तैसे आप चलकर निवास स्थान पर आए । शरीर में पीड़ा असह्य थी, इस कारण प्रवचनार्थ गाँधी चौक में न पहुँच सके । गाँधी चौक के विशाल पण्डाल में जनता आपके अमृत वचनों का रसास्वादन करने के लिए बैठी हुई थी । जब जनता को आपकी बीमारी की सूचना मिली और आपके अमृत वचनों से वंचित होना पड़ा तो उनके हृदय कमल कमलवत् कुम्हला गए ।

महाराश्री का उपचार चलता रहा परन्तु कोई लाभ नहीं हुआ । तदनन्तर एक योग्य डाक्टर को बुलाकर दिखाया गया । डाक्टर ने परामर्श दिया कि महाराजश्री तख्तपोश पर सीधे लेटे रहें और भोजन व पानी ग्रहण भी लेटे लेटे करें। शौचादि क्रियाएँ भी उठ कर करने की अनुमति डाक्टर ने नहीं दी । डाक्टर के आदेशानुसार महाराजश्री को पूर्णतया विश्राम करना पड़ा । कुछ भाइयों का विचार था कि अत्यधिक लेटे रहने से शरीर पर घाव हो जाते हैं और हड्डी गल जाने की भी आशंका बनी रहती है अतः महाराजश्री को थोड़ा-थोड़ा उठते बैठते रहना चाहिए । भाइयों के परामर्श पर महाराजश्री जी जीवन की आवश्यक क्रियाएँ उठ बैठ कर करने लगे ।

उपचार चलता रहा परन्तु महाराजश्री का दर्द कम न हुआ । तब होशियारपुर से एक जरहा को बुलाया गया । देखने के बाद जो चिकित्सा उसने बताई वह महाराजश्री की वृत्ति के अनुकूल नहीं थी । महाराजश्री नश्वर शरीर के लिए अपने धार्मिक नियमों को दोष नहीं लगाना चाहते थे

इसलिए वे उसका उपचार करने के लिए तैयार नहीं हुए।

तदनन्तर वहाँ के भाइयों ने चण्डीगढ़ से डाक्टर जगदीश चन्द्रजी को बुलाया। महाराजश्री को देखने के बाद डाक्टर साहिब ने मरहम मालिश करने के लिए बताई। मरहम की मालिश से एक रुपए में चार आने का लाभ महाराज श्री के स्वास्थ्य में हुआ। इसके बाद कई प्रकार के पलस्तर लगाए गए।

चातुर्मास के दिन समीप आ रहे थे और सुखे समाधे आपका यह चातुर्मास अम्बाला होना था अत: अम्बाला की बिरादरी महाराज श्री की सेवा में रोपड़ में उपस्थित हुई। सुख साता के उपरान्त अम्बाला के भाइयों ने महाराजश्री के चरणों में निवेदन किया, "भगवान्! आप का स्वास्थ्य ठीक नहीं है। चलने फिरने से आप को अधिक कष्ट होता है। अत: अम्बाला के चातुर्मास के विषय में आपका क्या विचार है?"

"मेरे शरीर ने यदि साथ दिया तो मैं अम्बाला पहुँचने का भाव रखता हूँ। महाराज श्री ने उत्तर दिया।

महाराज श्री से जब यह वार्तालाप चल रहा था तो रोपड़ के भाई भी बैठे हुए थे। वे नहीं चाहते थे कि महाराजश्री जी तकलीफ की स्थिति में रोपड़ से विहार करें। महाराजश्री के प्रति उनके मन में अगाध श्रद्धा थी। वे बोले, "जब तक महाराज श्री जी की स्थिति विहार के लिए उपयुक्त नहीं हो जाती, हम महाराज श्री को विहार नहीं करने देंगे। यदि आपके आग्रह पर महाराजश्री ने विहार कर दिया और मार्ग में किसी कारण से इनकी व्यथा बढ़ गई या कुछ कारण हो गया तो उसके दोषी आप लोग होंगे।" यह सुनकर अम्बाला के भाई महाराजश्री के मुख की ओर निहारने लगे। उनको सान्त्वना देते हुए महाराजश्री ने कहा, "घबराने की कोई बात नहीं है। मेरे भाव अम्बाला चातुर्मास करने के ही हैं। आगे फरसना की बात है।" महाराज श्री के इन वचनों से उनके मन को अपार शान्ति मिली। प्रसन्न हो वे लोग अम्बाला लौट आए।

आपकी अम्वाला चातुर्मास की प्रवल भावना को देखकर आपका शिष्य समुदाय उसे पूर्ण करने की योजना सोचने लगा। श्रावकों के साथ वार्तालाप करने के वाद यह निश्चित हुआ कि महाराज श्री को ले जाने के लिए लकड़ी की डोली वनवाई जाए। डोली वन कर तैयार हो गई और चार पाँच सन्त जो रास्ते में थे, वे भी महाराज श्री के चरणों में आ विराजे।

विहार का दिन आ ही गया। रोपड़ के श्रावक वर्ग से विदा पाकर महाराजश्री धीरे २ कदमों से चल रहे थे। चार पाँच मील की दूरी पर एक गाँव था। अपार साहस और अपार दृढ़ता थी महाराजश्री के मन में। पाँच मील का सफर करके महाराज श्री इस गाँव में आ गए। रात्रि को यहीं सव ने विश्राम किया। अगले दिन सुर्योदय होने पर महाराज श्री अपनी शिष्य मण्डली सहित चल पड़े। थोड़ी दूर चलने के वाद महाराजश्री को कमर में पीड़ा अनुभव होने लगी। महाराज श्री को डोली में विठाकर शिष्य समुदाय चलने लगा। कठिनता से शिष्य समुदाय उन्हें दो मील तक ही उठा कर ले जा सका। प्रचण्ड गर्मी, और डोली के अत्यधिक भार के कारण शिष्य वर्ग का उत्साह निराशा में परिवर्तित होता जा रहा था। परन्तु गुरुश्रद्धा के कारण वे इससे भी अधिक कष्ट सहन करने को तैयार थे। कुछ विश्राम के उपरान्त शिष्यों ने डोली को अपने कन्धों पर फिर उठाया और चलने लगे। उनके धीरे धीरे उठने वाले कदमों ने उनके मन के भावों को महाराजश्री तक पहुँचा दिया। "डोली नीचे रख दो" का आदेश महाराजश्री ने दिया। डोली नीचे रख दी गई और महाराजश्री जी डोली से वाहर निकल कर चलने लगे। शिष्यों ने महाराज श्री को वहुत समझाया परन्तु महाराजश्री के अत्यधिक आग्रह ने उन्हें मौन रहने पर विवश कर दिया।

यहाँ से चलकर महाराज श्री कुराली कस्वे में पहुँचे। कुराली में महाराज श्री शिष्य समुदाय सहित वहाँ के हाई स्कूल के एक भवन में ठहरे। कुराली से विहार कर महाराजश्री खरड़ पधारे। खरड़ में स्थानक वासी जैन भाई काफी संख्या में रहते हैं। यहाँ के भाइयों ने महाराजश्री का हार्दिक स्वागत किया। विचरते हुए दो सन्त और महाराजश्री की के चरणों में आ विराजे।

रहे थे, शान्त भाव से। उनके ललाट पर किंचित् मात्र भी रेखाएँ न उभरीं। इस प्रकार सौम्य भावना से आपने ग्यारह मील की यात्रा की। महाराज श्री का अब पैदल ही अम्बाला पहुँचने का दृढ़ संकल्प बन चुका था अतः डोली अम्बाला के भाइयों के हाथ भिजवा दी गई। इस पद यात्रा से शरीर में रक्त का बहुत अधिक मात्रा में हुआ जिससे महाराज श्री को पीड़ा का अनुभव पहले से बहुत कम मात्रा में हुआ।

यहाँ से विहार करके महाराज श्री डेराबसी पहुँचे। यहाँ पर जैनियों की संख्या अच्छी है। यहाँ के भाइयों की प्रेरणा से जैन गर्ल्स हाईस्कूल नाम की संस्था उत्तम रूप में चल रही है। तीन चार दिन तक यहाँ ठहर कर आप ने विश्राम किया। तदनन्तर लालडू होकर आपने अम्बाला शहर की ओर प्रस्थान किया।

अम्बाला शहर अब दो मील दूर रह गया था। अतः विश्रामार्थ आप वहीं ठहर गए। श्री सहज मुनिजी आप के दर्शनार्थ अम्बाला शहर से चलकर आए। एक रात्रि आपने अम्बाला शहर के बाहर ही व्यतीत की।

अगला दिवस आया। सूर्य की लालिमा चतुर्दिक फैल गई थी तब महाराज श्री ने अपने शिष्य समुदाय सहित अम्बाला शहर की ओर प्रस्थान किया। अपार जन समूह महाराजश्री के पीछे २ चला जा रहा था उनके गुणानुवाद गाता हुआ, भगवान महावीर के नारों से दिगदिगंत को गुंजायमान करता हुआ। जिस व्यक्ति का साक्षात्कार होता था इस दिव्यात्मा से वह नतमस्तक हो झुक जाता था आपके चरण कमलों पर। अद्भुत दृश्य था महाराजश्री के भव्य स्वागत का जिसका वर्णन करने में लेखनी और वाणी दोनों असमर्थ हैं।

राजमार्ग के दोनों ओर नर-नारी खड़े थे दर्शनों को।

अम्बाला शहर के राजमार्गों से गुजरते हुए महाराज श्री जी पूज्य श्री काशीराम जैन कन्या पाठशाला के भवन में प्रविष्ट हुए। समाज की ओर से

यहीं आपके ठहरने की व्यवस्था की गई थी क्योंकि नवनिर्मित जैन स्थानक का उद्घाटन समारोह अभी नहीं हुआ था ।

एक दिन छत पर टहलने के बाद महाराजश्री जब बैठे तो उनकी दृष्टि पैर के तलुवों पर जा पड़ी । वे रक्त रंजित थे । महाराजश्री चिन्ता में डूब गए और सोचने लगे कि पैर खून जैसे रंग से कैसे रंगे गए हैं । तभी उनकी दृष्टि मुंडेर पर सूखने के लिए लटकाई गई झोली पर पड़ी । वह कुंथुओं के जीवों से भरी पड़ी थी । पाटों को तथा अन्य सामान को उठा कर देखा गया । सर्वत्र कुंथुए थे । पैर के तलुए रक्त रंजित हो जाने का रहस्य अब वे समझ गए थे । अनजाने में न जाने कितने जीवों की विराधना मुझसे हुई होगी । मन पश्चाताप की भट्ठी में जल उठा । तुरन्त ही आपने भाइयों को बुलाया और उन्हें अन्यत्र ठहराने की व्यवस्था करने का आदेश दिया । आपको फिर एक कोठी में ठहराने की व्यवस्था की गई ।

अम्बाला चातुर्मास

विक्रम संवत् २०१८ वीर संवत् २४८७ सन् १९६१

इस प्रकार महाराजश्री का वि. संवत् २०१८ वीर संवत् २४८७ सन् १९६१ का चातुर्मास अम्बाला शहर में प्रारम्भ हुआ। वास्तव में यह वर्षाकाल भक्त जनों के लिए अत्यन्त ही उपयोगी है क्योंकि इन दिनों में भगवत् प्रेमियों को सन्तों की वाणी सुनने का सौभाग्य प्राप्त होता है। उनके मन कमल सन्तों की अमृतमयी वाणी का स्पर्श पाकर लहलहा उठते हैं। अतः अम्बाला के शहर के धर्म प्रेमी बन्धु अपने आपको सौभाग्यशाली समझकर अपने भाग्य की सराहना करते हुए अघाते न थे।

चातुर्मास के लिए अम्बाला पधारने पर महाराजश्री की सेवा में श्री वर्धमान स्थानक वासी जैन श्रावक संघ की तरफ से निम्न श्रद्धा पुष्प अर्पित आभार पत्र रूप में प्रदर्शित किए गए :—

जैन स्थानक उद्घाटन समारोह

महाराजश्री किसी भाई की कोठी में ही अभी तक विराजमान थे क्योंकि जैन स्थानक का उद्घाटन होना था। समाज की ओर से उद्घाटन समारोह की अभूतपूर्व तैयारी की गई थी। पंजाब केसरी श्री प्रेमचन्द जी महाराज से तथा तपस्वी श्री फकीरचन्द जी महाराज के चरण कमलों में समाज की ओर से आग्रह पूर्ण विनती थी अतः महाराज श्री ने इस उत्सव में पधारना स्वीकार कर लिया था।

उद्घाटन समारोह का शुभ दिवस आ पहुँचा। अध्यक्ष थे दिल्ली निवासी दानवीर सेठ लाला इन्द्रसैन जी जैन। अध्यक्ष महोदय का प्रातः की वेला में

जुलूस निकालने का आयोजन था। प्रतीक्षा की घड़ियाँ लम्बी होती गईं परन्तु लाला इन्द्रसैनजी न पहुँच सके। विवश होकर वहाँ के नेताओं ने नांगी निवासी लाला जसवन्त सिंह जी को प्रधान बना कर उनका जुलूस निकाला। अम्बाला शहर के प्रमुख राजमार्गों से गुजर कर जुलूस जैन स्थानक भवन पर पहुँचा।

जुलूस ने अब एक जलसे का रूप धारण कर लिया। दानवीर सेठ लाला इन्द्रसैन जी पधार गए थे अतः आपकी अध्यक्षता में जलसे की कार्यवाही प्रारम्भ कर दी गई। मुनि-महाराज गण के लिए बनाया गया मंच अभी तक खाली पड़ा था। दान की बोलियां बोली जा रही थीं। तभी हमारे चरित्र नायक पंजाब केसरी, व्याख्यान वाचस्पति, उपाध्याय श्री प्रेमचन्द जी महाराज व तपस्वी श्री फकीर चन्द जी महाराज अपनी शिष्य मण्डली सहित उस मंच पर आ विराजे। सभी भक्त जन महाराज श्री के प्रति अपनी आस्था प्रकट करने के लिए खड़े हो गए। कुछ क्षणों के लिए कार्यक्रम भी रुक गया। महाराज श्री के बैठने के बाद सभी जन समुदाय बैठ गया। दान की बोलियाँ बोली जा रही थी। इक्कावन सौ रुपये की बोली दानवीर लाला इन्द्रसैन जी की बोली गई। तदनन्तर लाला जसवन्त सिंह जी की ओर से इकत्तीस सौ रुपए दान देने की बोली-बोली गई। तत्पश्चात दान का क्रम प्रारम्भ हो गया। प्रत्येक व्यक्ति यथाशक्ति इस धर्म यज्ञ में अपने धन की आहुति दे रहा था। द्रव्य क्षेत्र, काल और भाव को देखकर महाराजश्री ने दान की महत्ता पर प्रभावशाली व सार गर्भित धर्मोपदेश दिया। केवल महाराज श्री जी की ध्वनि के अतिरिक्त सभा मण्डल में चतुर्दिक नीरवता थी। न तो बच्चों का कोलाहल था और न ही स्त्रियों की तू-तू मैं-मैं। दत्तचित होकर सभी श्रवण कर रहे थे महाराजश्री का अमृत वाणी को। आपकी प्रेरणा से यथेष्ट मात्रा में यहाँ की समाज को दान प्राप्त हुआ। महाराजश्री के व्याख्यान के उपरान्त उद्घाटन समारोह का कार्यक्रम समाप्त हुआ।

दूसरे दिन महाराजश्री जी अपनी शिष्य मण्डली सहित इस स्थानक में पधार गए और धर्म का ठाट लग गया। महाराजश्री के प्रवचनों को सुनने के

लिए जैन तथा जैनेतर लोग आने लगे। इन दिनों अम्बाला में पश्चिमी पंजाब से बहुत से लोग आए हुए थे। आप की तेजस्विता बुद्धिमत्ता तथा व्याख्यान कला की धाक उनके मनों पर थी, अतः वे लोग भी अत्यधिक संख्या में पधार कर आपके प्रवचनों से लाभ उठाने लगे। जनता की उपस्थिति हजारों की संख्या में आप के प्रवचनों में होने लगी।

दिन में आप श्री सहज मुनिजी को तथा साध्वी कैलाश वती जी की शिष्याओं को भगवती सूत्र पढ़ाया करते थे। कुछ भाई भी इस सूत्र को सुना करते थे।

पर्यूषण पर्वाधिराज आया। इस पर्व को तपस्या धर्म ध्यान आदि क्रियाओं के द्वारा आनन्द पूर्वक नर-नारी, बाल.वृद्ध ने उल्लास के साथ मनाया। इन दिनों में महाराजश्री जी ने अनन्तगढ़ सूत्र का वाचन किया।

एक दिन महाराजश्री ने फरमाया कि आहार एक ऐसी वस्तु है, जिसके बिना मानव जीवित नहीं रह सकता, अतः बड़ी से बड़ी तपस्या के बाद भी आहार लेना ही पड़ता है। आहार तीन प्रकार का होता है:—

(क) ओज आहार (ख) कवल आहार (ग) रोम आहार।

जीव जहाँ २ उत्पन्न होता है, वह सर्वप्रथम जिस आहार को ग्रहण करता है उसे ओज आहार कहते हैं। मनुष्य तपस्या में कवल आहार का ही त्याग कर सकता है। रोम आहार तो निरन्तर चलता ही रहता है। संसार में जीव आहार के बिना एक समय, दो समय तथा अधिक तीन समय तक रह सकता है। चौथे समय में उसे आहार अवश्यमेव ग्रहण करना पड़ता है। नारकी, देवता, पांच स्थावर और असन्नी- मनुष्य दो प्रकार का आहार ओज और रोम ग्रहण करते हैं। मनुष्य, तिर्यंच पञ्चेन्द्रिय, तीन विकलेन्द्रिय जीव ओजाहार, कवलाहार और रोमाहार ही ग्रहण करते हैं।

भगवती सूत्र में गौतम स्वामी भगवान् से प्रश्न करते हैं:—

प्रश्न:—नारकी नर्क में उत्पन्न होते हैं। क्या वे देश से देश उत्पन्न होते

हैं ? या देश से सर्व उत्पन्न होते हैं ? या सर्व से देश उत्पन्न होते हैं ? या सर्व से सर्व ही उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! नारकी जीव देश से देश उत्पन्न नहीं होते। देश से सर्व भी उत्पन्न नहीं होते। सर्व से देश उत्पन्न नहीं होते। सर्व से सर्व उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! नारकी जीव जो आहार करते हैं, वे देश से देश करते हैं या देश से सर्व करते हैं ? या सर्व से देश करते हैं ? या सर्व से सर्व करते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! नारकीयों में उत्पन्न होता हुआ नारकी जीव एक भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार नहीं करता किन्तु सर्व भाग से एक भाग को आश्रित करके आहार करता है, या सर्व भागों से सर्व भागों को आश्रित करके आहार करता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! उद्वर्तन करता हुआ वह आहार देश से देश करता है।

उत्तर—हे गौतम ! नारकी जीव उद्वर्तन करता हुआ आहार देश से देश नहीं करता, देश से सर्व नहीं करता। वह सर्व से देश करता है और सर्व से सर्व करता है। यह भी चौवीस दण्डकों में इसी प्रकार समझ लेना चाहिए। ऊपर लिखित चार दण्डक भूत के और चार वर्तमान के क्रम से आठ दण्डक हुए। इसी प्रकार अर्ध से अर्ध, अर्ध से सर्व, सर्व से अर्ध और सर्व से सर्व इस प्रकार के सोलह अलाप समझने चाहिएँ और सोलह अलापों को चौवीस दण्डकों के साथ समझना चाहिए।

प्रश्न—हे भगवन् ! महाऋद्धि वाला, महाद्युति वाला, महाबल वाला, महायशस्वी, महासामर्थ्य वाला देव अपना च्यवनकाल अर्थात् मृत्यु के समय को समीप जानकर क्यों लज्जित होता है ? क्यों अरति करता है ? क्यों थोड़े समय तक आहार भी नहीं लेता। बाद में क्षुधा भूख सहन न होने पर आहार करता है। शेष आयु पूर्ण हो जाने पर वह कौन सी गति में उत्पन्न होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! देवता अपना च्यवन काल समीप जानकर पूर्वोक्त प्रकार से चिन्ता करता है। वह विचारता है कि अब मुझे देवता सम्बन्धी काम भोगों को छोड़कर अपवित्र योनि में उत्पन्न होना पड़ेगा और वहां वीर्य और रुधिर का आहार ग्रहण करना पड़ेगा। इस प्रकार विचार करता हुआ वह लज्जित होता है, घृणा करता है, अरति करता है। आयु क्षय हो जाने पर मनुष्य गति या तिर्यञ्च गति में उत्पन्न होता है।

प्रश्न—हे भगवन् ? गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रियों सहित जाता है या इन्द्रियों से रहित जाता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जीव गर्भ में जाते समय द्रव्य इन्द्रियों को छोड़ कर जाता है और भाव इन्द्रियों को लेकर जाता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! जीव गर्भ में शरीर सहित जाता है अथवा शरीर रहित जाता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जीव गर्भ में शरीर सहित भी जाता है और शरीर रहित भी जाता है ?

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा किस कारण से कहा गया है ?

उत्तर—हे गौतम ! जीव औदारिक, वैक्रिय एवं आहारिक शरीरों को छोड़कर जाता है। तेजस और कार्मण शरीर की अपेक्षा शरीर सहित उत्पन्न होता है। इस कारण हे गौतम ! ऐसा कहा गया है।

प्रश्न—हे भगवन् ! जीव गर्भ से उत्पन्न होते ही सर्व प्रथम क्या आहार लेता है।

उत्तर—हे गौतम ! आपस में एक दूसरे से मिला हुआ माता का आर्तव और पिता का वीर्य जो कलुप है है, उसका जीव, गर्भ में उत्पन्न होते ही आहार करता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! गर्भ में गया हुआ जीव क्या खाता है ?

उत्तर—हे गौतम ! गर्भ में गया हुआ (उत्पन्न हुआ) जीव, माता द्वारा

खाए हुए अनेक प्रकार के रस विकारों के एक भाग के साथ माता का आर्त्तव खाता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या गर्भ में गए हुए जीव के मल, मूत्र, कफ, नाक का मैल, वमन और पित्त होता है ?

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। गर्भ में रहे हुए जीव के मल मूत्रादि नहीं होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! गर्भ में जाने पर जीव जो आहार खाता है, जिस आहार का चय करता है, उस आहार को श्रोत के रूप में यावत् स्पर्शनेन्द्रिय के रूप में, हड्डी के रूप मे, मज्जा के रूप में, वाल के रूप में, दाढ़ी के रूप में, रोमों के रूप में और नखों के रूप में परिणत करता है। इसलिए हे गौतम ! गर्भ में गए हुए जीव के मल मूत्रादि नहीं होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! क्या गर्भ में उत्पन्न हुआ जीव मुख द्वारा कवलाहार (ग्रास रूप आहार) करने में समर्थ है ?

उत्तर—हे गौतम ! यह अर्थ समर्थ नहीं है—ऐसा नहीं हो सकता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! यह किस कारण से ?

उत्तर—हे गौतम ! गर्भ में गया हुआ जीव सर्व आत्म (सारे शरीर) से आहार करता है, सर्व आत्म से परिणमाता है, सर्व आत्म से उच्छ्वास लेता है। सर्व आत्म से निःश्वास लेता है, वारवार आहार करता है, वार-वार परिणमाता है। वार-वार उच्छ्वास लेता है। वार-वार निःश्वास लेता है, कदाचित् आहार करता है, परिणमता है, कदाचित् उच्छ्वास लेता है, कदाचित् निःश्वास लेता है, तथा पुत्रजीव को रस पहुँचाने में कारणभूत जो "मातृजीव रस" हरणी नाम की नाड़ी है, वह माता के जीव के साथ सम्वद्ध है और पुत्र के जीव के साथ स्पष्ट-जुड़ी हुई उस नाड़ी द्वारा पुत्र का जीव आहार लेता है और आहार को परिणमाता है। दूसरी एक और नाड़ी है जो पुत्र के जीव के साथ संवद्ध है और माता के जीव से स्पष्ट जुड़ी हुई होती है। उससे पुत्र का

जीव आहार का चय करता है और उपचय करता है। हे गौतम ! इस कारण गर्भ में गया हुआ जीव मुख द्वारा कवलाहार लेने में समर्थ नहीं है।

प्रश्न—हे भगवन् ! जीव के कितने अंग माता के होते हैं और कितने अंग पिता के होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! मांस, रुधिर और मस्तक ये तीन अंग जीव के माता के होते हैं। हाड मज्जा तथा केश, दाढ़ी, नख, रोम ये तीन अंग पिता के होते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! माता पिता का अंग (प्रथम समय का लिया हुआ आहार) सन्तान के शरीर में कितने समय तक रहता है ?

उत्तर—हे गौतम ! जब तक जीव का भवधारणीय शरीर रहता है, तब तक माता-पिता का अंश रहता है परन्तु समय-समय पर वह क्षीण होता जाता है। यावत् आयुष्य समाप्त होने तक माता-पिता का कुछ न कुछ अंश रहता है। अतः इस शरीर पर माता-पिता का बड़ा उपकार है। क्योंकि उन्हीं से वह जीवित है। माता-पिता के उपकार को हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए।

प्रश्न—हे भगवन् ! गर्भ में मरा हुआ जीव क्या नर्क में उत्पन्न हो सकता है ?

उत्तर—हे गौतम ! कोई जीव नर्क में उत्पन्न होता है और कोई नहीं भी होता।

प्रश्न—हे भगवव् ! गर्भ में मरा हुआ जीव किस कारण से नर्क में जाता है ?

उत्तर—हे गौतम ! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पंचेन्द्रिय और सब पर्याप्तियों से पर्याप्त जीव, वीर्य लब्धि द्वारा, वैक्रिय लब्धि द्वारा, शत्रु की सेना को आई हुई सुन कर, अवधारण करके अपने आत्म प्रदेशों को गर्भ से बाहर निकालता है। बाहर निकाल कर वैक्रिय समुद्घात से समवहत होकर चतुरंगिनी सेना

की विक्रिया करता है। चतुरंगिणी सेना की विक्रिया करके उस सेना से शत्रु की सेना के साथ युद्ध करता है। वह धन का कामी, राज्य का कामी, भोगों का कामी, कामका कामी, अर्थ में लंपट, राज्य में लंपट, भोग में लंपट तथा काम में लंपट अर्थ का प्यासा, राज्य का प्यासा, भोग का प्यासा और काम का प्यासा, उन्हीं में चित्तवाला, उन्हीं में मन वाला, उन्हीं में आत्म परिणाम वाला, उन्हीं में अध्यवसाय वाला, उन्हीं में प्रयत्नवाला, उन्हीं में सावधानता वाला, उन्हीं के लिए क्रिया करने वाला और उन्हीं के संस्कार वाला जीव, यदि उसी समय मृत्यु को प्राप्त हो तो नर्क में उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम! कोई जीव नर्क में जाता है और कोई नहीं जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्! क्या गर्भ में रहा हुआ जीव देवलोक में उत्पन्न हो सकता है?

उत्तर—हे गौतम! कोई जीव जाता है और कोई नहीं जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्! इस का क्या कारण है?

उत्तर—हे गौतम! गर्भ में रहा हुआ संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव और सब पर्याप्तियों से पूर्ण जीव, तथा रूप के श्रमण या माहण के पास एक भी धार्मिक आर्य वचन सुन कर, हृदय में धारण करके तुरन्त ही संवेग से धर्म में श्रद्धालु बन कर, धर्म के तीव्र अनुराग में रक्त होकर, वह धर्म का कामी, पुण्य का कामी, स्वर्ग का कामी, मोक्ष का कामी, धर्म में आसक्त, पुण्य में आसक्त, स्वर्ग में आसक्त, मोक्ष में आसक्त, धर्म का प्यासा, पुण्य का प्यासा, स्वर्ग का प्यासा, मोक्ष का प्यासा, उसी में चित्तवाला, उसी में मन वाला, उसी में आत्म परिणाम वाला, अध्यवसाय वाला, उसी में तीव्र प्रयत्न वाला, उसी में साव-धानता वाला, उसीके लिए क्रिया करने वाला, और उसी संस्कार वाला जीव, यदि ऐसे समय में मृत्यु को प्राप्त हो तो देवलोक में उत्पन्न होता है। इसलिए हे गौतम! कोई जीव देवलोक में जाता है और कोई नहीं जाता है।

प्रश्न—हे भगवन्! गर्भ में जीव किस तरह से रहता है? क्या समचित्त रहता है या अधोमुख रहता है अथवा पसवाड़े से रहता है?

उत्तर—हे गौतम ! गर्भ में जीव समचित भी रहता है, पसवाड़े से भी रहता है और अधोमुख भी रहता है। जब माता सोती है तो गर्भ का जीव भी सोता है। जब माता जागती है तो गर्भ का जीव भी जागता है। माता सुखी रहे तो गर्भ का जीव सुखी रहता है और माता दुखी रहे तो गर्भ का जीव भी दुःखी रहता है। प्रसव के समय जीव मस्तक से या पैरों से गर्भ के बाहर आता है। जो जीव पापी होता है, वह प्रसव के समय योनिद्वार पर टेढ़ा होकर आता है। इसी कारण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। कदाचित् अशुभ कर्म के उदय से जीवित रहे तो दुर्वर्ण, दुर्गन्ध युक्त, दुःरस, दुःस्पर्श वाला, अनिष्ट कान्ति, अमनोज्ञ, हीनस्वर, दीनस्वर यावत् अनादेय वचनवाला और महान् दुःख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। जिस जीव ने पूर्व भव में अशुभ कर्म न बांधे हों किन्तु शुभ कर्म बांधे हों तो वह इष्ट, प्रिय, वल्लभ, सुस्वर वाला यावत् आदेश वचन वाला और परम सुख में जीवन व्यतीत करने वाला होता है। इसलिए शास्त्रकार फरमाते हैं कि जीव को सुकृत करना चाहिए, जिससे वह क्रमशः तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का आराधन करके मोक्ष के अक्षय सुखों को प्राप्त करे। फिर जन्म, जरा, मरण के दुःखों से व्याप्त इस संसार में आना ही न पड़े और गर्भ के दुःखों को देखना ही न पड़े। कहा भी है :—

> धर्म करो रे जीवड़ा धर्म कियाँ सुख होय।
> धर्म करन्ता जीवड़ा, दुःखिया न दीठा कोय ॥

प्रश्न—हे भगवन् ! गर्भ की स्थिति कितनी है ?

उत्तर—हे गौतम ! उदक गर्भ (पानी के गर्भ) की स्थिति जघन्य एक समय और उत्कृष्ट छः मास की होती है। तिर्यग्योनि गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट आठ वर्ष की होती है। मानुषी गर्भ की स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट बारह वर्ष की रहती है। मानुषी गर्भ की काया स्थिति जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट २४ वर्ष की है।

प्रश्न—हे भगवन् ! वीर्य कितने काल तक सच्चित्त रहता है ?

उत्तर—हे गौतम ! तिर्यञ्चणी की योनि में प्रविष्ट हुआ तिर्यञ्च का वीर्य और मनुष्यणी की योनि में प्रविष्ट हुआ पुरुष का वीर्य जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट १२ मुहूर्त तक सञ्चित रहता है और फिर विनष्ट हो जाता है। दिगम्बर मत को ऐसी मान्यता है वीर्य अचित और माता का खून सचित होता है दोनों मिलकर मिश्र वन जाते हैं। इस का नाम मिश्र योनि है। ऐसा देखने में आया है।

प्रश्न—हे भगवन् एक भव में एक जीव के कितने पिता हो सकते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जघन्य १, २, ३, और उत्कृष्ट (पृथकत्व रूप में) प्रत्येक सौ पिता हो सकते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! मैथुन सेवन करने में कितना पाप है?

उत्तर—हे गौतम ! जिस प्रकार कोई पुरुष तपी हुई सलाई डालकर रुई की नली या बूर नामक वनस्पति की नली को जला डालता है इस प्रकार का पाप मैथुन सेवन करने वाले को लगता है।

प्रश्न—हे भगवन् ! पुत्र और पुत्री कैसे उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! माता की दाहिनी कुक्षि में पुत्र उत्पन्न होता और बाई कुक्षि में पुत्री उत्पन्न होती है और बीच में नपुंसक उत्पन्न होता है। रुधिर अल्प और वीर्य ज्यादा हो तो पुत्र उत्पन्न होता है। रुधिर (ओज) ज्यादा हो और वीर्य थोड़ा हो तो पुत्री उत्पन्न होती है। ओज और वीर्य बरा-बरावर हों तो नपुंसक होता है। यदि स्त्री स्त्री को सेवन करे तो विम्ब होता है।

पर्यूषण पर्वाधिराज का महान् दिवस सम्वत्सरी आ ही पहुंचा। इस दिन महाराजश्री ने अन्तगढ़ सूत्र का वाचन पूर्ण किया। धर्म प्रेमी वन्धुओं ने तपस्या की खूब आराधना इन दिनों की।

इस चातुर्मास काल में महाराजश्री के दर्शनार्थ बाहर से धर्म प्रेमी वन्धु आते जाते रहे। लाला इन्द्रसैन जी की प्रेरणा से दिल्ली से कई बसों में हमारे भाई चरित्रनायक पंजाब केसरी श्री प्रेमचन्द जी के दर्शनार्थ आए।

इन्हीं दिनों अकस्मात् महाराजश्री का स्वास्थ्य गिर गया। डाक्टरों को दिखाया गया। कुल्हे में रसौली थी। डाक्टरों के परामर्श पर उसका ऑपरेशन कराया गया। सात-आठ दिन तक महाराजश्री को अस्पताल में रहना पड़ा। तत्पश्चात् महाराजश्री स्थानक में पधार गए।

समय अवाध गति से चलता रहा। चातुर्मास काल की समाप्ति का एक दिन शेष रह गया था। बिरादरी की ओर से महाराजश्री के सम्मान में विदाई समारोह का आयोजन किया गया। वहुत से भाइयों और वहनों ने महाराजश्री के चरणों में श्रद्धा के फूल चढ़ाए। अम्वाला के श्री संघ की ओर से महाराजश्री के चरणारविन्दों में एक अभिनन्दन पत्र समर्पित किया गया। इसे पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था श्री गोरालाल जी अम्वाला निवासी को।

श्रीवीतरागय नमः

जैन भूषण, वालब्रह्मचारी, पंजावकेसरी श्री श्री १००८ मुनिराज स्वामी प्रेमचन्द जी महाराज के पावन पाद-पद्मों में सादर समर्पित

आभार पत्र

श्रद्धास्पद गुरुवर,

अम्वाला नगर निवासियों के पुरातन पुण्योदय के फलस्वरूप यहां की धरती अनेक वर्षों के वाद अपके चरणरजकणों से पुनः पवित्र हुई यह हमारा अहोभाग्य है। हम इस समय सर्वप्रथम वयोवृद्ध तपस्वी मुनि श्री फकीर चन्द जी महाराज के प्रति कृतज्ञता-प्रकट करते हैं जिनके आशीर्वाद और प्रेरणा से हमारा चिरकाल का स्वप्न साकार हुआ तथा आपने यहां इस वर्ष चातुर्मास करना स्वीकार कर हमें कृतकृत्य किया। 'श्रेयांसि वहुघ्नानि' शुभ कार्यों में अनेक वार कई वाधाएँ अकस्मात् उपस्थित हुआ करती हैं। परन्तु दृढ़ निश्चय और सत्यनिष्ठा की शक्ति के सम्मुख उन्हें पराजित होना ही पड़ता है। चातुर्मास के प्रारम्भ होने के वाद दो मास पूर्व रोपड़ में सहसा शरीर पर ऐसी चोट आई कि काफी समय तक आपका विहार

परोपकारिन् ।

अम्बाला नगर तो आपकी सेवाओं से विशेष रूप से उपकृत है। यहां का पूज्य काशीराम जैन गर्ल्ज हाई स्कूल आपकी सत्प्रेरणा से अंकुरित, प्रफुल्लित और फलित हुआ। लगभग आठ मास पूर्व जब समाना से यहाँ पधारे तो महावीर भवन के निर्माण के कार्य में अद्भुत गतिशीलता आई और वह शहर का अनुपम हाल बन गया। आपके व्याख्यानों को यहां की जनता ने हजारों की संख्या में मन्त्र मुग्ध हो सुना और अहिंसा, प्रेम व सदाचार की प्रेरणा प्राप्त की। वावन द्वादशी के मेले पर अनाज मण्डी में हुआ आपका भाषण दूर-दूर के ग्रामों में गूंज रहा है। पांच दिन पूर्व ही जैन कालेज अम्बाला शहर के हाल में आपके प्रभावशाली प्रवचन का अमृतपान कर शिक्षित वर्ग भी विस्मय विभोर हो गया। अभी कुछ समय पूर्व ही आपको एक आपरेशन करवाना पड़ा। आपकी क्रियानिष्ठा, नियमपालन की दृढ़ता और अद्भुत सहनशीलता ने सिविल सर्जन व उनके सहयोगियों को भी प्रभावित कर नत मस्तक कर दिया।

गुरुदेव ! हम आपके उपकारों को कभी विस्मृत नहीं कर सकते। हम अल्पज्ञ यह भी नहीं जानते कि किन शब्दों में हृदय में स्थित अपने कृतज्ञता भाव को आपके चरणों में प्रस्तुत कर सकें? आप जैसे महान् व्यक्तित्व व साधुत्व के आदर्श के प्रति हम शायद उचित विनय-व्यवहार भी न कर सके हों। आपके द्वारा सचेत किए जाने पर भी सम्भव है हमारी आंखें अभी भी तन्द्रिल हों। इन सब त्रुटियों व अज्ञातनाओं के लिए सच्चे हृदय से क्षमायाचना करते हुए हम आपका पुनः पुनः आभार मानते हैं। अन्त में विनम्र प्रार्थना करते हैं कि जब कभी अवसर अवकाश दें, हमें अपने प्रवचनपीयूष से उपकृत व कृतार्थ करते रहें।

हम हैं आप के चरण सेवक,

२१ नवम्बर १९६१   सदस्य गण श्री वर्धमान स्थानकवासी

जैन श्रावक संघ—अम्बाला शहर।

दूसरे दिन महाराजश्री ने अम्बाला से विहार किया। हजारों नरनारी बाल-वृद्ध डेढ़ दो मील तक महाराजश्री के साथ गए। जय घोष करते हुए, महाराजश्री का गुणानुवाद करते हुए और जयकारों से दिशाओं को गुंजाते हुए। यहां ही अन्त दृश्य था महाराजश्री ने जनता को मांगलिक सुना कर वापिस लौटने की प्रेरणा दी। कुछ भाई लौट गए और कुछ लोग महाराजश्री के साथ अम्बाला छावनी तक गए। स्थानक में पहुंच जाने के बाद महाराजश्री ने संक्षिप्त सा उपदेश दिया। मंगलपाठ सुनने के बाद सब लोग विदा हो गए।

अम्बाला छावनी में महाराजश्री के पास पटियाला के भाई आए। उन्होंने महाराजश्री से पटियाला पधारने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने कहा कि मेरा विचार सढौरा जाने का है। महाराजश्री के विचारों से अवगत हो जाने के बाद पटियाला के भाई वापिस लौट गए।

महाराजश्री ने यहां पांच छः सार्वजनिक व्याख्यान दिए। यहां से आप ने "मलाना" के लिए विहार कर दिया। एक दिन मार्ग में लगाकर महाराजश्री मलाना पहुंच गए। यहां पर आप लाला सेनूराम के मकान में ठहरे। चातुर्मासार्थ मुनि-महाराजगण प्रायः यहीं ठहरा करते थे इसलिए आप श्री भी यहीं पर ठहरे। अकस्मात् महाराजश्री के पेट में अगाध वेदना हो गई जिसके कारण महाराजश्री को आठ दिन तक यहीं रुकना पड़ा।

अगले दिन प्रातः काल की वेला में विहार करने का विचार बना। पूर्व की रात्रि को महाराजश्री की छाती में दर्द हो गया। महाराजश्री ने दर्द की परवाह न करते हुए अपने विहार करने के विचार को दृढ़ रखा। सूर्योदय होने पर महाराजश्री चल पड़े अपने शिष्य समुदाय के साथ सढ़ौरा की ओर। रास्ते में एक रात लगाकर महाराजश्री सढ़ौरे पहुंच गए। इस विहार के कारण महाराजश्री का स्वास्थ्य ठीक न रह सका। अतः यहां की जनता महाराजश्री के मधुर वचनों से लाभ न उठा सकी।

यहां पर महाराजश्री की सेवा में श्री ज्ञानमुनि जी का पत्र आया जिस,

में लिखा था कि पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के पेट में कैंसर है। पत्र पढ़ने के उपरान्त महाराजश्री चिन्तातुर हो गए। रात्रि में शिष्यों के साथ पूज्य श्री आत्माराम जी के स्वास्थ्य के विषय में बातचीत चली। सब का विचार था कि हमें अब लुध्याना की ओर प्रस्थान करना चाहिए।

सढ़ौरे से चलकर महाराजश्री डेराबसी पहुँचे। दूसरे दिन महाराजश्री का सार्वजनिक प्रवचन हुआ। महाराजश्री को सेवा में अम्बाला से भाई ताराचन्द आए। उन्होंने महाराजश्री से फरमाया कि मुझे मालूम हुआ है कि लुध्याना की बिरादरी व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी की सेवा में गई है और उन्होंने उनसे लुध्याना पधारने की विनती की है। विनती का उत्तर देते हुए महाराज मदनलाल जी ने फरमाया है कि मैं लुध्याना जाने का विचार तो रखता हूँ परन्तु मैं पूज्यश्री को वन्दना-नमस्कार नहीं करूँगा। भाई की बात सुनकर महाराजश्री ने उत्तर दिया कि उन्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए था।

यहाँ से प्रस्थान कर महाराजश्री छतग्राम में पधारे। छतग्राम में महाराजश्री की संसार पक्ष की बड़ी बहन रहती थीं। कई बार उसने महाराजश्री से छतग्राम पधारने की आग्रह पूर्ण विनती की थी। महाराजश्री यहाँ पर दो दिन तक ठहरे। यहाँ आप के तीन सार्वजनिक व्याख्यान हुए।

बनूड़, छतग्राम से आगे है। यहाँ पर जैन बन्धुओं के घर काफी संख्या में हैं। महाराजश्री भाइयों के आग्रह और प्रेम को देखकर आठ दिन तक ठहरे। आठों दिन आपके सार्वजनिक प्रवचन यहाँ हुए।

राजपुरा, सरहिन्द और गोविन्दगढ़ को अपनी मधुरवाणी से पवित्रकर आप खन्ना पधारे। गाँव के लोगों के जीवन में जो सरलता तथा निश्छलता आपने देखी, उससे आप अत्यधिक प्रभावित हुए।

खन्ना एक व्यापारिक मण्डी है। यहाँ पर महाराजश्री से पूर्व कई साधु-महाराज पधार चुके थे। अतः खूब धर्म प्रचार हुआ। आठ दिन तक वहाँ आपके प्रवचन हुए।

पूज्य श्री पर होगा। अतः उनसे त्यागपत्र नहीं दिलवाना चाहिए।" यह बात सभी को उपयुक्त लगी। सेवक संघ के सभी सदस्य इस बात को मान कर महाराजश्री के दर्शन कर चले गए।

श्री मदनलाल जी महाराज लुध्याना से चलकर फगवाड़ा आए।

पूज्यश्री जी की अस्वस्थता के कारण बहुत से साधुगण यहां आ विराजे थे। मलमूत्र परठने के लिए यथेष्ठ स्थान न होने के कारण महाराजश्री को साधु की क्रिया में समूर्छिम दोप लगता था। अतः आपने अपने भाव पूज्यश्री के चरणों में रखे और उनसे फलौर जाने की आज्ञा मांगी।

पूज्यश्री की आज्ञा प्राप्त कर आप फलौर अपनी शिष्यमण्डली सहित आ विराजे। सात दिन बीते ही थे कि लुध्याना से समाचार आया कि पूज्यश्री की दशा ठीक नहीं है। महाराजश्री ने अगले दिन प्रातः पुनः लुध्याना जाने का विचार बनाया।

सूर्योदय होने से पूर्व ही महाराजश्री को समाचार मिला कि पूज्यश्री जी का जीवन-द्वीप बुझ गया है। पूज्यश्री की मृत्यु से सर्वत्र शोक के बादल छा गए। विवश होकर महाराजश्री को अपना विचार बदलना पड़ा।

पूज्यश्री जी का संस्कार हो जाने के उपरान्त महाराजश्री ने एक सज्जन को श्री मदनलाल जी महाराज की सेवा में यह कहने के लिए भेजा था कि वे फगवाड़ा में महाराजश्री की प्रतीक्षा करें। महाराजश्री शीघ्र ही फगवाड़ा में उपस्थित होकर श्रमणसंघ की स्थिति के विषय में विचार-विमर्श करना चाहते हैं। सन्देशवाहक के वापस लौट आने के बाद महाराजश्री ने फगवाड़ा की ओर विहार कर दिया। महाराजश्री का मिलाप श्री मदनलाल जी से न हो सका। वे इनके आगमन से एक दिवस पूर्व यहां से विहार कर अन्यत्र जा चुके थे। पर आप लगभग पच्चीस दिन तक ठहरे। पच्चीस दिन तक आपका धर्मोपदेश यहाँ की जनता ने सुना। यहाँ पर महाराजश्री की सेवा में जालन्धर शहर की विरादरी आई। उन्होंने महाराजश्री से जालन्धर शहर को अपनी चरण रज से पवित्र करने की प्रार्थना की। महाराजश्री उनकी आग्रहपूर्ण विनती को अस्वी-

कार न कर सके। उनकी विनती को महाराजश्री ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

जालन्धर छावनी होते हुए महाराजश्री ने जालन्धर शहर को प्रस्थान किया। महाराजश्री के स्वागतार्थ हजारों स्त्री-पुरुष मार्ग में पहुंचे। खूब धूम-धाम के साथ महाराजश्री ने जालन्धर शहर के स्थानक में कदम रखा। यहां आपके प्रवचन नाहौरिया बाजार के स्थानक में हुए। यहां के श्री संघ ने आपसे चातुर्मास जालन्धर शहर में करने की विनती की। चातुर्मास की विनती होली चातुर्मास पर की जाती है। होली चातुमास में अभी यथेष्ट समय था, इसलिए महाराजश्री ने जालन्धर निवासियों की विनती अस्वीकार कर दी।

आपका मन श्रमणसंघ में पड़ी हुई विषमता-फूट के कारण व्यथित रहता था। आप इन बिखरी हुई कड़ियों को एकता के सूत्र में पिरोना चाहते थे। अतः आप प्रयास करते रहे। सेवक संघ के कुछ सदस्य आपके पास आए। वे चाहते थे कि महाराजश्री जी और व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज आपस में मिलकर इस समस्या का कोई समाधान ढूंढें। इस समस्या का हल तभी कुछ निकल सकता था जब श्रमण वर्ग के ये दोनों महारथी एक जगह पर एकत्रित होकर आपस में विचारविमर्श कर सकें। सेवक संघ के सदस्यों ने आप से होशियारपुर पहुंचने की विनती की क्योंकि मदनलाल जी महाराज होशियारपुर पहुंच चुके थे। आप से स्वीकृति प्राप्त कर श्री सेवक संघ के सदस्य होशियारपुर में व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज की सेवा में पहुंचे और उनसे महाराजश्री पंजाब केसरी जी के आगमन तक वहीं रुके रहने की प्रार्थना की। श्री मदनलाल जी महाराज ने उनकी बात को मान लिया।

दो रातें मार्ग में लगाकर महाराजश्री होशियारपुर पहुंचे। महाराजश्री के आगमन का समाचार प्राप्त कर श्री मदनलाल जी महाराज अपने शिष्य समुदाय के साथ अगवानी को पहुँचे। साथ में सैकड़ों की संख्या में होशियार पुर के भाई भी थे।

एक अद्‌भुत मिलन था उस युग के दो जैन श्रमणों का। विपमता की कड़ियों को एकता के सूत्र में पिरोने के लिए प्रयत्नशील सेवक संघ के सदस्य भी होशियार में आ गए। उनके सान्निध्य में दोनों श्रमणों में विचारविमर्श प्रारम्भ हुआ। "मर्ज वढ़ता गया ज्यों-ज्यों दवा की" वाली कहावत के अनुसार श्रमणसंघ को एकता के सूत्र में आवद्ध करने का जितना-जितना प्रयास किया जाता था, एकता उतनी ही दूरी होती गई। स्मरण रहे श्री प्रेमचन्द जी म० सेवक संघ के द्वारा ऐसे भाव सुनने में आये थे। पंजाव श्रीसंघ अपने पूर्व रूपमें आ जाये तो मैं पंजाव संघ में मिल जाऊंगा ऐसा मदनलाल जी ने कहा था, ऐसे उनके भाव जानने के लिये ही म० श्री प्रेमचन्द जी ने वार-वार मिलने की कोशिश की। श्री मदनलाल जी महाराज जिन्होंने कभी श्रमण वर्ग की एकता के लिए महान् से महान् वलिदान किया था, वे कुछ परिस्थिति से वशीभूत होने के कारण विवश से दिखाई दिए। चाहते हुए भी वे कुछ न कर पाए। एक तो उपाचार्य गणेशीलाल जी महाराज से वे वचन-वद्ध थे कि जवतक आप जीवित रहेंगे तव तक आप की आज्ञा मंगाता रहूंगा। लुवियाने के वचन में और इस वचन में विपमता हैं। दूसरे उनके शिष्य भी श्रमणसंघ के एकछत्र शासन को मानने के लिए तत्पर नहीं थे। विवशता के कारण फिर वे मौन हो गए। श्रमणसंघ की एकता की समस्या अधर में लटकी हुई रह गई। वेचारे सेवक संघ के सदस्य गण निराशा को लेकर अपने-अपने घर लौट गए।

यहाँ पर महाराजश्री की सेवा में जालन्धर की विरादरी आई। उन्होंने महाराजश्री से जालन्धर चातुर्मास करने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने सुखे समाधे वहाँ चातुर्मास करना स्वीकार कर लिया।

होशियारपुर में आपके सार्वजनिक व्याख्यान की व्यवस्था स्थानक के साथ विशाल मैदान में की गई। पण्डाल लगाया गया। प्रथम दिवस के व्याख्यान में ही हजारों लोगों की उपस्थिति थी। यहाँ की जनता पर आपके विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा। दूसरे दिन आपका प्रवचन इस पण्डाल में अस्वस्थता के कारण न हो सका। आप ज्वर और जुकाम से पीड़ित हो गए। चिकित्सा के कारण आपको यहां सात दिन तक रुकना पड़ा।

स्वास्थ्य लाभ प्राप्त हो जाने के बाद आपने टांडा ग्राम की ओर प्रस्थान किया। यहां की जनता ने टांडा के प्रवेश के समय आपका शानदार स्वागत किया। स्थानक में पहुंच जाने के बाद आपने संक्षिप्त सा भाषण किया। मंगलीक सुनने के बाद लोग अपने-अपने निवासस्थान की ओर चल दिए। श्री तीर्थराम क्षत्रिय के मकान के समीप के खुले मैदान में आपके उपदेश प्रारम्भ हुए। व्याख्यान में बारह सौ के लगभग श्रोताओं की उपस्थिति हुआ करती थी। वहां आपने दस सार्वजनिक व्याख्यान दिए।

इसके उपरान्त महाराजश्री अस्लापुर पधारे। यहां आप एक धर्मशाला में विराजे। यहां आप दस-बारह दिन तक विराजमान रहे। प्रतिदिन आपका प्रवचन धर्मशाला में होता था। जनता की उपस्थिति प्रतिदिन दो हजार तक की हो जाया करती थी। महाराजश्री की सेवा में मुकेरियां का श्रीसंघ महावीर जयन्ती के पावन पर्व पर पधारने की विनती करने के लिए आया था। उनकी विनती को महाराजश्री ने सहर्ष स्वीकार कर लिया।

लगभग १२ दिन व्यतीत हो जाने के बाद यहां से महाराजश्री ने मुकेरियां के लिए विहार किया। मार्ग के ग्रामों में भगवान् महावीर के पावन उपदेशों का प्रचार व प्रसार करते हुए आप मुकेरियां पधारे। परम्परा के अनुसार यहां के भाई आपका स्वागत करने के लिए एक दो मील चल कर आपकी सेवा में पहुंचे। महाराजश्री की जय जयकार करते हुए और प्रभु के गीत गाते हुए जन समुदाय महराजश्री के कदमों का अनुसरण करते हुए चला आ रहा था। स्थानक में पहुंच कर ईर्यापथिक क्रिया से निवृत हो महाराजश्री ने जनता को उपदेश दिया। मंगलीक के बाद सभा विसर्जित हुई। फिर क्रम चल पड़ा महाराजश्री के सार्वजनिक प्रवचनों का क्योंकि अभी महावीर जयन्ती के आने में सात दिन शेष थे।

एक सप्ताह के बाद महावीर जयन्ती का दिन आ पहुंचा। पण्डाल जनता से खचाखच भरा हुआ था। तिल रखने को भी स्थान नहीं। महाराजश्री की सिंह गर्जना के प्रारम्भ होते ही चतुर्दिक नीरवता छा गई। आपने भगवान् महावीर स्वामी के जीवन पर बड़े ही सुन्दर और प्रभावशाली शब्दों में प्रकाश डाला।

मुकेरियों से विहार करके एक रात रास्ते में लगाकर सतलुज पधारे सतलुज नदी, जिसके किनारे आजादी के परवाने सरदार भगतसिंह की लाश को जलाया गया था, पार करके उसके समीपवर्ती धारीवाल आदि ग्रामों में धर्म की दुन्दुभि वजाते हुए महाराज श्री वटाला पहुंचे। यहां पर एक पंचायती मकान वना हुआ है जिसमें व्याख्यान के लिए एक खुला मैदान है। महाराजश्री भी इसी भवन में विराजमान हुए थे। यहाँ के भाइयों ने महाराजश्री से रात्रि में ही व्याख्यान करने की प्रार्थना की। महाराजश्री रात्रि में व्याख्यान देने के लिए सहमत नहीं हुए। महाराजश्री ने प्रातः काल के समय में ही धर्मोपदेश देने के अपने भाव वहां के भाइयों के सम्मुख रखे। पाकिस्तान से आए हुए वहुत से शरणार्थी भाई महाराजश्री के सम्पर्क में पहले से ही आए हुए थे अतः महाराजश्री के मधुर वचनों का रसास्वादन करने के लिए वे अधिक से अधिक संख्या में आने लगे। यहाँ आपके धर्म प्रवचनों में लगभग तीन हजार की उपस्थिति हुआ करती थी। यहाँ की जनता ने स्वतन्त्रता के पुजारी अमर शहीद सरदार भक्तसिंह का वलिदान दिवस मनाया। महाराजश्री को भी आमन्त्रित किया गया था, अतः महाराजश्री भी इस उत्सव में सम्मिलित हुए। वैठने की व्यवस्था जैन विधि विधानों के अनुरूप थी। महाराजश्री ने ओजस्वी वाणी में अमरशहीद सरदार भगतसिंह के कार्य-कलापों पर प्रकाश डाला। आपकी ओजस्वी वाणी से यहाँ के जैन-जैनेतर सभी अत्यधिक प्रभावित हुए थे। यहाँ पर आप सोलह दिन तक ठहरे।

वटाला से आप ने अमृतसर की ओर विहार किया। मार्ग के ग्रामों में धर्मप्रचार करते हुए आप अमृतसर पहुंच गए। अमृतसर में व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलालजी महाराज विराजमान थे। अमृतसर के समीप आपके पहुंच जाने की सूचना पाकर आपश्री के स्वागतार्थ वे अपनी शिष्यमण्डली सहित पधारे। साथ में अमृतसर के वहन भाई भी थे। प्रभु का गुणानुवाद मधुर स्वर लहरियों में करते हुए चला आ रहा था जन समुदाय। भगतों के आगे-आगे चल रहे थे साधु जन। स्थानक में पहुँचने के उपरान्त महाराजश्री प्रेमचन्द जी ने मंगलपाठ सुनाया। तदुपरान्त जन समुदाय विखर कर चला गया अपने-

दिल खोल कर स्वागत किया। यहां के भाई भी आप को लेने के लिए काफी दूर तक आपकी सेवा में पहुंचे थे। स्थानक में पहुंच कर आप ने उपस्थित जनता को मंगलपाठ सुनाया। आपके मुखारविन्द से मंगलपाठ श्रवणकर जनता अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो गई। आपकी चिकित्सा यहां भी चलती रही। श्री सोहनलाल जी हकीम के उपचार से जब महाराजश्री को किंचित् मात्र भी स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त नहीं हुआ तब उन्हें श्री प्रेमचन्द श्री प्रेम वैजिटेरियम सोसायटी की तरफ से चलाए जा रहे औषधालय के वैद्य जी को दिखाया गया। वैद्यजी के उपचार से महाराजश्री को स्वास्थ्यलाभ प्राप्त हुआ। एक सार्वजनिक प्रवचन यहां आप का हुआ।

आपने यहां से जालन्धर को प्रस्थान किया। मार्ग के शहरों और ग्रामों में धर्म प्रसार करते हुए रियामंडी, व्यास, करतारपुर आदि क्षेत्रों को अपनी पावन चरणरज से पवित्र करते हुए आप जालन्धर शहर के समीप पहुंच गए। जालन्धर के समीप स्थित सेठ हुक्म चन्द की कोठी में आप ठहरे। यहां से दूसरे दिन आप ने विहार किया। हजारों की संख्या में यहाँ के नर-नारी, वाल-वृद्ध और युवा आपके स्वागतार्थ रास्ते में पहुंचे थे। जयकारों से अब आकाश और अवनि प्रतिध्वनित हो रहे थे। महाराजश्री के पीछे-पीछे प्रभुगीत गाता हुआ जनसमुदाय चला आ रहा था। जालन्धर के प्रमुख राजमार्गों से होकर महाराज श्री स्थानक में पहुंचे। मंगलीक श्रवण कर सब अपने-अपने कामों में में सलंग्न हो गए क्योंकि गृहस्थी की गाड़ी विना कुछ काम धन्धा किए खिचती ही नहीं।

जालंधर चातुर्मास

विं० सं० २००१६ वी० सं० २४८६ ई. सं० १९६२

यहाँ के भाइयों में धर्म के प्रति यथेष्ट मात्रा में लगन है, उत्साह है, इसलिए यहां के चातुर्मास में खूब धर्म का प्रचार व प्रसार हुआ। दूसरे दिन से ही महाराजश्री के सार्वजनिक प्रवचनों की शृंखला प्रारम्भ हो गई। प्रवचन देने का स्थान वही था जो इसके पूर्व के यहां के चातुर्मास का था। व्याख्यान का यह क्रम अवाध गति से चलता रहा। जनता की उपस्थिति भी दिन प्रति-दिन बढ़ती ही गई। श्रोताओं की उपस्थिति हजारों की संख्या तक पहुंच गई थी। एक दिन महाराजश्री ने अपने प्रवचन में कहा कि तुम्हारी ही जाति की एक श्राविका थी। नाम था जयन्ती श्राविका। वह राजा उद्यन की बुआ थी तथा भगवान् महावीर की अनन्य उपासिका थी। उसने भगवान् महावीर स्वामी जी से प्रश्न किया—

"भगवन् ! जीव भारी कैसे होता है और हलका कैसे होता है ?"

"अठारह पापों के सेवन से जीव भारी होता है और इन अठारह पापों के त्याग से जीव हलका हो जाता है।" भगवान् ने उत्तर दिया।

"भगवन् ! संसार किस कारण से बढ़ता है और किस कारण से घटता है ?"

"हे जयन्ती श्राविका ! अठारह पापों को छोड़ देने पर संसार घटता है और अठारह पापों के सेवन से संसार बढ़ता है।"

भगवन् ! लम्बी दीर्घकाल की स्थिति का बंध किस प्रकार होता है और अल्पकाल की स्थिति का बंध किस प्रकार होता है ?

"हे श्राविका ! अठारह पापों का त्याग कर देने से अल्प काल की स्थिति है और अठारह पापों का सेवन करने से दीर्घ काल की स्थिति बंधती बंधती है।"

"भगवन् ! जीव का सोते रहना श्रेयस्कर है या जागते रहना कल्याणकारी है ?"

"हे जयन्ती श्राविका ! किसी का सोते रहना श्रेयस्कर है तो किसी का जागते रहना कल्याणकारी है।"

"हे भगवन् ! ऐसा क्यों ?"

"धर्मी जीव का जागते रहना शुभ है और पापी जीव का सोए रहना शुभ है।"

"भगवन् ! जितने भव्य जीव हैं, क्या वे सभी मोक्ष को प्राप्त होंगे ?"

"हां ! ऐसा ही है।"

"भगवन् ! क्या भव्य जीवों के मोक्ष प्राप्त कर लेने पर इस संसार में केवल अभव्य जीव ही रह जाएंगे ?"

"श्राविका ! ऐसा नहीं होगा।"

"भगवन् ! ऐसा क्यों नहीं होगा ?"

"हे जयन्ती ! आकाश प्रदेशों की श्रेणियां अनन्त हैं। आकाश प्रदेश पर रखा गया एक परमाणु जितनी जगह रोकता है, वह श्रेणी का एक आकाश प्रदेश हुआ। श्रेणी के एक-एक आकाश प्रदेश को यदि निकालना शुरू करें तो अनन्त अनन्तकाल तक एक श्रेणी भी खाली नहीं होगी। क्योंकि आकाश श्रेणी अनन्त हैं। इसलिए भव्य जीवों से भी यह लोक खाली नहीं हो सकता।"

कई वार यह प्रश्न महाराजश्री से भी पूछा गया। महाराजश्री इसका उत्तर अपये बुद्धि चातुर्य से निम्न प्रकार से दिया करते थे। वे प्रश्न कर्त्ता से पूछते थे, "काल कितने प्रकार का है ?"

"काल तीन प्रकार का होता है। भूत, भविष्यत् वर्तमान।" प्रश्नकर्त्ता का उत्तर होता था।

(ख) विनयाचार—ज्ञानदाता गुरु की विनय करना विनयाचार कहलाता है।

(ग) बहुमानाचार—ज्ञानी और गुरु के प्रति हृदय में भक्ति और श्रद्धा के भाव रखना बहुमानाचार है।

(घ) उपधानाचार—ज्ञान सीखते हुए यथाशक्ति तप करना उपधानाचार कहलाता है।

(ङ) अनिन्हवाचार—ज्ञानदाता गुरु का नाम न छिपाना अनिन्हवाचार कहलाता है।

(च) व्यञ्जनाचार—सूत्र के पाठ का शुद्ध-शुद्ध उच्चारण करना व्यञ्जनाचार कहा गया है।

(छ) अर्थाचार—सूत्र का शुद्ध एवं सत्य अर्थ करना अर्थाचार है।

(ज) तदुभयाचार—सूत्र और अर्थ दोनों को शुद्ध-शुद्ध पढ़ना और सम्यक् रूप में उसे समझना तदुभयाचार है।

दर्शनाचार के ८ भेद हैं।

निशंकित—वीतराग सर्वज्ञ के वचनों में सन्देह नहीं करना।

निःकांक्षित—पर दर्शन (मिथ्यामत) की इच्छा नहीं करना।

निर्विचिकित्सा—धर्म क्रिया के फल के विषय में सन्देह नहीं करना।

अमूढ़ दृष्टि—पाखण्डियों का आडम्बर देख कर उसमें मोहित नहीं होना।

उपबृंहा—गुणी पुरुषों को देख कर उनके गुणों की प्रशंसा करना तथा स्वयं भी उन गुणों को प्राप्त करने का प्रयत्न करना।

स्थिरीकरण—धर्म से डिगते प्राणी को धर्म में स्थिर करना।

वात्सल्य—अपने धर्म और सहधर्मियों से प्रेम रखना।

प्रभावना—वीतराग प्ररूपित धर्म की उन्नति करना, प्रचार करना तथा कृष्ण वासुदेव और श्रेणिक राजा के समान धर्म की प्रभावना करना।

चरित्र भी आठ प्रकार के हैं।

ईर्यासमिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान-भंड-मात्र निक्षेपणा समिति, उच्चार-प्रश्रवण-खेल-जल्ल-सिंघाण परिस्थापनिका समिति, मन गुप्ति, वचन गुप्ति, कायगुप्ति।

तपाचार के बारह भेद हैं। छः प्रकार का बाह्य तप होता है और छः प्रकार का आभ्यन्तर तप होता है। बाह्य तप के भेद—अनशन, ऊणोदरी, भिक्षाचरी, रस परित्याग, कायक्लेश और प्रतिसंलीनता।

आभ्यन्तर तप के छः भेद—

प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान, और कायोत्सर्ग। इस लोक और परलोक में सुख आदि की वाँछा रहित तप करना अथवा आजीविका रहित तप करना। ये तप के बारह आचार हैं। वीर्याचार के तीन भेद हैं। धर्म के कार्य में बल-वीर्य को छिपावे नहीं। पूर्वोक्त ३६ आचार में उद्यम करे और शक्ति अनुसार धर्म कार्य करे। ये सभी मिलाकर आचार धर्म के ३९ भेद हुए।

क्रिया धर्म **करण सत्तरि के** १० भेद होते हैं। "पिडविसोही समिई, भावणा—पडिमा—इंदिया—णिणहोय, पडिलेहणा—गुत्तीओ अभिग्गहं चेव करणं तु" अर्थात् चार प्रकार की पिण्ड विशुद्धि, पाँच समिती, बारह भावनाएं बारह भिक्षु प्रतिमाएं पांच इन्द्रियों का निरोध, पच्चीस प्रकार की पडिलेहणा, तीन गुप्ति, चार अभिग्रह, ये सभी मिला कर सत्तर भेद हुए।

चरणसत्तरि के भेद

चरण सत्तरि के सत्तर भेद हैं। वय समण धम्म, १७ प्रकार का संयम, पाँच महाव्रत, १० भेद, १० प्रकार का यति धर्म, वैयावृत्य, ब्रह्मचर्य की ९ वाड़, तीन रत्न (सम्यक ज्ञान, दर्शन, चारित्र) बारह प्रकार का तप, चार कषाय का निग्रह। ये सभी मिला कर चरण सत्तरि के सत्तर भेद होते हैं।

दयाधर्म के आठ भेद हैं।

१. स्वदया—अपनी आत्मा को पापों से बचाना।

२. पर दया—दूसरे जीवों की रक्षा करना।

३. द्रव्य दया—देखा देखी दया पालना या लज्जा, कुलाचार एवं से दया धर्म का पालन करना अथवा द्रव्य प्राणों की दया करना।

४. भावदया—ज्ञान से जीव को जीवात्मा जानकर उस पर अनुकम्पा करना। जीव को धर्म में लगा कर सुखी बनाने का भाव।

५, व्यवहार दया—श्रावक के लिए शास्त्रों में जिस प्रकार की दया पालने का आदेश है, उस प्रकार की दया पालना व्यवहार दया कहलाता है। अर्थात् कोई भी कार्य करते हुए चेतना—विवेक रखना व्यवहार दया है।

६. निश्चय दया—अपनी आत्मा को कर्मबन्धन से छुड़ाना पुद्गल के ऊपर से—वस्तु से ममता हटा कर आत्मा में रमण करना, अठारह पापों का और रागद्वेष का करना ही निश्चय दया है।

७. स्वरूप दया—किसी जीव का वध करके लिए पहले उस का खूब पालन पोषण करना। मोटा ताजा करके सार सम्भाल करना।

यह दया दिखावे मात्र की है। क्योंकि इसके पीछे इन को मारने के भाव हैं। उत्तराध्ययन सूत्र के सातवें अध्ययन में इसी प्रकार का बकरे का एक दृष्टान्त दिया गया है। देव पूजा के लिए बाग बगीचा लगा कर पौधों का पालन पोषण करना भी स्वरूप दया है क्योंकि इस में भी यही भाव निहित हैं कि जब इन पौधों पर पुष्प पल्लवित हो जाएंगे तो उन्हें तोड़ कर देवता के चरणों पर चढ़ाया जाएगा। दोनों के भाव अपने-अपने इष्ट देव को प्रसन्न करने के हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि बकरा पंचेन्द्रिय जीव है और पुष्प एकेन्द्रिय जीव है।

अनुग्रह दया—ऊपर से प्रताड़ना दिखाई देना तथा हृदय में हित के भावों का होना अनुग्रह दया कहलाता है। जिस प्रकार माता-पिता अपने पुत्र को योग्य बनाने के लिए ऊपर से ताड़ना देते हैं और हृदय में दया रखते हैं। इसी

प्रकार गुरु और डाक्टर आदि भी ऊपर से ताड़ना करते हैं और हृदय में दया के भाव रखते हैं। ऐसे सभी दृष्टान्त अनुग्रह दया के अन्तर्गत आते हैं।

स्वभाव धर्म—जीव तथा अजीव की परिणति को स्वभाव धर्म कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है। एक तो शुद्ध स्वभाव रूप शुद्ध परिणति दूसरी कर्म के संयोग से अशुद्ध परिणति। इसे विभाव परिणति भी कहते हैं।

जीव पुद्गल के विभाव परिणाम को दूर कर के अपने ज्ञानादि। गुण में रमण करे, यह जीव का स्वभाव धर्म है। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्श, यह पुद्गल का शुद्ध स्वभाव धर्म है। धर्मास्तिकाय का चलन गुण, अधर्मास्तिकाय का स्थिर गुण, काकाशास्तिकाय का अवकाश गुण और काल का वर्तना गुण है। चारों अपने स्वभाव को कभी नहीं छोड़ते हैं। धर्मजागरणा चार प्रकार की बताई गई है।

अधर्म जागरणा—संसार में धन, कुटुम्ब परिवार का संयोग मिलाना, उन के लिए आरम्भादि करना, धन की रक्षा करना और उसमें एकाग्र दृष्टि रखना अधर्म जागरणा है।

सुदक्खु जागरणा—सु का मतलब है भली, दक्खु का अर्थ है चतुराई वाली जागरणा अर्थात् सुदर्शन जागरणा। यह जागरण श्रावक के होती है? क्योंकि श्रावक सम्यक् ज्ञान, दर्शन वाला होता है। वह धन, कुटुम्ब आदि को तथा विषय-कषाय को अहितकारी समझता है। इन से वह देशतः निवृत होता है। यह सुदर्शन जागरणा है।

जागरणा पर विचार प्रकट करते हुए महाराजश्री ने कहा कि संसार भी जाग रहा है परन्तु वह धर्म में जागृत न होकर अधर्म में जाग रहा है। वह जागता हुआ भी सो रहा है। जो धर्म में जागता है, वह सोता हुआ भी जागता है।

आजकल वैष्णो देवी, नयना देवी और हनुमान जी आदि देवी देवताओं के नाम पर लोग रात भर जागरणा करते हैं। दिन भर के कार्यों से थके हुए लोग रात्रि की गोदी में सुख की नींद सोना चाहते हैं परन्तु वे इस जागरणा के कारण सो नहीं पाते। धार्मिक आत्माएं चार प्रकार की [illegible] में तल्लीन

रहती हैं। वे चार जागरणाऐं हैं—आचार धर्म जागरणा, क्रिया धर्म जागरणा, दयाधर्म जागरणा और भाव धर्म जागरणा। चारों जागरणाएं पंडित पुरुषों की हैं। सुदर्शन जागरणा बाल और पंडित लोगों की जागरणा है। अधर्म जागरणा बाल जीवों की है।

धर्मोपदेश करते-करते पर्यू षण पर्वाधिराज के दिवस आ गए। महाराजश्री ने इन दिनों में जनता को अन्तगड़ सूत्र सुनाया। अन्तगड़ सूत्र में उन नव्वें भव्य जीवों का वर्णन है, जिन्होंने तपाराधन कर के अपनी आत्मा का उत्थान किया था। इन दिनों में खूब धर्म ध्यान हुआ। पौषध, व्रत, वेला, तेला, चोला, अठाई आदि सभी तरह की तपस्या हुई इन दिनों में। सम्वत्सरी के दिन हजारों की संख्या में व्रत, पौषध, वेले, तेले हुए। यहां सम्वत्सरी को लड्डुओं की प्रभावना की प्रथा चली आ रही थी और महाराज श्री के प्रथम चातुर्मास में लड्डुओं की प्रभावना की गई परन्तु महाराज श्री के व्याख्यान में श्रोताओं की बहुलता के कारण अगले चार चातुर्मासों में प्रभावना का क्रम जारी न रक्खा जा सका। धर्मोपदेश का क्रम चलता रहा। बाहर से दर्शनार्थी भाइयों का भी आना जाना होता रहा। सेठ इन्द्रसेन जी की प्रेरणा से दो बसें दर्शनार्थियों की भी यहां पर आई थीं। इन्हीं दिनों अकस्मात् चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया। देश पर मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ा। कौन ऐसा देश भक्त होगा जो ऐसे समय में मौन साधे हाथ पर हाथ रखे बैठा रहे? इस समय देश को सैनिकों के लिए धन तथा वस्तुओं की आवश्यकता थी। आप की वाणी ने भी देश की सहायता के लिए समाजों व युवकों को देश के प्रति उनके कर्तव्यों का बोध कराया जिस से यहां के श्री संघ ने हजारों रुपयों की राशि देश रक्षा कोष में दान में दी।

स्मरण रहे कि साधु को कभी भी सावद्य भाषा का प्रयोग करना नहीं कल्पना चातुर्मास समाप्ति का दिन आ गया। हाथ में पकड़ी हुई बालू के सरकने का जैसे ज्ञान नहीं होता, वैसे ही यह चार मास का समय व्यतीत होते पता नहीं चला। आज प्रवचन के समय जनता की उपस्थिति और दिनों से कुछ अधिक थी। हर सम्प्रदाय के लोगों ने महाराजश्री के चरणों में अपना

श्रद्धा के सुमन समर्थित किए। जैन सभा जालन्धर, जैन युवक मंडल, श्री प्रेम-वैजीटेरियन सोसाइटी आदि संस्थाओं की तरफ से अभिनन्दन पत्र महाराजश्री की सेवा में प्रस्तुत किए गए। इस चातुर्मास के अभिनंदन पत्र मिल नहीं सके। अभिनन्दन पत्रों का उत्तर देने के बाद महाराजश्री ने इस चातुर्मास का अन्तिम उपदेश यहाँ की जनता को दिया। तत्पश्चात् महाराजश्री स्थानक में पधार गए।

दूसरे दिन विदाई की वेला आ गई। हजारों की संख्या में लोग विदाई देने आए थे। संक्षिप्त सा उपदेश दे मंगलीक सुनाकर महाराजश्री चल पड़े शेखावस्ती की ओर। हजारों नर, नारी, बाल, वृद्ध चले आ रहे थे उनके चरणों का अनुसरण करते हुए।

शेखावस्ती में सनातन धर्म के मन्दिर के पास ही महाराजश्री के व्याख्यान का प्रबन्ध किया गया था। महाराजश्री यहां की एक धर्मशाला में विराजमान हुए थे। यहां पर कोई भी जैन धर्मानुयायी नहीं रहता है। बहुत से रोड़े, क्षत्रिय, बनिए, और ब्राह्मण विचार वाले लोग साधु-सन्तों के प्रभाव से जैन सिद्धान्तों में आस्था रखने वाले बन गए हैं। उनकी महान् श्रद्धा और भक्ति के कारण ही महाराजश्री को बारह तेरह दिन तक यहाँ पर रुकना पड़ा। पंडाल में आपका धर्मोपदेश प्रातः काल के समय हुआ करता था और मध्याह्न में धर्म-शाला में। जनता की अपार भीड़ रहती थी। लोगों का कहना था कि इतनी भीड़ तो कभी हमने यहाँ की रामलीला में भी नहीं देखी है।

गुजा बस्ती के धर्मप्रेमी बन्धु महाराजश्री के चरणों में अपने यहाँ पधारने की विनती करने के लिए आए थे। उनके आग्रह को महाराजश्री ठुकरा न सके। दोपहर के बाद विहार करके महाराजश्री गुजाबस्ती पहुंच गए। यहां पर क्षत्रिय श्री राधाकृष्ण के मकान में आप ठहरे। दूसरे दिन से आपके प्रवचनों का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। व्याख्यान की व्यवस्था यहां की एक धर्मशाला में की गई। जनता की उपस्थिति इतनी अधिक थी कि धर्मशाला का स्थान व्याख्यान के लिए छोटा हो गया था। तथा तत्पश्चात् व्याख्यान की व्यवस्था

वहाँ के एक हाईस्कूल में की गई। दस बारह दिन तक आप ने यहाँ की जनता को धर्मोपदेश दिया। गुजावस्ती से विहार करके महाराजश्री जालन्धर मंडी पहुंचे। यहां पर महाराजश्री एक रात लगाकर विचारते हुये होशियार पहुंच गये। यहां पर एक मास तक धर्मोपदेश देकर बंगा पधारे। बंगा में लगभग १०-१२ दिन खूब धूमधाम से व्याख्यान हुये। फिर ६-१० दिन तक नया शहर वालों को धर्मोपदेश देकर बलाचोर पधारे। यहां की जनता ने भी ६-१० दिन तक धर्म का लाभ उठाया।

फिर यहाँ से प्रस्थान करके महाराज श्री अपने शिष्य समुदाय के साथ रोपड़ पहुंचे। वहाँ की जनता ने आपका स्वागत किया। स्थानक में पहुंच महाराजश्री ने उपदेश दिया और मंगलपाठ सुनाया।

दूसरे दिन से आपके सार्वजनिक प्रवचनों का क्रम प्रारम्भ हो गया। बहुत बड़ी संख्या में लोग धर्म लाभ प्राप्त करते रहे। यहां के श्रीसंघ ने महाराज श्री से चातुर्मास की प्रार्थना की। महाराजश्री ने कहा, "मैं होली चातुर्मास से पूर्व आपकी चातुर्मास की विनती मानने में असमर्थ हूं क्योंकि शास्त्रीय विधान के अनुसार होली चातुर्मास पर ही विनती स्वीकार करने का विधान है। अत: होली चातुर्मास पर ही आपकी प्रार्थना पर मैं विचार कर सकता हूं। तब रोपड़ के श्रीसंघ ने पुन: विनती करते हुए महाराजश्री से नम्रनिवेदन किया कि समय आने पर आप हमारी प्रार्थना को सर्वोपरि स्थान देंगे, ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है। महाराज श्री ने ख्याल रखने का आश्वासन दिया। लगभग दस बारह दिन तक यहां की जनता को धर्मलाभ देकर महाराजश्री ने कूराली के लिए विहार कर दिया। एक दिन रास्ते में लगाकर आप कुराली पधारे। यहां पर आपके दो सार्वजनिक प्रवचन हुए। यहां प्रस्थान करके आप खरड़ पधारे। यहां पर पांच सात दिन तक खूब धर्म का प्रचार हुआ। तत्पश्चात् यहां से विहार कर आप बनूड़ आये। बनूड मे आपके सात-आठ प्रवचन हुए। जनता पर आपके विचारों का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यहां से विहार करके एक रात रास्ते में लगाकर आप राजपुरा कस्बे में पधारे। यहाँ दो दिन धर्म-प्रचार कर आपने पटियाला को प्रस्थान कर दिया।

मैं प्राथमिकता का वचन दे चुका था, अतः आप उन्हें मना लीजिए। उनकी सहमति पर ही मैं अपना इस वर्ष का चातुर्मास होशियारपुर में कर सकता हूँ।" तदनन्तर होशियारपुर के श्रीसंघ ने रोपड़ के श्री संघ से महाराजश्री को चातुर्मास होशियारपुर में करने की अनुमति प्रदान करने के लिए कहा। रोपड़ का श्रीसंघ इस बात से लिए तैयार नहीं हुआ। विवश होकर होशियारपुर का श्रीसंघ निराश होकर लौट गया। यहाँ पर चार पाँच व्याख्यान देकर आप समाना की ओर रवाना हुए। यहाँ से चल कर आप चार पाँच मील की दूरी पर स्थित एक ग्राम में ठहरे। यहीं पर आप ने आहार किया। आहार करते-करते महाराजश्री को विरेचन आया। यहीं से महाराजश्री के पेट में गड़बड़ चली, जिसने कई मास तक आपका पीछा नहीं छोड़ा। एक रात रास्ते में लगा कर आप समाना पहुंचे।

यहां की जनता ने आपका शानदार स्वागत किया। स्थानक में पहुंचने के उपरान्त आपने संक्षिप्तसा उपदेश दिया। तदनन्तर मंगल पाठ सुनाया। मंगलीक सुनने के बाद आपके चरणों की धूलि को मस्तक पर लगा कर लोग चलते बने।

दूसरे दिन से आपके सार्वजनिक प्रवचन होने लगे। सार्वजनिक प्रवचनों का वह क्रम चार पांच दिन तक की चल सका। पेट की खराबी के कारण इस शुभ कार्य में व्यवधान पड़ गया। महाराजश्री की चिकित्सा चलती रही। दस बारह दिन के बाद महाराजश्री के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। महावीर जयन्ती समीप आ रही थी। अतः यहां बिरादरी ने महाराजश्री से महावीर जयन्ती यहीं मनाने की प्रार्थना की। महाराजश्री की स्वीकृति प्राप्त कर धूमधाम से जयन्ती मनाने के कार्यक्रम में यहाँ का समाज जुट गया।

हर्ष का विषय था कि इस वर्ष महावीर जयन्ती दोनों सम्प्रदाय के लोग मिलजुल कर मना रहे थे। विशाल पंडाल बनाया गया था इस अवसर पर। कई भजन मण्डलियां आई थीं। बाहर से। महाराजश्री ने ओजस्वी तथा प्रभावोत्पादक ढंग से महावीर स्वामी जी के जीवन पर प्रकाश डाला। तदनन्तर महाराजश्री जी स्थानक में पधार गए।

अगले दिन यहां की बिरादरी ने महाराजश्री जी से विनती की कि महासती लज्जावती जी के पास एक वैरागिन है, जो समाने की रहने वाली है। समाज का विचार है कि उस बालिका की दीक्षा समाने में ही हो। महासती जी भी यहां पधारने वाली हैं। अतः वैरागिन की दीक्षा तक आप यहीं पर ठहरने का कष्ट करें। महाराजश्री ने बिरादरी की विनती स्वीकार कर ली।

दीक्षा महोत्सव का शुभ दिन आ ही गया। सर्वत्र आस-पास के गांवों में इस वैरागिन के सती बनने की चर्चा थी। लोग समझते थे कि यह स्त्री जलती चिता में जलकर सती बनेगी। दीक्षा के दिन काफी संख्या में लोग यहां आए थे। सारे नगर में वैरागिन का जुलूस धूमधाम से निकाला गया। जुलूस पंडाल में आकर समाप्त हुआ। महाजश्री जी तथा महासती लज्जावती जी अपनी शिष्याओं सहित विराजमान थे। पंडाल में आकर बैरागिन ने मुनि मण्डली को तथा साध्वियों की विधिवत् वन्दना की। तदनन्तर वह कुछ समय के बाद साध्वी का वेश धारण करके पंडाल में आई। उस का रूप लावण्य इस समय देखने योग्य था। सती किसे कहते हैं, जैन दर्शन में। इस पर महाराजश्री ने प्रकाश डालते हुए कहा कि जो वैरागिन आज भगवती दीक्षा ग्रहण कर रही है यह जीवन नंगी तलवार पर चलने के समान है। इस जीवन में मन की इच्छाओं का दमन करना होता है। विषय वासनाओं का गुलाम न बन कर उनका दमन करना ही इस जीवन का ध्येय है। जो पाँच महाव्रत का पालन मन, वचन, काया से करे उसे सती कहते हैं। आज के बाद यह बालिका इन का पालन अपने जीवन में पूर्णतया करेगी। सर्व विरति—सम्पूर्ण रीति से हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील और परिग्रह का त्याग करना महाव्रत कहलाता है।

पहले महाव्रत में तुझे सर्वथा प्रकार से जीव की हिंसा का मन, वचन और काया से त्याग करना होगा। न तो हिंसा करनी होगी और न ही हिंसा करने वाले का अनुमोदन करना होगा।

दूसरे महाव्रत में तुझे सर्वथा प्रकार से झूठ बोलने का त्याग करना होगा।

न झूठ बोलना होगा, न बुलवाना होगा और न ही बोलने वाले का समर्थन करना होगा।

तीसरे महाव्रत में तुझे सर्वथा प्रकार से चोरी करनी नहीं होगी, करानी नहीं होगी और न ही करने वाले का समर्थन करना होगा।

चौथे महाव्रत में तुझे सर्वथा प्रकार से मैथुन का सेवन करना नहीं होगा, कराना नहीं होगा और सेवन करते वाले का समर्थन भी नहीं करना होगा।

पांचवें महाव्रत में तुझे वस्तुओं का (संग्रह) परिग्रह रखने का त्याग होगा। परिग्रह रखने की प्रेरणा नहीं देनी होगी और न ही परिग्रह रखने वालों का समर्थन करना होगा।

यदि इन नियमों पर चलना तुझे स्वीकार है तो मैं दीक्षा का पाठ पढ़ाता हूँ। वैरागिन ने इन नियमों को मन, वचन और काया से स्वीकार किया। तत्पश्चात् विधिवत् दीक्षा पाठ पढ़ाए गए।

कुछ दिनों के बाद महाराजश्री ने नाभा की ओर विहार कर दिया। एक रात रास्ते में लगाकर आप नाभा पहुंचे। नाभा निवासियों ने आपका भव्य स्वागत किया। तीन चार मील तक पैदल आपके साथ पद यात्रा करके नाभा निवासी जैन स्थानक में आए। ईर्यापथिक क्रिया के उपरान्त जनता को आपने धर्मोपदेश दिया। तदनन्तर मंगलपाठ सुनाया। वन्दना-नमस्कार के बाद जन समुदाय अपने-अपने घर को चला गया। अगले दिन से प्रारम्भ हो गया महाराजश्री के सार्वजनिक प्रवचनों का कार्यक्रम क्योंकि साधु महात्माओं का जीवन परोपकार के लिए ही तो हुआ करता है। महाराजश्री की सेवा में यहां मालेर कोटला से भाई चातुर्मास की विनती करने आए। उन्होंने महाराजश्री से मालेर कोटला में चातुर्मास करने की आग्रह पूर्ण विनती की। उत्तर देते हुए महाराजश्री ने कहा, "सुखे समाधे मेरा विचार रोपड़ में चातुर्मास करने का है। मैं रोपड़ के भाइयों की चातुर्मास करने की प्रार्थना को स्वीकार कर चुका हूं, इसलिए विवश हूँ। महाराजश्री के ये वचन सुन कर उनके हृदय कमल म्लान हो गए। वे महाराजश्री की विवशता को भी समझते थे, अतः निराश लौट गए।

आपके सार्वजनिक प्रवचनों का क्रम दस वारह दिन तक ही चल पाया था कि आप की शारीरिक अस्वस्थता के कारण उसमें व्यवधान पड़ गया। अकस्मात् आपके पेट में मध्याह्न के डेढ़ वजे भयानक दर्द उठा। वेचैनी अत्यधिक थी, अतः डाक्टर साहब को बुलाया गया। देखने के उपरान्त डाक्टर ने आपको अनीमा दिया। शौच आ जाने के वाद पीड़ा कुछ कम हुई। दर्द का शमन पूर्णरूपेण नहीं हुआ था अतः दवाई भी खाने के लिए दी गई। आपकी रुग्णता का समाचार पटियाला के भाइयों को भी मिला। पटियाला से डाक्टर को साथ ले कर वे आपकी सेवा में उपस्थित हो गए। डाक्टर ने निरीक्षण करने के उपरान्त कहा, "मेरा विचार है कि महाराजश्री के पथरी है। पूर्ण निश्चय तो एक्सरे के वाद ही हो सकता है।" तदुपरान्त डाक्टर के साथ आए हुए पटियाला के भाइयों ने उपचार के लिए पटियाला पधारने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने अपनी स्वीकृति दे दी।

मार्ग में दो तीन दिन लगाकर महाराजश्री पटियाला पधार गए। पटियाला की जैन बिरादरी ने आपका स्वागत किया। दो तीन दिन के वाद हस्पताल में आपका एक्सरे लिया गया। एक्सरे देखने के वाद डाक्टर लोग इसी निष्कर्ष पर पहुंचे कि महाराजश्री के पथरी नहीं है। उपचार चलता रहा परन्तु रोग किंचित् भी कम नहीं हुआ। महाराजश्री की अस्वस्थता को देख कर यहाँ के भाइयों ने महाराजश्री से पटियाला में ही चातुर्मास करने की प्रार्थना की। महाराजश्री वोले, "आप लोगों के असीम पुण्योदय से यहां पर श्री रघुवर दयाल जी महाराज विद्यमान हैं। आप उनके विचारों से लाभ उठाकर अपने जीवन को उन्नत वनाइए। मेरा विचार रोपड़ चातुर्मास करने का है। महाराजश्री के इन वचनों के सम्मुख पटियाला विरादरी को मौन ही रहना पड़ा।

पटियाला से प्रस्थान कर महाराजश्री राजपुरा पहुंचे। यहां से चल कर वनूड़ में आपके चार-पांच व्याख्यान हुए। एक रात रास्ते में लगाकर आप खरड़ में तीन चार दिन तक ठहरे। खरड़ से कुराली और कुराली से चल कर आप रोपड़ पधारे। आपके रोपड़ पहुंचने का समाचार प्राप्त कर

अगवानी के लिए मार्ग में ही बहुत से लोग पहुंच गए थे। जब आपने रोपड़ स्थित जैन स्थानक में अपने चरणकमल रखे थे, उस समय सैंकड़ों की संख्या में लोग उपस्थित थे। स्थानक में पहुंचने के उपरान्त आपने जाने-अनजाने में मार्ग में हो जाने वाली हिंसा की आलोचना की। तत्पश्चात् संक्षिप्त रूप में धर्मोपदेश दिया। मांगलिक के बाद सब अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को चले गए।

रोपड़ चातुर्मास

विक्रम संवत् २०२०　　　　वीर संवत् २४६०　　　　ई० सन् १६६३

चातुर्मास अभी प्रारम्भ भी न हुआ था कि एक महान दुःखद समाचार मिला जिससे यहां की विरादरी को भी और महाराजश्री को भी हार्दिक दुःख हुआ। वह दारुण समाचार था व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज के देहावसान का। दूसरे दिन महाराजश्री ने व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहा कि जैन समाज के आकाश से एक देदीप्यमान नक्षत्र अस्त हो गया है। जैन समाज की जो सेवाएँ व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल जी महाराज ने की हैं, समाज उससे उऋण नहीं हो सकता। महाराजश्री मदनलाल जी में भावुकता का तथा समाज में आगे वढ़ कर प्रचार करने का तो स्वाभाविक गुण था। श्री प्रेमचन्द जी म० में एक विशेष गुण था कि जिस किसी साधु में या श्रावक में जो गुण होते थे उनको फौरन ग्रहण करते थे। अवगुण की ओर ध्यान ही नहीं देते थे। अतः श्री मदनलाल जी महाराज और मैं पुराने साथी थे। हम एक ही परिवार में से हैं। श्री मायाराम जी महाराज के दो शिष्य थे। एक थे श्री छोटेलाल जी महाराज और दूसरे थे श्री वृद्धिचन्द जी महाराज। श्री छोटे लालजी महाराज के शिष्य श्री नत्थूलाल जी महाराज थे और श्री नत्थूलाल जी महाराज के शिष्य थे श्री मदनलाल जी महाराज। श्री वृद्धिचन्द जी महाराज मेरे गुरु थे। अतः साधु के सम्वन्ध से मेरे वे भतीजे थे। काल चक्र के प्रभाव से कोई भी वच नहीं पाया। भोगी, योगी, वासुदेव, वलदेव, चक्रवर्ती आदि कोई भी इसे पराजित नहीं कर सका। इस ने सभी को अपने मुख का ग्रास वनाया है। इसके सामने फिर हमारी विसात ही क्या है? दूसरे दिन से आप काल के ही ऊपर विचार प्रकट करने लगे। आपने वताया कि—

काल समय को कहते हैं। समय का कार्य है जड़ और चेतन की पर्यायों को वदलते रहना। जो वस्तु आज कृष्ण वर्ण की है, उसका रूप वदल कर उसे दूसरे रंगों में परिवर्तित कर देना ही काल का काम है। जो वस्तु सुगन्धित है, उसे दुर्गन्ध युक्त कर देना, कड़वी वस्तु को मीठा वना देना, खुरदरे द्रव्य को सुकोमल वना देना, सुकोमल को खुरदरा वना देना, सूक्ष्म को वादर वना देना, वादर को सूक्ष्म वना देना काल का ही काम है। सुख दुःख कर्मों के अनुसार मिलता है लेकिन पर्यायों में परिवर्तन काल के ही कारण होता है। सुख दुःख भी तो पर्याय ही है। यदि इस विपय पर तर्क वितर्क किया जाए तो एक महान ग्रंथ वन जाएगा।

जिस द्रव्य में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य विद्यमान रहता है उसे द्रव्य कहते है। उत्पत्ति, विनाश और स्थिरता काल में भी किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती हैं अतः काल द्रव्य है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। वस्तुओं के रूपमें परिवर्तन का श्रेय काल को ही प्राप्त है।

काल को छः भागों में विभाजित किया गया है। प्रथम काल को सुखमा सुखम नाम से सम्वोधित किया जाता है। दूसरे काल का नाम है सुखम। तीसरे काल को सुखम दुखम, चौथे काल को दुखम सुखम, पांचवें काल को दुखम तथा छठे काल को दुखमा दुखम नाम से पुकारा जाता है। जैन शास्त्र में इन कालों को आरा नाम दिया गया है। इन आरों का समय दस करोड़ा करोड़ी सागरोपम माना गया है।

चार करोड़ा करोड़ी सागरोपम का सुखमा सुखम (एकान्त सुख वाला) नाम का पहला आरा होता है। इस आरे में मनुष्य का शरीर तीन कोस का और आयु तीन पल्योपम की होती है। उतरते आरे में शरीर दो कोस का और आयु दो पल्योपम की होती है। इस आरे में मनुष्य के शरीर में २५६ पृष्ठ-करंड (पांसली व हड्डी) और उतरते आरे के वक्त १२८ पसलियां होती हैं। वज्र ऋपम नाराच संघयन और संस्थान समचतुरंस्त्र होता है। दम्पति लोग (स्त्री और पुरुप का जोड़ा) महास्वरूप वान और सरल स्वभावी होते हैं। इन लोगों को आहार की इच्छा तीन दिन के अन्तर से होती है। उस समय

ये शरीर प्रमाणं आहार करते हैं। मिट्टी का स्वाद भी मीठा होता है। इस युग में। उतरते आरे में मिट्टी का स्वाद शर्करा जैसा होता है। दस प्रकार के कल्पवृक्षों से इस आरे के लोगों को सुखों की प्राप्ति होती है। अर्थात् जिस कल्प वृक्ष के पास जो फल होता वह है, वही फल देता है। दस ही कल्पवृक्ष मिल कर दस वस्तु प्रदान करते हैं। इस काल के लोग मन में जिस वस्तु के लिए चिन्तन करते हैं—विचारते हैं उसे ये कल्पवृक्ष देने में समर्थ नहीं होते हैं। प्रथम आरे के स्त्री और पुरुष का आयुष्य जब छः मास का शेष रह जाता है उस समय युगलिए पर भव का आयुष्य बाँधते हैं। उस समय युगलनी एक पुत्र पुत्री के जोड़े को जन्म देते हैं। ४९ दिन तक लालन पालन करने के बाद वे चतुर हो जाते हैं। फिर वे दम्पत्ति बन कर सुखोपभोगानुभव करते हुए विचरते हैं। युगलिए और युगलनी का क्षण मात्र के लिए भी वियोग नहीं होता है। उनके माता-पिता क्रम से छींक और उबासी आने से मर कर देवगति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव उन युगल के मृतक शरीर को क्षीर सागर में प्रक्षेप कर मृत्युसंस्कार (मरण क्रिया) करते हैं। इस आरे में वैर, शोक, ईर्षा, जरा, रोग आदि कुछ भी नहीं होता। लोग परिपूर्ण अंग उपाँग पाकर सुखों का रसास्वादन करते हैं। ये सुख इन्हें पूर्व भव के दान, पुण्यादि सत्कर्मों के परिणाम स्वरूप प्राप्त होते हैं।

प्रथम आरे की समाप्ति होते ही तीन करोड़ करोड़ी सागरोपम का सुखमा (केवल सुख) नामक दूसरा आरा आरम्भ होता है। उस समय पहले से वर्ण, गंध, रस, स्पर्श के पुद्गलों को उत्तमता में अनन्त गुणों की हीनता हो जाती है। इन आरे में मनुष्य का देहमान दो कोस का व आयुष्य दो पल्योपम का होता है। उतरते आरे में एक कोस का शरीर व एक पल्योपम का आयुष्य रह जाता है। घट कर पाँसलिये केवल १२८ रह जाती हैं तथा उतरते आरे में चौसठ। मनुष्यों में वज्र ऋषभनाराच संघयन व समचतुरंस्त्र संस्थान होता है। इस आरे के मनुष्यों को आहार की इच्छा दो दिन के अन्तर से होती है। तब वे शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद शर्करा जैसा रह जाता है तथा उतरते आरे में गुड़ जैसा। रस आरे में दस प्रकार के कल्पवृक्ष दस

प्रकार का मनोवांछित सुख देते हैं। मृत्यु के जब छः महीने बाकी रह जाते हैं, तब युगलनी एक पुत्र पुत्री का प्रसव करती है। चौसठ दिन के पालन-पोषण के बाद वे (पुत्र-पुत्री) दम्पति बन सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। उनके माता-पिता क्रमशः छींक और उवासी आने पर मर कर देव गति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव इन के मृतक शरीर को क्षीर सागर में डालकर मृतक क्रिया करते हैं। गति एक देव की। इस आरे में ईर्षा नहीं, वैर नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, कुरूप नहीं। परिपूर्ण अंग-उपांग पाकर लोग सुख भोगते हैं। यह प्रभाव दान-पुण्यादि सत्कर्मों का होता है।

दूसरा आरा समाप्त होते ही दो करोड़ा करोड़ सागरोपम सुखमा दुःखमा (सुख बहुत दुःख थोड़ा) नामक तीसरा आरा शुरू होता है। पहले से वर्ण, गंध, रस, स्पर्श की उत्तमता में कमी आ जाती है। क्रम से घटते-घटते मनुष्यों का देहमान एक गाउ (कोस) का व आयुष्य एक पल्योपम का रह जाता है। उतरते आरे में ५०० धनुष्य का देहमान और करोड़ पूर्व का आयुष्य रह जाता है। इस आरे में वज्र ऋषभनाराच संघयन व समचतुरंस्त्र संस्थान होती है। शरीर में ६४ पांसलियाँ रह जाती हैं। उतरते आरे के समय में केवल ३२ पाँसलियां रह जाती हैं। इस आरे में मनुष्य की आहार की इच्छा एक दिन के अन्तर से होती है तब वे शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद गुड़ जैसा रह जाता है तथा उतरते आरे में कुछ ठीक। इस आरे में दस प्रकार के कल्पवृक्ष दस प्रकार का मनोवांछित (फल) सुख देते हैं। मृत्यु के जब छः महीने शेष रह जाते हैं तब युगलिए पर भव का आयुष्य बाँधते हैं। उस समय युगलनी एक पुत्र और पुत्री का प्रसव करती है। ७९ दिन के पालन-पोषण के बाद वे पुत्र-पुत्री दम्पति बन सुखोपभोग करते हुए विचरते हैं। उनके माता-पिता क्रमशः छींक और उवासी आते ही मर कर देवगति में जाते हैं। क्षेत्राधिष्ठित देव उनके मृतक शरीर को क्षीर सागर में डालकर मृतक क्रिया करते हैं। गति एक देव की होती है।

इन तीनों आरों में युगलियों का केवल युगल धर्म रहता है। इसमें वैर,

नहीं, ईर्षा नहीं, जरा नहीं, रोग नहीं, कुरूप नहीं। ये लोग परिपूर्ण अंग उपांग पाकर सुख भोगते हैं। यह सब पूर्व भव के दान-पुण्यादि सत्कर्मों का फल मानना चाहिए।

तीसरा आरा समाप्त होते ही एक करोड़ा करोड़ सागरोपम में ४२००० वर्ष कम का दुःखमा सुखम नामक (दुःख बहुत, सुख थोड़ा) चौथा आरा लगता है। तब वर्ण, गंध, रस, स्पर्श पुद्गलों की उत्तमता में पहले से हीनता आजाती है। क्रम से घटते-घटते मनुष्यों का देहमान ५०० धनुप का और आयुष्य करोड़ा करोड़ पूर्व की रह जाती है। उतरते आरे में सात हाथ का देहमान और २०० वर्ष से कुछ कम का आयुष्य रह जाता है। इस आरे में संघयन छः, संस्थान छः एवं मनुष्यों के शरीर में ३२ पाँसलियां रह जाती हैं और उतरते आरे में केवल १६ पांसलियाँ। इस आरे की समाप्ति में ७५ वर्ष साढ़े आठ मास जब शेप रह जाते हैं, तब दसवें प्राणत देवलोक से बीस सागरोपम का आयुष्य भोग कर तथा चव कर माहणकुंड नगरी में ऋषभदत्त ब्राह्मण के यहाँ देवानन्दी ब्राह्मणी की कुक्षि में श्री महावीर स्वामी उत्पन्न हुए थे, जहां आप ८२ रात्रि पर्यन्त रहे। ८३ वीं रात्रि को शकेन्द्र का आसन चलायमान हुआ। तब शकेन्द्र ने उपयोग द्वारा मालूम किया कि श्री महावीर स्वामी भिक्षुक कुल के अन्दर उत्पन्न हुए हैं। ऐसा जानकर शकेन्द्र ने हरिणगमैपी देव को बुलाकर कहा कि तुम जाकर क्षत्रिय कुण्ड के अन्दर, सिद्धार्थ राजा के यहां, त्रिशला रानी की कुक्षि में महावीर स्वामी का गर्भ प्रवेश करो। जो गर्भ त्रिशाला देवी रानी की कुक्षि में है, उसे ले जाकर देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि में प्रतिष्ठित करो। नौ मास बीत जाने के बाद भगवान् महावीर स्वामी का जन्म हुआ। लता की तरह आप दिन-रात वृद्धि को प्राप्त होते गए। शिशु से किशोरावस्था को और किशोरावस्था से आप यौवनावस्था को प्राप्त हुए। यौवनावस्था में आपका पाणि ग्रहण संस्कार यशोदा नामक राजकुमारी के साथ सम्पन्न हुआ। साँसारिक सुखों को आप ने भोगा। प्रिय दर्शना नामक एक पुत्री ने आपके यहाँ जन्म लिया। तीस वर्ष की आयु में माता-पिता के स्वर्गवासी हो जाने के उपरान्त भाई नन्दिवर्धन से

आज्ञा प्राप्त करके आप साधु बन गए। बारह वर्ष छः मास १५ दिन तक कठिन तप, जप, ध्यान धर कर भगवान वैसाख मास में सुदी दशमी को सुवर्त नामक दिन को विजय मुहूर्त में, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में, शुभ चन्द्रमा के मुहूर्त में, वियंता नामक पिछले पहर में, जृंभिया नगर के बाहर ऋजुवालिका नदी के उत्तर दिशा तट पर सामाधिक गाथापति कृष्णी के क्षेत्र में, वैयावृत्यी यक्षालय के ईशान दिशा की ओर, शाल वृक्ष के समीप, उकड़ु तथा गो धूम्र आसन पर बैठे हुए तथा चार प्रकार का शुक्लध्यान ध्याते हुए, आठ कर्मों में से ज्ञानावरणीय, दर्शना वरणीय, मोहनीय और अन्तराय का नाश करके ज्ञान

रूपी प्रकाश का करने वाला ऐसा केवल ज्ञान केवल दर्शन आपको प्राप्त हुआ। केवल ज्ञान की प्राप्ति के बाद २९ वर्ष साढ़े पाँच मास तक आप विचरते रहे और धर्मोपदेश देते रहे। चौथे आरे के जब तीन वर्ष साढ़े आठ मास शेष रह गए थे तब बहत्तर वर्ष की आयु में कार्तिक वदी अमावस्या को पावापुरी के अन्दर अकेले (बिना साधुओं के परिवार के) मोक्ष पधारे। भगवान् के पांच कल्याणिक उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में हुए। पहला कल्याणिक दशवें प्राणत देव लोक से चल कर देवानन्दी की कोख में उत्पन्न होना था। दूसरे कल्याणिक में गर्भ का हरण हुआ था। तीसरे कल्याणिक में जन्म हुआ था। चौथे कल्याणिक में दीक्षा ग्रहण की थी तथा पाँचवें कल्याणिक में केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। स्वाती नक्षत्र में भगवान् महावीर स्वामी जी मोक्ष पधारे थे। भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण के बाद गौतम स्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। श्री गौतम स्वामी बारह वर्ष पर्यन्त पूवर्ज्या पाल कर मोक्ष पधारे थे। उसी समय श्री सुधर्मा स्वामी को केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था जो आठ वर्ष तक केवल पूवर्ज्या पाल कर मोक्ष पधारे थे। उसी समय श्री जम्बू स्वामी को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था। उन्होंने केवल चवालीस वर्ष तक प्रवर्ज्या पाली। तत्पश्चात् ये मोक्ष को प्राप्त हुए। श्री महावीर स्वामी के मोक्ष पधारने के बाद चौंसठ वर्ष तक केवल ज्ञान रहा। तदनन्तर इसका विच्छेद (नष्ट) हो गया। इस आरे में पैदा हुए को पांचवें आरे में मोक्ष मिल सकता है परन्तु पांचवें आरे में पैदा होने वाले को पांचवें आरे में मोक्ष की

प्राप्ति नहीं हो सकती। श्री जम्बू स्वामी जी के मोक्ष पधारने के वाद दस वोल विच्छेद हुए। परम अवधि ज्ञान, मनपर्यय: ज्ञान, केवल ज्ञान, परिहार विशुद्ध चारित्र, सूक्ष्म संपराय चारित्र, यथाख्यात चारित्र, पुनाक लब्धि, क्षपक-उपशम श्रेणी, आहारिक शरीर और जिन कल्पी साधु।

चौथे आरे के समाप्त होते ही २१००० वर्ष का दुःखम नामक पांचवां आरा आता है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श की उत्तम पर्यायों में पहले की अपेक्षा अनन्त गुणा हीनता आ जाती है। क्रम से घटते-घटते सात हाथ का (उत्कृष्ट) शरीर एवं २०० वर्ष का आयुष्य रह जाता है। उतरते आरे में एक हाथ का शरीर व २० वर्ष का आयुष्य रह जाता है। इस आरे के संघयन छः, संस्थान छः उतरते आरे में सेवार्त संघयन, हूंडक संस्थान होगा। शरीर में केवल सोलह पांसलियां तथा घटते आरे में केवल आठ पांसलियां ही रहेंगी। मनुष्यों को इस आरे में दो समय आहार की इच्छा होती है, तव वे शरीर प्रमाण आहार करते हैं। पृथ्वी का स्वाद कुछ ठीक-ठीक सा लगता है। उतरते आरे में कुम्भहार की भट्टी की राख के समान स्वाद होता है। इस आरे में चार गति होती हैं। पांचवें आरे के ३२ लक्षण निम्नलिखित हैं :—

१, नगर (शहर) गाँव जैसे होते हैं।
२. ग्राम श्मशान जैसे होते हैं।
३. सुकुलोत्पन्न दास दासी होते हैं।
४. प्रधान (मंत्री) लालची होते हैं।
५. यम जैसे क्रूर दंड देने वाले राजा होते हैं।
६. कुलीन स्त्रियां दुराचारिणी हो जाती हैं।
७. कुलीन स्त्री वेश्या समान कर्म करने वाली होती है।
८. पुत्र पिता की आज्ञा न मानने वाले होते हैं।
९. शिष्य गुरु की निन्दा करने वाले होते हैं।
१०. दुर्जन लोग सुख से रहेंगे।
११. सज्जन लोग दुःखी रहेंगे।
१२. दुर्भिक्ष (अकाल) वहुत अधिक पड़ेंगे।

१३. सर्प, बिच्छू, दंश मरकुणादि क्षुद्र जीवों की उत्पत्ति अधिक मात्रा में होगी।

१४. ब्राह्मण लोग लालची होंगे ।

१५. हिंसा धर्म के प्रवर्तक बहुत से लोग होंगे।

१६. एक मत के अनेक मतान्तर बनेंगे।

१७. मिथ्यात्वी देव अधिक होंगे।

१८. मित्यात्वी लोग भी अधिक संख्या में होंगे।

१९. लोगों को देवताओं के दर्शन दुर्लभ होंगे।

२०. वैताढ्य पर्वत के विद्याधरों की विद्या का प्रभाव बहुत कम मात्रा में लोगों पर पड़ेगा ।

२१. घी, दूध, दही में स्निग्धता (चिकनाई) की मात्रा बहुत ही कम मिलेगी।

२२. बलद (ऋषभ-बैल) प्रमुख पशु थोड़ी आयु वाले होंगे।

२३. साधु-साध्वियों को मास, कल्प, एवं चातुर्मास आदि में रहने के लिए स्थान कम मात्रा में प्राप्त होंगे।

२४. साधु की १२ प्रतिमा को और श्रावक की ११ प्रतिमा को पालने वाले इस आरे में नहीं होंगे।

२५. गुरु शिष्य को नहीं पढ़ाएगा।

२६. शिष्य अविनीत होंगे।

२७. अधर्मी, क्लेशी, कदाग्रही, धूर्त, दगाबाज व दुष्ट मनुष्य अधिक होंगे।

२८. आचार्य अपने गच्छ व सम्प्रदाय की परम्परा समाचारी अलग-अलग प्रवर्तावेंगे तथा मूर्ख मनुष्यों को मोह मिथ्यात्व के जाल में डालेंगे। उत्सूत्र प्ररूपक लोगों को भ्रम में फंसाने वाले, निन्दनीक कुबुद्धि एवं नाममात्र के धर्मी लोग होंगे। प्रत्येक आचार्य लोगों को अपनी-अपनी परम्परा में रखने वाले होंगे।

२९. सरल, भद्रिक, न्यायी और प्रमाणिक पुरुष न्यून मात्रा में मिलेंगे।

३०. म्लेच्छ राजा अधिक होंगे।

३१. हिन्दू राजा अल्प ऋद्धि वाले एवं कम होंगे।

३२. सकुलोत्पन्न राजा नीच कर्म करने वाले होंगे।

इस आरे में धन का नाश होगा। लोहे की धातु रहेगी। चर्म की मोहरें चलेंगी।

जिसके पास ये वस्तुएँ रहेंगी वे धनवान कहलाएंगे। इस आरे में मनुष्य को उपवास खमण (मास) के समान लगेगा।

इस आरे में ज्ञान का विनाश सब प्रकार से होगा। केवल दशवैकालिक सूत्र के चार अध्ययन रहेंगे। कुछ लोगों की राय है कि दशवैकालिक, उत्तराध्ययन आचारांग और आवश्यक ये चार सूत्र रह जाएंगे। इसमें चार जीव एक भवावतारी होंगे। १ दुपसह नामक आचार्य २ फाल्गुनी नामक साध्वी ३ जिनदास श्रावक और ४ नागश्री श्राविका।

आषाढ़ सुदि १५ को शकेन्द्र का आसन चलायमान होगा। तब शकेन्द्र उपयोग द्वारा देखेंगे कि आज पांचवां आरा समाप्त होकर छठा आरा लगने जा रहा है। तब शकेन्द्र पृथ्वी पर आकर इन चारों प्राणियों को कहेंगे कि कल छठा आरा लगेगा अतः आलोचना एवं प्रतिक्रमण द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करो। ऐसा सुनकर चारों ये प्राणी क्षमा भाव धारण कर संथारा करेंगे। उस समय संवर्तक, महा संवर्तक नामक हवाएँ चलेंगी जिनके प्रभाव से पर्वत, गढ़, कोट, कुएँ, बावड़ियाँ आदि सभी स्थानक नष्ट हो जाएँगे केवल वैताढ्य पर्वत, गंगा, सिन्धु, ऋषभ कुट और लवण की खाड़ी स्थानक को छोड़ कर। ये चार जीव समाधि परिणाम से काल करके प्रथम देवलोक में जाएँगे। तदनन्तर प्रथम पहर में जैनधर्म का विच्छेद होगा। दूसरे पहर में मिथ्यात्वियों के धर्म का विच्छेद होगा। तीसरे पहर में राजनीति और चौथे पहर में बादर अग्नि का विच्छेद होगा। पांचवे आरे के अन्त तक जीव चार गति में जाते हैं।

पंच आरे की समाप्ति होते ही २१००० वर्ष का दु:खम दु:खमी नामक छठा आरा आरम्भ होता है। तब भारत क्षेत्राधिष्ठित देव पंचम आरे के नष्ट होने वाले पशु, मनुष्यों में से बीज रूप कुछ मनुष्यों को उठा कर ले जाएगा और उन्हें वैताढ्य पर्वत के उत्तर और दक्षिण में गंगा और सिन्धु नदी के किनारों पर जो तीन-तीन मंजिल वाले ७२ बिल हैं उन में उन पशुओं को और मनुष्यों को रखेगा। छठे आरे में पांचवें आरे की अपेक्षा वस्तुओं में वर्ण, रस, गंध, स्पर्श आदि पुद्गलों की पर्यायों में अनंत गुणा हानि(कमी)हो जाएगी। क्रम से घटते-घटते इस आरे में देहमान एक हाथ का और आयुष्य बीस वर्ष का रहेगा उतरते आरे में मूठ कम एक हाथ का और आयुष्य सोलह वर्ष का रह जाएगा। इस आरे में संघयन एक सेवार्त, संस्थान एक हूँडक रहेगा। उतरते आरे में भी ऐसी ही स्थिति रहेगी। मनुष्य के शरीर में आठ पाँसलियां एवं उतरते आरे में केवल चार पाँसलिया रह जाएंगी। इस आरे में छ: वर्ष की स्त्री गर्भ धारण करने लग जाएगी तथा कुत्ती की तरह परिवार के साथ विचरेगी। गंगा, सिन्धु नदी का ६२½ योजन का पाट रथ के चक्र के समान रह जाएगा। दोनों नदियों में जल गाड़ी की धूरी के डूबने जितना जल रह जाएगा। मत्स, कच्छ आदि जीव जन्तु विशेष रूप से नदियों के जल में प्राप्त होंगे। ७२ बिलों में रहने वाले मनुष्य संध्या तथा प्रभात काल की वेला में इन जीवों को जल से बाहर निकाल कर नदी के किनारे रेत में दबा कर रख देंगे। वे जीव सूर्य की तेजी तथा चन्द्रमा की प्रचण्ड शीतलता से भुन जाएंगे। मनुष्य इनका आहार करेंगे और पशु इनकी हड्डियों को चूस-चूस कर निर्वाह करेंगे। मनुष्यों की खोपड़ी में लोग जल पीएंगे। इस प्रकार २१००० वर्ष पूरे होंगे। जो मनुष्य दान पुण्य रहित होंगे, णमोकार मन्त्र रहित तथा प्रत्याख्यान रहित होंगे, केवल वे ही इस आरे में उत्पन्न होंगे।

प्रश्न उठता है कि इन्हें "आरा" नाम क्यों दिया गया है ? आरा और काल के कार्यों में समानता है। जिस प्रकार आरा लकड़ी आदि वस्तुओं को चीर-चीर कर भिन्न-भिन्न कर देता है वैसे ही काल जीव और पुद्गल में परि-

वर्तन कर उनका विनाश करता है। पुद्गल का परिवर्तन क्या है ? पुद्गल के शब्द, रूप, रस, गन्ध स्पर्श को भिन्न-भिन्न वस्तुओं में परिवर्तित करना है। नारकीय रूप, तिर्यञ्च रूप, मनुष्य रूप और देवतारूप में परिवर्तित करना, और स्त्रीपने में, पुरुषपने में, नपुंसकपने में, त्रसपने में, सूक्ष्मपने में, स्थावरपने में बादरपने में परिवर्तित करना काल का ही तो काम है।

काल का विस्तार महान है। कभी-कभी हम यह भी कह देते हैं काल केवल अढ़ाई द्वीप के अन्तर्गत ही है। यह कथन ज्योतिष चक्र के कारण कहा जाता है। अढ़ाई द्वीप के अन्दर ही ज्योतिष-चन्द्रमा आदि पाँचों घूमने वाले है, अतः अढ़ाई द्वीप में ही दिन और रात का चक्र चलता है। भगवती सूत्र में इसी दृष्टिकोण के अन्तर्गत सूर्य को आदित्य कह कर पुकारा गया है। आदित्य का अर्थ है दिन की शुरूआत करने वाला। अर्थात् "दिनं करोतीति दिनकरः।" चन्द्रमा को निशिकर कहा गया है। अर्थात् रात का करने वाला। प्रश्न उठता है कि क्या यह वास्तव में ठीक है ? यह कथन यहां पर व्यवहार रूप है। भगवती सूत्र सत्तक पांचवां उद्देसा नौवें में गौतम स्वामी भगवान् महावीर जीसे प्रश्न करते हैं कि हे भगवन् दिन क्या चीज है और रात क्या चीज है ?

भगवान् कहते हैं कि हे गौतम ! दिन भी पुद्गल है और रात भी पुद्गल है।

गौतम—"हे भगवन् ! दिन में प्रकाश क्यों होता है और रात को अन्धकार क्यों होता है ?"

भगवान् बोले, "हे गौतम ! दिन के पुद्गल शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभ रस और शुभ स्पर्श अर्थात् प्रकाश करने वाले हैं। रात्रि के पुद्गल अशुभ वर्ण, अशुभ गन्ध, अशुभ रस और अशुभ स्पर्श वाले हैं, इसलिए रात्रि अन्धकार-रूप है।"

तदनन्तर गौतम स्वामी जीवों के विषय में पूछते हैं कि हे भगवन् ! नारकी अन्धकार रूप है, प्रकाश रूप है, शुभ रूप है या अशुभ रूप है ?"

भगवान् ने फरमाया कि अशुभ परिणमन है। इसी प्रकार पाँच स्थावर, बेइन्द्रिय और त्रेइन्द्रिय के विषय में भी जानना चाहिए। चतुरिन्द्रिय, असन्नी पंचेन्द्रिय, सन्नी तिर्यंच और सन्नी मनुष्य, इन दण्डकों के जीव अन्धेरे, प्रकाश रूप, अशुभ और शुभ परिणाम वाले होते है। इन जीवों में चक्षुन्द्रिय जीव हैं, अतः इसकी अपेक्षा से ये जीव प्रकाश रूप हैं। तेरह दण्डकों के सभी देव प्रकाश रूप हैं, शुभ वर्ण हैं, शुभ गन्ध वाले हैं, शुभ रस वाले हैं।

अढ़ाई द्वीप के ज्योतिष घूमने वाले हैं और अढ़ाई द्वीप से बाहर के ज्योतिष स्थिर रहते हैं, इसलिए काल अढ़ाई द्वीप में माना गया है! वैसे काल लोक मात्र है। लोक में जितनी भी जीव अजीव की पर्याय बदलती हैं, सबके पीछे काल है अर्थात् काल ही पर्याय का परिवर्तन कर्ता है। काल को अनन्त माना है।

"काल" पर आपके द्वारा प्रदत्त विचारों से जनता के ज्ञान में वृद्धि हुई। शारीरिकअस्वस्थता के कारण यहाँ पर आपके सार्वजनिक प्रवचन नहीं हो सके। स्वास्थ्य के ठीक न रहने पर भी आप स्थानक में व्याख्यान देते रहे। नाभा में जो पेट में पीड़ा आप को हुई थी, वह चलती ही रही। चांदनी चौक दिल्ली से लाला किशनचन्द अपनी धर्मपत्नी नगीना बाई के साथ श्री राम भारती जी वैद्य को लेकर आए। उपचार किया गया। वैद्य जी कि चिकित्सा से रुपए में चार आने का लाभ महाराजश्री को हुआ।

तभी पर्यूषण पर्वाधिराज आ गए। इस धार्मिक पर्व के दिनों में खूब धर्म ध्यान हुआ। तपस्या का ठाठ लग गया। व्रत, वेले, तेले, चोले अट्ठाईयाँ की गई। इन दिनों में महाराजश्री ने अन्तगड़ सूत्र पढ़ कर सुनाया जोकि पर्यूषण पर्वाधिराज के आठ दिनों में पूरा किया गया। इन दिनों महाराजश्री के दर्शनार्थ हजारों लोग आते रहे।

चातुर्मास की समाप्ति पर महाराजश्री को यहां की जनता ने अभिनन्दन पत्र देकर अपनी श्रद्धा के पुष्प अर्पित किए। विहार वाले दिन विशाल जन समूह महाराजश्री को छोड़ने के लिए काफी दूर तक गया।

यहाँ से चल कर महाराजश्री विक्को गांव में पहुंचे यहाँ पर आप केवल रात्रि ही ठहरे। यहाँ पर आपने सार्वजनिक व्यांख्यान दिया। रोपड़ के भाई भी यहाँ काफी संख्या में आ गए थे अतः उपस्थिति व्याख्यान में जनता की अच्छी थी। यहाँ से प्रस्थान करके महाराजश्री नालागढ़ पधारे। यहां के भाइयों ने आपका हार्दिक स्वागत किया। सैकड़ों लोग अगवानी के लिए आए। उनके साथ महाराजश्री स्थानक में पहुंचे। मंगलपाठ के बाद लोग अपनी-अपनी राह हो लिए। महाराजश्री यहां पन्द्रह वीस दिन तक विराजमान रहे। वह क्षेत्र आपकी अन्तिम फरसना थी। व्याख्यान का क्रम प्रतिदिन चलता रहा।

यहाँ से बिहार कर भाटिया ग्राम को अपनी चरण धूलि से पवित्र कर आप दभोटा पहुँचे। दभोटा महाराजश्री का साँसारिक गांव है। यह क्षेत्र भी आपकी अन्तिम चरण फरसना रहा। यहाँ आप के सार्वजनिक प्रवचन हुए। आठ सौ की उपस्थिति व्याख्यान में हो जाती थी। रविवार के दिन आस-पास के गांवों से भी लोग सैकड़ों की संख्या में दर्शन करने तथा व्याख्यान का लाभ उठाने के लिए आए। महाराजश्री के संसार के मकान को भी लोगों ने देखा।

यहां से चलकर शिष्यमण्डली सहित महाराजश्री भरतगढ़ पधारे। यहाँ आपके चार पाँच सार्वजनिक व्याख्यान हुए। अब आपको शूगर की बीमारी ने आ घेरा। अतः शीघ्र ही विहार कर आप रोपड़ पहुंच गए क्योंकि रोपड़ में चिकित्सा के साधन वहाँ से अच्छे उपलब्ध हो सकते थे। यहां आपका उपचार चलता रहा। इंजेक्शनों से आप की बीमारी दूर हुई। स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होने पर आप बलाचौर पहुंच गए। बलाचौर एक कस्बा है। यहाँ के भाइयों से धार्मिक लगन प्रबल रही है। अतः यहाँ के भाइयों ने महाराजश्री का भव्य स्वागत किया। स्थानक में पहुंच कर आपने मंगलपाठ सुनाया। स्थानक के नीचे के कमरे में ही महाराजश्री ने अमृत वर्षा की। एक बार भव भ्रमण (संसार में जीव का आवागमन कैसे होता है) पर आपने उपदेश दिया। आप ने कहा कि भगवती सूत्र के १२ वें शतक के सातवें उद्देशे में गौतम स्वामी

भगवान् महावीर स्वामी जी से पूछते हैं :—

"हे भगवन् ! यह लोक कितना बड़ा है ?"

"हे गौतम ! यह लोक असंख्यात कोड़ा कोड़ी योजन का लम्बा चौड़ा है।"

"हे भगवन् ! इतने बड़े लोक में एक भी ऐसा कोई प्रदेश है, जहां इस जीव ने जन्म मरण नहीं किया हो ?"

"हे गौतम! नो इणट्ठे समट्ठे।" अर्थात् ऐसा एक भी आकाश प्रदेश नहीं रहा है, जहां इस जीव ने जन्ममरण नहीं किया हो। यथा—बकरियों के बाड़े का दृष्टान्त। यदि कोई पुरुष सौ बकरियों के लिए एक विशाल बाड़ा बनवाए और उसमें कम से कम तीन चार तथा अधिक से अधिक एक हजार बकरियां रखे। उनके लिए वहां खूब अधिक मात्रा में घास तथा पानी की व्यवस्था की जाये। यदि वहां बकरियां कम से कम एक दो तीन दिन तथा अधिक से अधिक छः मास तक रखी जाएं तो उस बाड़े का ऐसा कोई परमाणु पुद्गल मात्र प्रदेश उन बकरियों की मिगणियों, मूत्रादि तथा खुर नख आदि से अस्पर्शित तो रह सकता है परन्तु इस विशाल लोक में लोक के शाश्वत भाव की अपेक्षा, संसार के अनादि भाव की अपेक्षा, नित्य भाव की अपेक्षा, कर्मों की अधिकता की अपेक्षा तथा जन्ममरण की अधिकता की अपेक्षा से इस लोक में कोई भी ऐसा आकाश नहीं जहां जीव न जन्मा हो और न मरा हो। नर्क आदि सभी स्थानों में सभी जीव त्रस एवं स्थावर रूप में अनन्त बार उत्पन्न हुए हैं परन्तु तीसरे देवलोक से बारहवें देवलोक तक तथा नव ग्रैवेयकों में देवीपने में उत्पन्न नहीं हुए तथा पांच अनुत्तर विमानों में भी उत्पन्न नहीं हुए।"

"हे भगवन् ! यह जीव सभी जीवों के मातापने, पितापने, भाई, बहन, स्त्री, पुत्र, पुत्री और पुत्रवधू रूप क्या उत्पन्न हुआ है ?"

"हे गौतम ! अनेक बार तथा अनन्त बार उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार सभी जीव भी इस जीव के माता-पिता आदि परिवार पने उत्पन्न हुए हैं।"

"हे भगवन् ! क्या यह जीव सभी जीवों के शत्रुपने, वैरीपने, घातक, वधक, प्रत्यनीक और मित्रपने उत्पन्न हुआ है ?"

"हे गौतम ! यह जीव अनेक वार तथा अनन्त वार उत्पन्न हुआ है । इसी प्रकार यह जीव सभी जीवों का राजा, युवराज, सार्थवाह, दास, चाकर, शिष्य और शत्रुपने अनेक वार अथवा अनन्त वार उत्पन्न हुआ है । सभी जीव भी इसी प्रकार इसी जीव के राजापने यावत् शत्रुपने अनेक वार तथा अनन्त वार उत्पन्न हुए हैं क्योंकि लोक शाश्वत् है, अनादि है । जीव नित्य है । वह अपने क्रमानुसार जन्ममरण करता है । इससे जीव संसार में भ्रमण करता है ।

अनन्त काल से जीव की आदि तो है ही नहीं । इस जीव का अनादि काल से जन्ममरण चक्र चल रहा है । जीव के चार भांगे हैं । अनादि अनन्त, अनादि शान्त, सादि सान्त, सादि अनन्त । अनादि अनन्त तो अभव्य जीव हैं । अनादि सान्त भव्य जीव हैं । सादि सान्त चार गतियों में परिभ्रमण करते हैं । सिद्ध गति में जाने पर जिनके परिभ्रमण की इतिश्री हो जाती है, वे सादि अनन्त कहलाते हैं । सिद्धों की सादि है, अन्त नहीं । इसलिए यह परिभ्रमण बड़ा भयंकर है । इस प्रकार से महाराजश्री ने आगमानुसार उपरोक्त वर्णन यहां की जनता के समक्ष रखा । महाराजश्री यहां एक कल्प तक विराजमान रहे । जैन तथा जैनेतर जनता ने खूब धर्म लाभ लिया ।

यहाँ से विहार करके आप नवांशहर पहुंचे । यहाँ की जैन बिरादरी ने आपका भव्य स्वागत किया । दूसरे दिन से ही आपके प्रवचनों का क्रम प्रारम्भ हो गया । आपकी सेवा में विनती हेतु लुधयाना का श्रीसंघ आया । महाराजश्री ने लुध्याना श्री संघ की विनती स्वीकार कर ली । पाँच-सात दिन तक महाराजश्री के प्रवचनों का क्रम जारी रहा । तदनन्तर महाराजश्री के पेट में फिर असह्य दर्द उठा । डाक्टरों को दिखाया गया और उपचार चलता रहा । रुग्णावस्था में ही विहार करके महाराजश्री बंगा पहुंचे । यहां आपके तीन चार व्याख्यान हुए ।

यहाँ से प्रस्थान कर आप फलोर आए । यहाँ पर महाराजश्री तीन चार दिवस तक ठहरे । यहाँ से विहार कर महाराजश्री लुध्याना पधारे । लुध्याना का श्रीसंघ महाराजश्री को लेने के लिए तीन चार मील तक गया था । प्रभ

की मधुर ध्वनि से तथा महाराजश्री के नारों से अवनि और अम्बर गूंज उठे थे उस दिन। विशाल जुलूस बन गया था अपने आप। स्थानक में पहुंच कर महाराजश्री ने मंगलपाठ सुनाया। तदनन्तर जन समूह चरणरज को मस्तक पर लगा कर विदा हो गया।

महाराजश्री का स्वास्थ्य अब भी ठीक नहीं था। गैस का भयंकर प्रकोप था उदर में। इसी कारण उदर पीड़ा से ग्रसित थे महाराजश्री जी। तभी लाला इन्द्रसेन जी श्री रामभारती वैद्य जी को साथ लेकर महाराजश्री के चरणारविन्दों में आ पहुंचे। श्री रामभारती वैद्य जी की औषधि से महाराजश्री की उदर पीड़ा कुछ कम हो गई।

इन्हीं दिनों महाराजश्री की सेवा में जालन्धर श्रीसंघ का प्रतिनिधिमण्डल आ पहुंचा। उन्होंने महाराजश्री से नम्र निवेदन किया, "गुरुदेव। महावीर जयन्ती के पावन दिवस पर हमारा विचार हाई स्कूल का उद्‌घाटन करने का है। महावीर जयन्ती भी मनाई जा सकेगी और हाई स्कूल का समारोह भी धूम-धाम से सम्पन्न हो जाएगा। अतः आप महावीर जयन्ती पर हमारे यहाँ पधार कर हमें कृतार्थ करें।" जालन्धर श्रीसंघ के प्रतिनिधि मण्डल के आग्रह को महाराजश्री न टाल सके। आपने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। स्वीकृति प्राप्त कर जालन्धर श्रीसंघ का प्रतिनिधि मण्डल चला गया।

कुछ दिन बाद पुनः जालन्धर श्रीसंघ का प्रतिनिधि मण्डल महाराजश्री के पास आया। उन्होंने महाराजश्री से निवेदन किया, "गुरुदेव ! हमारी विनती के बाद जालन्धर शहर में श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्य श्री समुद्र विजय जी का भी पदार्पण हो गया था। महावीर जयन्ती का महानपर्व सभी जैन मिलकर मनाएं। इस भावना से प्रेरित होकर हमने उनसे भी विनती की है। उन्होंने भी हमारी प्रार्थना को सहर्ष स्वीकार कर लिया है। इसके विषय में आपका क्या विचार है ?

"महावीर जयन्ती का महान पर्व यदि समस्त जैन समाज मिलकर मनाए तो इस से बढ़ कर श्रेष्ठ कार्य क्या हो सकता है ? मेरी भावना शीघ्र ही

जालन्धर पहुंचने की है।"

महाराजश्री के यह वचन सुन कर जालन्धर श्रीसंघ के उल्लास की कोई सीमा न रही। वहां से लौट कर वे तन, मन, धन से उत्सव की तैयारी में संलग्न हो गए।

फिलौर और फगवाड़ा में धर्म दुन्दभि का नाद बजाते हुए महाराजश्री जालन्धर छावनी पधार गए। जालन्धर छावनी से चलकर महाराजश्री जालन्धर शहर पधारे। साथ में हजारों की संख्या में थे नर, नारी, बाल, वृद्ध। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सन्त जनक विजय तथा जय विजय जी भी साथ थे। महाराजश्री जी लाला सन्तराम जी अग्रवाल के (निवास स्थान) मकान में ठहरे थे। दोनों सम्प्रदायों का व्याख्यान एक ही स्थान पर हुआ। मंच बैठने के दोनों के अलग-अलग थे। व्याख्यान से पूर्व भाइयों के भजन हुए। तदनन्तर महासती सीता जी ने अपने विचार उपस्थित जनता के समक्ष रखे। इन के बाद श्वेताम्बर सम्प्रदाय के सन्त जनक विजय जी का प्रवचन हुआ। सन्त जनक विजय जी के बाद महाराजश्री प्रेमचन्द जी महाराज का सारगर्भित प्रवचन हुआ। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आचार्य श्री समुद्र विजय जी ने अपने हृदयोद्गार प्रकट करते हुए कहा, "महाराजश्री प्रेमचन्द जी महाराज पंजाब के केसरी हैं। वास्तव में इनकी वाणी में ओज़ है। विचारों में तारतम्य है। भाषा और शैली प्रांजुलता से परिपूर्ण है और मधुर है। इससे पूर्व भी गुजरांवाला में हमारा चातुर्मास इकट्ठा हुआ था परन्तु व्याख्यान अलग-अलग होते रहे थे जिसके परिणाम स्वरूप इनके विचारों को श्रवण करने का सुअवसर प्राप्त नहीं हो सका। स्यालकोट में भी हमारे पूज्य—आचार्य श्री वल्लभ विजय जी के साथ आपका चातुर्मास हुआ था परन्तु उस समय आपके विचार सुनने का अवसर मुझे प्राप्त नहीं हुआ। सौभाग्य से आज आपके विचार सुने हैं। आपका प्रवचन वास्तव में प्रभावोत्पादक है।" सामूहिक एकत्रित व्याख्यान की यह परम्परा तीन चार दिन तक चली।

हाई स्कूल का उद्घाटन समारोह दिवस महावीर जयन्ती पर्व से एक दिन पर्व मनाया गया। इस उद्घाटन समारोह में महाराज श्री प्रेमचन्द जी तथा

श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुनि गण भी अपने-अपने विचार रखेंगे। इस आशय की घोषणा नगर में कर दी गई थी। अतः पंडाल खचाखच भरा हुआ था। सर्व प्रथम भजन मण्डलियों के मधुर गीतों की स्वर लहरियों से पंडाल गूंज गया। तदनन्तर श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुनियों ने दान की महत्ता पर अपने विचार जनता के समक्ष रखे। प्रवचन समयानुसार तथा प्रभावशाली थे। अब महाराजश्री प्रेमचन्द जी की सिंह गर्जना हुई। आप ने भी दान की महत्ता पर ही उपदेश दिया। इसके बाद समाज के कर्णधारों ने जनता से दान की अपील की। साठ-बासठ हजार की राशि एकत्रित हो जाना मुनिगण की कृपा का ही परिणाम था।

महावीर जयन्ती का पावन दिवस अगले दिन इसी स्थान पर मनाया गया। अपूर्व जोश था जनसमुदाय में। पंडाल खचाखच भरा हुआ था। कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। महामुनियों ने अपने विचार प्रकट किए। श्वेताम्बर सम्प्रदाय के मुनियों ने भगवान् महावीर के जीवन चरित्र पर प्रकाश डाला। महाराजश्री प्रेमचन्द जी ने भगवान् महावीर के जीवन पर प्रकाश डालते हुए उनके चार सिद्धान्तों का विस्तृत विवेचन किया। महावीर के वे चार सिद्धान्त थे :—

आत्मवाद, क्रियावाद, लोकवाद और कर्मवाद।

आत्मवाद क्या है? इस पर महाराजश्री ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा कि कई लोग यह मानते हैं कि आत्मा की उत्पत्ति पाँच भूतों से हुई है। ये पांच भूत जड़ है और इनसे पैदा होने वाली आत्मा चेतन है। मरने के बाद चेतन आत्मा का अस्तित्व समाप्त हो जाता है। जैन दर्शन इस सिद्धान्त की मान्यता का समर्थन नहीं करता। जैन दर्शन में जीव का लक्षण इस प्रकार किया गया है। जीव भूतकाल में भी जीवित था। वर्तमान काल में भी जीवित है और भविष्यत् काल में भी जीवित रहेगा। आत्मा तीनों कालों में रहती है। उसका कभी विनाश नहीं होता, जैन ग्रंथों की ऐसी मान्यता है।

क्रियावाद चार प्रकार का है। क्रियावादी, अक्रियादी, अज्ञान वादी और

विनयवादी। इन चारों प्रकार के वादों में क्रियावादी सम्यक दृष्टि है अर्थात् मोक्षगामी है। तीन वाद मिथ्या विश्वास वाले हैं। समस्त जीव में ये चारों वाद पाए जाते हैं। भगवती सूत्र के तीसवें शतक में चार वाद माने गए हैं, जिसके ग्यारह उद्देसे हैं। गौतम स्वामी भगवान् महावीर जी से पूछते हैं कि—

"हे भगवन् ! समूचे जीव में कितने वाद हैं ?"

"हे गौतम ! समूचे जीव में चारों ही वाद हैं।"

"हे भगवन् ! जीव तो आठ प्रकार के माने गए हैं। छः लेश्या वाले, एक सलेशी और एक अलेशी ?"

"हे गौतम ! छः लेश्या वालों में और सलेशी में चारों ही वाद हैं। अलेशी क्रियावादी है।"

"हे भगवान् ! जीव तो दो प्रकार के होते हैं। शुक्ल पक्षी और कृष्ण पक्षी ?"

"हे गौतम ! शुक्ल पक्षी में चारों ही वाद हैं और कृष्ण पक्षी में तीन वाद हैं।"

"हे भगवन् ! समदृष्टि, मिथ्यादृष्टि तथा मिश्र दृष्टि के कारण जीव के तीन भेद जो माने गए है, उनमें कौन से वाद हैं ?"

"हे गौतम !" समदृष्टि क्रियावादी है। मिश्रदृष्टि में दो वाद हैं—विनय वाद और अज्ञानवाद। मिथ्यादृष्टि में तीन वाद हैं—अक्रियावाद, अज्ञानवाद और विनयवाद।"

"हे भगवन ! जीव तो पांच ज्ञान और तीन अज्ञान के भेद से आठ प्रकार के हैं। उनमें कौन से वाद हैं ?"

"हे गौतम ! पांच ज्ञान में क्रियावाद है। तीन अज्ञान में तीन वाद हैं।"

"हे भगवन् ! जीव संज्ञायुक्त और नो संज्ञा युक्त के भेद से दो प्रकार के हैं। उन में वाद की स्थिति क्या है ?"

"हे गौतम। संज्ञा युक्त में चारों ही वाद पाए जाते हैं और नौ संज्ञा युक्त में क्रियावाद है।"

"हे भगवन् ! जीव तो पांच प्रकार के होते हैं। स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुंसक वेद, सवेदी और अवेदी। इन में कौन-कौन से वाद हैं?"

"हे गौतम ! प्रथम चार में चारों ही वाद पाए जाते हैं। अवेदी क्रिया-वादी हैं।"

"हे भगवन् ! छः प्रकार के जीव कौन-कौन से हैं?"

"हे गौतम ! क्रोध कषाय, मान कषाय, माया कषाय, लोभ कषाय, सकषाय, अकषाय, प्रथम पांच कषाय में चारों ही वाद पाए जाते हैं। अकषायी क्रियावादी होता है।"

"हे भगवन् ! पांच प्रकार के जीव कौन-कौन से हैं?"

"मन जोगी, वचन जोगी, काया जोगी, सजोगी और अजोगी। ये पांच प्रकार के जीव हैं। प्रथम चार में उन में चारों ही वाद पाए जाते हैं। अजोगी में क्रियावादी वाद है।"

"हे भगवन् ! सागारों उत्ता (वोहता) अनगारो उत्ता जीवों के जो दो भेद हैं, उन में कौन-कौन से वाद हैं?"

"हे गौतम ! इन दोनों में चारों वाद पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! दण्डक तो चौबीस हैं। इन में कितने-कितने वाद हैं?"

"हे गौतम ! मनुष्य तथा समूचे जीव में ग्यारह उद्देश्य कहे हैं। सब ही ग्यारह उद्देश्य हैं। मन वाले जीवों के १५ दण्डक होते हैं। उन में चारों ही वाद हैं। पांच स्थावर, तीन विकलेन्द्रिय। इन आठ दण्डकों में दो वाद पाए जाते हैं। अक्रिवादी और अज्ञानवादी।"

"हे भगवन् ! क्रियावादी नारकीय किस की आयु बांधता है?"
"हे गौतम ! मनुष्य की आयु बांधता है।"
"हे भगवन् ! अक्रियावादी किस की आयु बांधता है?"

"हे गौतम ! मनुष्य और तिर्यंचगति की आयु को बांधता है।"

"हे भगवन् ! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या कपोत लेश्या वाला क्रियावादी किस की आयु बांधता है ?"

हे गौतम ! मनुष्य की आयु को बांधता है। अक्रियावादी का जैसा पहले वर्णन किया गया है, वैसा ही समझना चाहिए।'

"हे भगवन् ! कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कपोत लेश्या वाला क्रियावादी देव किस की आयु बांधता है ?"

"हे गौतम। मनुष्य की आयु को बांधता है।"

"हे भगवन् ! अक्रियावादी किसकी आयुष्य को बाँधता है ?"

"हे गौतम ! मनुष्य और तिर्यच की आयुष्य को बांधता है।"

"हे भगवन् ! तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या वाला क्रियावादी किस की आयु को बांधता है ?"

"हे गौतम ! मनुष्य की आयु को बांधता है।"

"हे भगवन् ! तेजो लेश्या, पद्म लेश्या और शुक्ल लेश्या वाला अक्रियावादी किस की आयु को बांधता है ?"

"हे गौतम ! मनुष्य और तिर्यंच की आयुष्य को बांधता है।

"हे भगवन् ! कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कपोतलेश्या वाला मनुष्य एवं तिर्यंच क्रियावादी किसकी आयु बांधता है ?"

"हे गौतम ! किसी गति की आयुष्य को वे नहीं बाँधते हैं।"

"हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?"

"हे गौतम ! मनुष्य-तिर्यंच क्रियावादी वैमानिक देव गति में ही जाते हैं।

वैमानिक देवों में तीनों लेश्याओं का अभाव है अर्थात् ये तीनों लेश्याएं वहाँ नहीं पाई जाती हैं। जिस लेश्या में आयु बंधती है, उसी लेश्या में जीव मरता है और उसी लेश्या में उत्पन्न होता है। इसलिए क्रियावादी किसी गति

का गंध नहीं करता है।"

"हे भगवन् ! कृष्णलेशी, नील लेशी, कपोतलेशी अक्रियावादी तिर्यंच, एवं मनुष्य कौन सी आयुष्य को बांधता है ?"

"हे गौतम ! चारों गति की आयु को बांधता है।"

"हे भगवन् ! तेजोलेशी, पद्मलेशी, शुक्ललेशी अक्रियावादी कौन सी गति की आयुष्य को बाँधता है ?"

"हे गौतम ! तिर्यंच गति, मनुष्य गति और देव गति की आयु को बांधता है।"

"हे भगवन् ! क्रियावादी भवसिद्ध हैं या अभव सिद्ध !"

"हे गौतम ! क्रियावादी भव सिद्ध हैं, अभव सिद्ध नहीं है।"

"हे भगवन् ! अक्रियावादी, अज्ञानवादी, विनयवादी भव सिद्ध हैं, या अभव सिद्ध हैं ?"

"हे गौतम ! भव सिद्ध भी हैं और और अभव सिद्ध भी हैं।"

तीसरा वाद है लोक वाद। लोक तीन हैं। अधो लोक, मध्यलोक और ऊर्ध्व लोक। इन तीनों लोकों में ही जीव का परिभ्रमण होता है। इसी का नाम लोकवाद है।

चौथा है कर्मवाद। कर्म के आठ भेद होते हैं। कर्म का विषय अत्यन्त ही विस्तृत है। इसका महाराजश्री ने व्याख्यान में विवेचन नहीं किया था। विस्तार-भय से इसका वर्णन यहां नहीं किया जा रहा है।

अब महाराजश्री स्थानक में पधार गए। महाराजश्री के व्याख्यान चिरंजीतपुरे में प्रारम्भ हो गए। प्रतिदिन हजारों की संख्या में लोग आने लगे। इन्हीं दिनों महाराजश्री की सेवा में कपूरथले का श्री संघ आया। उन्होंने महाराजश्री से अपने क्षेत्र में पधारने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने उनकी विनती स्वीकार कर ली।

तीन चार दिन तक ही चिरंजीतपुरे में महाराजश्री के प्रवचन हो पाए थे कि अकस्मात् महाराजश्री फिर अस्वस्थ हो गए। महाराजश्री को विरेचन लग गए तथा वे उदर शूल के रोग से ग्रसित हो गए ।

इस स्थानक में छात्राएं भी विद्याध्ययन किया करती थीं। उनकी सुविधा के लिए पंखे लगाए गए थे। स्थानक में पंखों का लगा हुआ होना महाराजश्री को अच्छा नहीं लगा। ये पंखे महाराजश्री के लिए लोकापवाद का कारण बन सकते थे अतः महाराजश्री ने यहां के भाइयों को कहा कि जिस स्थान पर साधु लोग विराजमान हों, वहां पंखें लगे हुए नहीं होने चाहिए। इस बात को साधारण समझ कर टाल दिया गया। स्थानक में पंखे लगे ही रहे। अन्ततः महाराजश्री ने लाला दौलत राम जी को अपने पास बुलाया। महाराजश्री का सन्देश पाकर वे उनके चरणों में उपस्थित हुए और बोले, "गुरुदेव ! क्या आदेश है ?"

"यदि आज ही इस मकान से पंखें न हटाए गए तो मैं आज ही स्थान का परिवर्तन कर लूंगा।" महाराजश्री ने कहा।

महाराजश्री के आदेश का पालन किया गया। तुरन्त ही पंखे उतार दिए गए। कुछ दिन बीत जाने के बाद महाराजश्री की सेवा में जालन्धर की बिरादरी के प्रतिनिधि आए। विधिवत् वन्दना नमस्कार के उपरान्त उन्होंने महाराजश्री से करबद्ध प्रार्थना की, "गुरुदेव ! आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। उपचार चल रहा है। अतः इस वर्ष का चातुर्मास यदि जालन्धर शहर में ही करने की कृपा करें तो श्रेयस्कर रहेगा।" बात में सत्यता थी। आग्रह भी था। महाराजश्री बोले, "जिस समय मैं लुधियाना में विराजमान था, उस समय मालेरकोटला का श्रीसंघ चातुर्मास की विनती करने आया था। उनकी श्रद्धा तथा अत्यधिक आग्रह को देखकर मैंने सुखे समाधे मालेरकोटला में चातुर्मास करना स्वीकार किया था। अतः आप वहां के श्रीसंघ को परिस्थिति से सूचित कीजिए। तदुपरान्त ही मैं आपके यहां चातुर्मास कर सकता हूँ।" मालेरकोटला के श्रीसंघ को सूचित कर दिया गया कि रुग्णावस्था के कारण महाराजश्री आपके यहां चातुर्मास करने में असमर्थ हैं। मालेरकोटला के श्रीसंघ को विवशता के आगे मौन साधना पड़ा। महाराजश्री का यह चातुर्मास फिर जालन्धर शहर में ही हुआ।

जालन्धर चातुर्मास

वि० सं० २०२१ वी० सं० २४९० सन् १९६४

इस चातुर्मास में महाराजश्री अधिकतर अस्वस्थ ही रहे। यहां के चिकित्सकों का उपचार तो चल ही रहा था। अमृतसर का श्रीसंघ होम्योपैथिक चिकित्सक श्री सीताराम जी को साथ लेकर महाराजश्री के चरणों में उपस्थित हुआ। विचारविमर्श के बाद होम्योपैथिक चिकित्सक से उपचार कराने का विचार बना। चिकित्सा प्रारम्भ कर दी गई। कुछ दिन तक तो दवाई के सेवन से महाराजश्री की तबीयत ठीक रहती थी और कुछ दिन बाद फिर महाराजश्री की तबीयत अकस्मात् बिगड़ जाती थी। जब बीमारी का प्रकोप बढ़ जाता था तो छोटे सन्त व्याख्यान किया करते थे नहीं तो महाराजश्री अपने मुखारविन्द से अमृतोपदेश की वर्षा किया करते थे। इस प्रकार क्रम चलते हुए पर्यूषण महापर्व के दिवस आ गए। पर्यूषण पर्व के दिनों में महाराजश्री ने "अनन्तगढ़" सूत्र का वाचन प्रारम्भ किया। यह प्रथम अवसर था जबकि महाराजश्री जी जालन्धर शहर में ये पर्व स्थानक भवन में मना रहे थे। इसका कारण यह था कि महाराजश्री अस्वस्थ थे। यहां की बिरादरी नगर के लोगों को तभी सूचित करती थी जब पहले बाहर खुले मैदान में पर्याप्त लोगों के बैठने का प्रबन्ध कर लें क्योंकि महाराजश्री के व्याख्यानों को सुनने का यहां के लोगों को इतना शौक था कि सूचना पाते ही इतने लोग आते थे कि वे मकान में नहीं बैठ सकते थे, अतः इस बार लोगों को सूचना नहीं दी गई। सन् १९४७ ई० में जब भारत विभाजन हुआ था तब कर्फ्यू के कारण इसी शहर में यह पर्व हर्षोल्लास के साथ नहीं मनाया गया था। वह चातुर्मास भी आप श्री का ही था।

पर्व के इन दिनों में भाइयों और बहनों ने बड़े उत्साह से यथाशक्ति तपस्या की। बाहर से दर्शनार्थी भाई दर्शनार्थ आते जाते रहे। सम्वत्सरी

महापर्व के दिन महाराजश्री को सूचना मिली की जैन स्थानकवासी स्वर्गीय संत गीतकार श्री हर्षचन्द्र जी के संसारी भाई उनकी स्मृति में शाहकोट में समाधि का निर्माण करवा रहे हैं। इस समाचार से महाराजश्री का मन कुछ खिन्न हुआ क्योंकि यह परम्परा जैन दर्शन के सिद्धान्तों के अनुरूप नहीं है। उन्होंने जालन्धर श्रीसंघ के मुख्य-मुख्य व्यक्तियों को बुलाया। उन में श्री दीनानाथजी तथा दौलतराम जी प्रमुख थे। महाराजश्री ने उन से कहा, "मुझे सूचना मिली है कि श्री हर्षचन्द्र जी महाराज का भाई उनकी समाधि बना रहा है। समाधियां बनाने की परम्परा हमारी समाज में उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है जिससे जड़ पूजा का प्रभाव बढ़ रहा है। जगरावां ने श्री रूपचन्द जी महाराज की तथा पटियाला में कवि श्री अमरमुनि जी पंजाबी की समाधि बनी है। वहां पर क्या-क्या आडम्बर होता है, उससे आप भली भांति परिचित हैं। आप लोगों को वहां पहुंच कर इस कार्य को रोकना चाहिए।" महाराजश्री की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने साथ समाज के तीन चार और व्यक्तियों को लेकर दोनों महानुभाव शाहकोट पहुंचे। उन्होंने वहां पहुंच कर श्री हर्ष-चन्द जी महाराज के संसारी भाई से जो उनकी स्मृति में समाधि बनवा रहे थे, उन्हें महाराजश्री के विचारों से अवगत कराया। भाइयों के आग्रह पर तथा महाराजश्री की प्रेरणा पर उसने इतना स्वीकार तो अवश्य कर लिया कि वह इस समाधि स्थल में उनकी हड्डियां नहीं दबाएगा। जालन्धर के नेताओं ने आकर महाराजश्री को उसके विचार बता दिए।

चातुर्मास समाप्ति पर महाराजश्री का विचार विहार करने का बिरादरी के समक्ष रखा। बिरादरी ने महाराजश्री से सानुनय आग्रह पूर्वक विनती करते हुए निवेदन किया, "गुरुदेव! आप का उपचार चल रहा है। अतः जब तक आप पूर्णरूपेण स्वस्थ नहीं हो जाते, आप यहीं पर विराजमान रहें।" बिरादरी के अनुरोध पर तथा शरीर की अस्वस्थता के कारण महाराज श्री को यहां और रुकना पड़ा। एक मास के उपचार के बाद महाराजश्री के स्वास्थ्य में कुछ सुधार हुआ। शरीर के पूर्णरूपेण ठीक नहोने पर भी महा-राजश्री और अधिक दिन यहां नहीं रुकना चाहते थे, अतः उन्होंने विहार

रुकने का विचार यहां के श्रीसंघ के सम्मुख पुनः रखा। श्रीसंघ ने महाराजश्री के सम्मुख विहार न करने का विचार रखते हुए निवेदन किया, "गुरु देव ! आप अभी भी अस्वस्थ हैं। आप यहीं विराजमान रह कर अपना उपचार कराएं, जिससे आपके शरीर में आने जाने की शक्ति पैदा हो सके।" श्रीसंघ के विचार सुनने के बाद महाराजश्री ने कहा, "बन्धुओं ? अब आप लोग और अधिक ठहरने का आग्रह मुझ से न कीजिएगा क्योंकि मैं लगातार नौ मास से यहाँ पर ठहरा हुआ हूं। मैं कल्प से अधिक किसी भी स्थान पर नहीं ठहरना चाहता। मैंने अब तक चातुर्मास भी कल्प में ही किया है। यह मेरा पहला अवसर है, जो मैंने एक चातुर्मास के बाद तीसरा चातुर्मास यहां पर किया है। मैं इस जालन्धर नगर में पांच चातुर्मास कर चुका हूँ। सन् १९४७ ईस्वी में हिन्दू मुस्लिम वैमनस्य के कारण होने वाले लड़ाई-झगड़े के परिणामस्वरूप मुझे यहाँ पर अनुमानतः आठ-नौ मास तक रहना पड़ा था। सन् १९५१ में बीमारी के कारण दो तीन मास तक रहना पड़ा था। साधु बनने के बाद जितना समय मैंने जालन्धर में व्यतीत किया है, उतना समय किसी अन्य क्षेत्र में व्यतीत नहीं किया है। इसका मुख्य कारण जालन्धर की जनता के हृदय में मेरे प्रति अगाध श्रद्धा तथा भक्ति का होना है। अतः अब आप मुझे यहां और रुकने के लिए विवश न कीजिए। पानी और साधु चलता हुआ ही अच्छा रहता है।" महाराजश्री के दृढ़ निश्चय के सम्मुख समाज को मौन हो जाना पड़ा। स्थानक में ही विदाई समारोह का आयोजन किया गया। जालन्धर नगर की सभी समाजों ने महाराजश्री के चरणों में अपनी श्रद्धा के भाव प्रसून समर्पित किए। यहाँ यह आप का अन्तिम चातुर्मास रहा। इसके बाद आप अपने जीवन काल में फिर इस क्षेत्र में नहीं पधारे।

यहां से विहार करके आप शेखावस्ती पधारे। यहाँ पर आप शेखावस्ती की एक धर्मशाला में ठहरे। यहां पर महाराजश्री के व्याख्यान श्रावक फकीर चन्द (जिस ने पत्नी सहित श्रावक के बारह व्रत धारण किए थे) के घर के सामने प्रारम्भ हुए। सार्वजनिक प्रवचन का यह कार्यक्रम सात आठ दिन तक चला।

यहाँ से विहार कर महाराजश्री आदर्शनगर पहुंचे । यहां पर आप स्यालकोट निवासी श्री खजानचन्दजी की कोठी पर ठहरे। यहां की जनता ने महाराजश्री की अमृतवाणी को श्रवण कर अपने आप को कृतकृत्य समझा। एक रात मार्ग में लगा कर महाराजश्री शिष्य समुदाय सहित कपूरथला शहर पहुंचे। यहाँ की जनता ने आप का भव्य स्वागत किया ! स्थानक में पहुंचने के बाद आप ने संक्षिप्त सा उपदेश दिया तथा मंगल पाठ सुनाया। तत्पश्चात् जन समुदाय चरणस्पर्श कर चला गया अपने-अपने गन्तव्य स्थान को । दूसरे दिन से यहाँ पर स्थानक के विशाल प्रांगण में महाराजश्री का प्रवचन प्रारम्भ हो गया । इन्हीं दिनों महाराजश्री जी की सेवा में लूधियाने का श्रीसंघ आया। उन्होंने आप से निवेदन किया, "भगवन् ! लुधियाना का श्रीसंघ स्वर्गीय जैनाचार्य पूज्य श्री आत्मारामजी महाराज का स्वर्गारोहण दिवस मना रहा है। अतः इस शुभ अवसर पर यदि आप भी पधारने का कष्ट करें तो सोने पर सुहागे सा काम हो जाए।" जैनाचार्य पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज के प्रति अटूट श्रद्धा होने के कारण लुधियाने के श्रीसंघ के आग्रह को आप ठुकरा न सके। आपने उन की विनती स्वीकार कर ली। कपूरथला में आपके चार-पांच व्याख्यान ही हुए। एक रात मार्ग में लगाकर आप जालन्धर आए। यहाँ पर आप श्री लद्धूशाह (स्यालकोट निवासी) के सुपुत्र श्री हंसराज जी की कोठी पर ठहरे। श्री हंसराजजी ने शहर की जनता को महाराजश्री के व्याख्यान के समय की सूचना दे दी थी, अतः अत्यधिक संख्या में लोग महाराजश्री की अमृत वाणी को श्रवण करने के लिए आए थे। इस कोठी में आपके दो प्रवचन हुए। महाराजश्री के जालंधर के यह अन्तिम प्रवचन थे। जालन्धर नगर का अन्नजल ग्रहण करना आपके भाग्य में नहीं था, अतः नगर में प्रवेश न करके आपने सड़को-सड़क विहार कर दिया। हजारों की संख्या में जालन्धर निवासी महाराजश्री के साथ पैदल चल कर जालन्धर छावनी पहुंचे। महाराजश्री जालन्धर छावनी में दो-तीन दिन तक विराजे। यहां आपके दो सार्वजनिक प्रवचन हुए। जनता ने खूब धर्म लाभ लिया। यहां से प्रस्थान कर आप फगवाड़ा पधारे। यहां का श्रीसंघ आप की अगवानी के लिए कई मील

तक चल कर गया। स्थानक में पहुंचने के बाद आपने उपस्थित जनता को कुछ उपदेश दिया। मंगलीक के बाद लोग अपनी-अपनी राह हो लिए। महाराजश्री के फगवाड़ा पधार जाने की सूचना पाकर लुधियाने के श्रीसंघ के प्रतिनिधि भी महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुए। महाराजश्री ने लुध्याने के श्रीसंघ के प्रतिनिधियों से जैनधर्म दिवाकर जैनाचार्य स्व० श्री आत्माराम जी महाराज के स्वर्गारोहण दिवस के कार्यक्रम के विषय में पूछा—"स्वर्गीय आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज ने अस्थि कलश को जुलूस रूप में समाधि स्थल पर ले जाकर उनकी अस्थियों को प्रतिष्ठापित करके वहीं पर समारोह करने का विचार है।" एक प्रतिनिधि ने उत्तर दिया। यह सुनकर महाराजश्री बोले, "बन्धुवर! ऐसी स्थिति में मैं लुधियाना जाने में असमर्थ हूँ। जिन दिनों मैं लुधियाना जाने में असमर्थ हूं। जिन दिनों मैं जालन्धर में था, उन्हीं दिनों वहां इस बात की चर्चा चल पड़ी थी कि मैं समाधि का उद्घाटन करने जा रहा हूँ। मैं जड़पूजा रूप समाधियों का प्रारम्भ से ही विरोधी रहा हूँ और भविष्य में भी विरोधी रहूंगा। मैं समाधि स्थल पर जाकर व्याख्यान नहीं दूंगा। इससे भी अधिक खेद पूर्ण बात है अस्थियों के जुलूस की। ऐसी स्थिति में मैं वहां जाने में असमर्थ हूं।" महाराजश्री के उपरोक्त विचार सुन कर श्रीसंघ के प्रतिनिधियों ने निवेदन किया कि लुधियाना जाकर हम श्रीसंघ की बैठक बुलाएंगे तथा श्रीसंघ को आपके विचारों से अवगत करा देंगे। निर्णय के बाद पुनः आपकी सेवा में हम उपस्थित होंगे।" यह कह कर श्रीसंघ के प्रतिनिधि लौट आए।

लुधियाना श्रीसंघ के प्रतिनिधि दूसरे दिन महाराजश्री की सेवा में पुनः उपस्थित हुए। विधिवत् वन्दना नमस्कार के बाद उन्होंने महाराजश्री से निवेदन किया कि कल बिरादरी की बैठक बुलाई गई थी। सर्वसम्मति से यह निर्णय हुआ है कि अस्थियों का जुलूस न निकाला जाए तथा आचार्यश्री आत्माराम जी महाराज का स्वर्गारोहण दिवस देरसी के मैदान में मनाया जाए। अतः अब आप लुधियाना पधारने का कष्ट करें।" महाराजश्री ने लुधियाना की ओर विहार करना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन फगवाड़ा से विहार करके महाराजश्री फलौर पहुंचे। यहां पर दो रात लगाकर महाराजश्री लुधियाना पहुंचे। महाराजश्री के आगमन का समाचार प्राप्त कर अगवानी के लिए जनसमूह निकल पड़ा। हजारों की संख्या में लोग स्वागतार्थ आए। महाराजश्री आगे-आगे चल रहे थे और पीछे चला आ रहा था नर-नारी समूह प्रभु के गीत गाता हुआ। अपार उत्साह था सबके मन में। स्थानक में पधारने के बाद महाराजश्री ने संक्षिप्त उपदेश के बाद मंगलपाठ सुनाया। चरणरज मस्तक पर लगाकर पुरुषवर्ग कृतकृत्य हो गया और नारी वर्ग ने दूर से ही वन्दना नमस्कार कर अपने जीवन को सौभाग्यशाली बनाया। सभी उल्लसित थे तेजस्वी, बाल ब्रह्मचारी के दर्शन प्राप्त कर।

दूसरे दिन से आपके सार्वजनिक प्रवचनों का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया।

वह दिवस भी आ गया, जिसके लिए आप का यहाँ पदार्पण हुआ था। एक भव्य पण्डाल में जनसमुदाय बैठा हुआ महाराजश्री के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा था। कुछ समय के बाद बहुत से भाइयों के साथ महाराजश्री जी पण्डाल में पधार गए। आसन ग्रहण करने के बाद कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। सर्वप्रथम भजन मण्डलियों द्वारा गीत गाए गए, जिन में पूज्यश्री आत्माराम जी महाराज के कार्यकलापों पर प्रकाश डाला गया था। गीतों की धुनें आधुनिक तथा मनोहारी थीं। लोग मस्ती में झूम उठे। इसके बाद बहुत से लोगों ने आचार्यश्री के प्रति अपनी-अपनी श्रद्धांजलियां अर्पित कीं। इसके उपरान्त साध्वियों ने दिवंगत आचार्यश्री के चरणों में अपने भाव-प्रसून चढ़ाये। अन्त में महाराजश्री ने अपनी श्रद्धा के पुष्प उनके चरणों में समर्पित किए। आचार्यश्री के जीवन पर प्रकाश डालते हुए आपने कहा कि आचार्यश्री जी बारह वर्ष की अल्प आयु में ही संसार के प्रलोभनों को लात मार कर साधु बन गए थे। आप जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारी रहे। भगवती सूत्र के शतक पहले और नौवें उद्देसे में श्रमण के जीवन के विषय में भगवान् महावीर स्वामी ने जो कहा है, वैसा ही जीवन आप का था। गौतम स्वामी भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं—

"हे भगवन् ! क्या लाघव, अल्प इच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता ये श्रमण निर्ग्रंथों के लिए प्रशस्त हैं ?"

"हां गौतम ! लाघव यावत् अप्रतिबद्धता प्रशस्त हैं।"

"हे भगवन् ! क्रोध रहितता, मान रहितता और निर्लोभता, ये सब क्या श्रमण निर्ग्रंथों के लिए प्रशस्त हैं ?"

"हां गौतम ! क्रोध रहितता यावत् निर्लोभता, ये सब श्रमण निर्ग्रंथों के लिए प्रशस्त हैं।"

"हे भगवन् ! क्या कांक्षा प्रदोष क्षीण होने पर श्रमण निर्ग्रंथ अन्तकर और अन्तिम शरीरी होता है ?"

"हां गौतम ! अवश्य ही वे चरम शरीरी होते हैं, जो कांक्षा मोहनीय को क्षीण कर देते हैं।"

इसी प्रकार भगवती सूत्र के दूसरे शतक के पहले उद्देशक में मडाई अणगार के विषय में प्रश्नोत्तर चलते हैं। मडाई शब्द विचित्र सा लगता है और इसके साथ जुड़ा हुआ अणगार शब्द तो और भी विचित्र लगता है। इन दो शब्दों का संयोग अद्भुत और आश्चर्यमय है। मडाई का अर्थ है मरा हुआ और अणगार का अर्थ है साधु अर्थात् मृतक साधु। वास्तव में इस प्रकरण में इसका अर्थ है मृतक भोजी, अर्थात् मरे हुए का भक्षण करने वाला—निर्जीव पुद्गल का आहार करने वाला अथवा प्रासुक भोजन करने वाला। गौतम स्वामी भगवान् महावीर जी से पूछते हैं—

"हे भगवन् ! जिसने संसार का निरोध नहीं किया है, संसार के प्रपंचों का निरोध नहीं किया है, जिसका संसार क्षीण नहीं हुआ है, जिस का संसार वेदनीय व्युच्छिन्न नहीं हुआ है, जो निष्ठितार्थ—प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ है, ऐसा मृतादी अनगार क्या फिर मनुष्य भव आदि भावों को प्राप्त होता है ?"

"हे गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूपवाला निर्ग्रंथ फिर मनुष्य भव आदि भावों को प्राप्त होता है।"

"पूर्वोक्त निर्ग्रंथ के जीव को किस शब्द से कहना चाहिए ?"

"हे गौतम ! उसे कदाचित् प्राणी कहना चाहिए, क्योंकि वह दस प्राणों को धारण करने वाला है। उसे "भूत" कहना चाहिए क्योंकि वह भूतकाल में था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। वह जीता है, जीवत्व और आयुष्य कर्म का अनुभव करता है, इसलिए उसे "जीव" कहना चाहिए। वह शुभ और अशुभ कर्मो से संबद्ध है, इसलिए उसे "सत्त्व" कहना चाहिए। वह तीखा, कड़ुआ, कषैला, खट्टा और मीठा रसों को जानता है, इसलिए उसे "विज्ञ" कहना चाहिए। तह सुख दुःख को वेदता है—अनुभव करता है, इसलिए उसे "वेद" कहना चाहिए।"

"हे भगवन् ! जिसने संसार का निरोध किया है, जिसने संसार के प्रपंच का निरोध किया है यावत् जिसका कार्य समाप्त हुआ है, ऐसा मृतादी प्रासुक भोजी अनगार क्या फिर मनुष्य भव आदि भावों को प्राप्त नहीं होता है ?"

"हां गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाला मृतादी अनगार फिर मनुष्य भव आदि भावों को प्राप्त नहीं होता है।"

"हे भगवन् ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रंथ के जीव को किस शब्द से कहना चाहिए ?"

"हे गौतम ! पूर्वोक्त स्वरूप वाले निर्ग्रंथ का जीव "सिद्ध" कहलाता है ?

"वुद्ध" कहलाता है, "मुक्त" कहलाता है, "पारगत—संसार के पार पहुंचा हुआ" कहलाता है, "परम्परागत—अनुक्रम से संसार के पार पहुँचा हुआ कहलाता है। वह सिद्ध, वुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त, अन्तकृत, सर्व दुःख प्रहीण कहलाता है।

सूत्र के इस पाठ से स्पष्ट हो जाता है कि केवल साधुवेश धारण कर लेने से और साधु के समान द्रव्य क्रिया करने से और प्रासुक भोजन करने से सर्वज्ञ भगवन्तों की दृष्टि में यह निश्चय रूप से साधु नहीं है, क्योंकि ऐसे द्रव्यलिंगी

साधु मे भगवान् ने जीव के वे सभी लक्षण बताए हैं, जो सभी साधारण जीवों में पाए जाते हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में भगवान् ने कहा है कि :—

चीरा जिणं पगिणिणं, जड़ी संघाडि मुडिणं।
एयणि विण तायंति, दुस्सीलं परिया गयं॥

अर्थात् चीवर, मृगचर्म, नग्नत्व, जटा, कंथा और मुण्डनादि बाह्य क्रियाएं उसे दुर्गति से नहीं बचा सकतीं। हमारे चरित्र नायक स्वनाम धन्य स्वर्गीय पूज्य श्री आत्माराम जी विनम्रता की साक्षात् प्रतिमा थे। वे नवदीक्षित साधु को भी सम्मान के साथ सम्बोधित करते थे। उनका जीवन धैर्य, गम्भीरता तथा सहनशीलता के गुणों से ओत प्रोत था। महान से महान यातनाएँ भी उन्होंने सदा हंसते-हंसते सहन कीं। जैन संस्कृति के प्रचार और प्रसार में लेखक के रूप में जो आप ने योगदान दिया है वह अविस्मरणीय है।

उस दिव्यात्मा के चरणों में उपरोक्त श्रद्धा के पुष्प समर्पित कर महाराजश्री स्थानक में लौट आए। फिर सार्वजनिक प्रवचनों का क्रम चल पड़ा। शरीर अब आप का कुछ शिथिल रहने लगा था। कभी नजला आ दबोचता था तो कभी गैस। अकस्मात् आपके बाएं हाथ में ऐसी भयानक पीड़ा उठी कि आप को हाथ हिलाना भी कठिन हो गया। उपचार चलता रहा। मास का कल्प पूरा होने पर यहाँ की बिरादरी ने इस वर्ष का चातुर्मास लुधियाना में ही करने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने इन की विनती स्वीकार कर ली।

यहां से विहार करके महाराजश्री माडलटाउन पधारे। यहां पर आप ने एक ही दिन धर्मोपदेश दिया। एक रात रास्ते में लगाकर महाराजश्री गुजरवाल पहुंचे। यहां की जनता ने आप का उत्साह के साथ स्वागत किया। स्थानक में पहुंच कर आप ने संक्षिप्त रूप में उपदेश दिया तथा मंगल पाठ सुनाया। यहाँ पर आपके अनुमानतः पन्द्रह सोलह व्याख्यान हुए। आपके वचनों से इस क्षेत्र की जनता में यथेष्ट मात्रा में धर्म चेतना उत्पन्न हुई। कुछ ही दूरी पर सुधार नामक एक गांव स्थित है। हवाई अड्डे के कारण ही यहां पर यह बस्ती बसी हुई है। यहां पर हरियाणा के बहुत से जैन बन्धु आकर

बस गए हैं। गुजरवाल से चल कर महाराजश्री इसी बस्ती में पधारे। यहां पर महाराजश्री छः सात दिन तक विराजमान रहे। आप प्रातः और मध्याह्न वेला में दोनों समय व्याख्यान फरमाते रहे।

यहाँ से प्रस्थान कर आप रायकोट पधारे। रायकोट की बिरादरी सैंकड़ों की संख्या में आप की अगवानी के लिए कई मील चलकर आई थी। महाराजश्री के पीछे-पीछे जनसमुदाय चला आ रहा था। आकाश और दिग्दिगंत गूंज रहे थे जयजयकारों से। स्थानक में पहुंचने के बाद संक्षिप्त उपदेश के बाद मंगलाचरण सुनाया। तत्पश्चात् दूसरे दिन से आपके सार्वजनिक प्रवचनों का कार्यक्रम चल पड़ा। महाराजश्री यहां पर पच्चीस-छब्बीस दिन तक विराजमान रहे। महावीर जयन्ती का समारोह भी आपके साँनिध्य में खूब धूमधाम से स्थानक के नीचे के हाल में मनाया गया था। यहां की जनता ने महाराजश्री के प्रवचनों का खूब लाभ उठाया।

यहां से विहार कर आप बरनाला पहुंचे। मार्ग के गांवों में आप ने तीन दिन लगाए। बरनाला की बिरादरी श्री श्री १००८ श्री पन्नालाल जी महाराज के सुशिष्य कवि शिरोमणि श्री चन्दन मुनि जी महाराज के साथ चल कर अगवानी से लिए आई। स्थानक में पहुंच कर महाराजश्री ने तपस्वी श्री पन्नालाल जी महाराज को विधिवत वन्दना-नमस्कार किया। तदनन्तर ईर्यापथिक आलोचना के उपरान्त महाराजश्री ने संक्षिप्त रूप में जनता को उपदेश दिया। मंगलीक सुनने के बाद जनता तितर बितर हो गई।

दूसरे दिन से आपके प्रवचनों का श्री गणेश हो गया। भीखी के भाई दानवीर सरदार जसवन्त सिंह जी जैन सपरिवार महाराजश्री के दर्शनार्थ पधारे। उन्होंने वहां की बिरादरी को दान भी दिया। वहां पर महाराजश्री चौदह पन्द्रह दिन तक विराजमान रहे। यहां पर आपके चौदह-पन्द्रह के लगभग सार्वजनिक प्रवचन हुए, जिन का यहां की जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा।

कोटला पहुंचे। वहाँ की जनता ने आप का भव्य स्वागत किया। स्थानक में पहुंच कर आप ने मंगल पाठ सुनाया। फिर दूसरे दिन से आपके धर्मोपदेशों का कर्म चल पड़ा। बीस-बाईस दिन तक अमृत की गंगा बहाकर आप लुधियाना पधारे। कोटला से लुधियाना पहुंचने में महाराजश्री को छः सात दिन लगे। मार्ग के इन ग्रामों में भी आप ने धर्म की खूब मन्दाकिनी बहाई थी।

लुधियाना के श्रीसंघ ने आप का महान स्वागत किया। लुधियाना के थानक में पहुंच कर आपने उपस्थित जनता को संक्षिप्त सा उपदेश दिया। तदनन्तर मंगलपाठ सुनाया। मंगलपाठ के बाद जनसमुदाय आपके चरणों की धूलि को मस्तक पर लगाकर विदा हो गया। दूसरे दिन से आपके प्रवचन प्रारम्भ हो गए।

लुधियाना चातुर्मास

वि० संवत् २०२२ वि० संवत् २४९१ ई० सन् १९६५

यहां पर महाराजश्री का यह चातुर्मास बड़े उल्लास के साथ मनाया गया। व्याख्यान हाल श्रोताओं से खचाखच भरा होता था। इस चातुर्मास में महाराजश्री के प्रवचनों का मुख्य विषय रहा था—कर्म। कर्म का विवेचन करते हुए महाराजश्री ने फरमाया कि कर्म एक पुद्‌गल द्रव्य का अंग है। कर्म दो प्रकार के होते हैं—द्रव्य कर्म और भाव कर्म। द्रव्य कर्म रूपी है और भाव कर्म अरूपी है। द्रव्य कर्म आठ प्रकार के होते हैं। इन द्रव्य कर्मो के उदय होने पर जो विचार उत्पन्न होते हैं, उन्हें भाव कर्म कहते है। जैसे हमारे विचार होंगे, उन्हीं के अनुरूप ही आत्मा के साथ शुभाशुभ कर्मो का सम्बन्ध होगा। जो शुभ कर्म होंगे वे शुभ रूप होंगे और जो अशुभ कर्म होंगे, वे दुःख रूप होंगे। उदाहरणार्थ हम दो बोतलों को लेते हैं। एक बोतल गुलाब-जल से परिपूर्ण है और दूसरी तेजाब से भरी हुई है। यह कर्ता पर निर्भर है कि वह पिचकारी में इनमें से किसी पदार्थ को भर ले।

चार वस्तुएँ होती हैं। कर्त्ता, क्रिया, कर्म और कर्म का फल। यहां पर आत्मा कर्त्ता है। आत्मा जो शुभाशुभ पुरुषार्थ करती है, वह क्रिया है। कर्त्ता रूप आत्मा के द्वारा शुभाशुभ पुरुषार्थ करते हुए जो द्रव्य पकड़ में आता है, वह कर्म है। कर्त्ता रूप आत्मा क्रिया के द्वारा द्रव्य एकत्रित करती है। एकत्रित द्रव्य का शुभाशुभ धर्म कर्त्ता रूप आत्मा के लिए फलरूप बन जाता है। कोई व्यक्ति कुएं से पानी लेना चाहता है। पानी के लिए वह कुएं में बाल्टी डालता है। बाल्टी को कुएं में लटकाने वाला व्यक्ति कर्त्ता है। पानी से भरने के लिए बाल्टी को हिलाना, ऊंचे नीचे करना क्रिया है। कुएं का पानी कर्म

रूप है। पानी को निकाल कर उसे पीकर पिपासा को शान्त करना अथवा स्नान करके शीतलता को प्राप्त करना कर्म का फल है। कर्त्ता मीठे पानी के कुएं से जल ले अथवा खारे पानी वाले कुएं से जल ग्रहण करे, यह कर्त्ता पर निर्भर है।

क्रिया दो प्रकार की होती है। फलवती और अफलवती। इन्हें हम क्रमशः सुन्न क्रिया और असुन्न क्रिया के नामों से भी सम्बोधित कर सकते हैं। यदि कोई व्यक्ति शुष्क कूप में बाल्टी डालता है और उस बाल्टी को ऊपर नीचे करता है तो कर्म रूप पानी के अभाव में उसकी वह क्रिया फलवती नहीं होगी। इसी का नाम सुन्न क्रिया है। यहाँ पर क्रिया करने वाले को इस क्रिया के करने से किसी फल की प्राप्ति नहीं हुई। क्रिया और कर्म का फ़ल कर्त्ता को ही मिला करता है, किसी अन्य को नहीं। कर्म हलके भी होते हैं और भारी भी। कर्मों की आठ श्रेणियाँ हैं, जिन्हें आठ स्पर्श कहते हैं। इन में चार स्पर्श हलके भी हैं एवं भारी भी हैं और चार स्पर्श इन में ऐसे हैं जो न तो हलके हैं और न भारी हैं। जैसे—हलका स्पर्श, भारी स्पर्श, खुरदरा स्पर्श और सुहाला स्पर्श। चार स्पर्श हैं—रूखा स्पर्श, चिकना स्पर्श, गर्म स्पर्श और ठण्डा स्पर्श। जिस द्रव्य में ये आठों स्पर्श होते हैं, वह द्रव्य हलका भी हो सकता है और भारी भी। जिन द्रव्यों में दूसरी श्रेणी के रूखा, चिकना, ठण्डा और गर्म स्पर्श होते हैं, वे द्रव्य न तो हलके होते हैं और न भारी ही। अट्ठारह पाप, आठ कर्म, मनो योग, वचन योग, कार्मण शरीर और सूक्ष्म स्कन्ध।

इन तीस द्रव्यों में चार स्पर्श होते हैं। अतः चार स्पर्श वाला द्रव्य न तो हलका होता है और न ही भारी होता है। संसार के जीवों के कर्मों को यदि तराजू पर तोला जाए तो उन सब का वजन एक राई जितना भी नहीं होगा। गौतम स्वामी भगवान् महावीर जी से पूछते हैं कि—

"हे भगवन्! कर्मों का सर्व बन्ध होता है या देशबन्ध?"

हे गौतम! देशबन्ध होता है।

"हे भगवन् ! पांच शरीरों का सर्वबन्ध होता है या देश बन्ध ?"

"हे गौतम ! औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर और आहारक शरीर का बन्ध सर्व बन्ध रूप से होता है और तेजस तथा कार्मण शरीर का देश बन्ध होता है।"

"हे भगवन् ! इस का कारण क्या है ?"

"हे गौतम ! आठ कर्म, तेजस तथा कार्मण शरीर सदैव जीव के साथ रहते हैं। जो चीज पहले विद्यमान होती है उस पर जो दूसरी चीज आएगी वह देश रूप ही आएगी। जब जीव मर कर जाता है तो वह वहां सर्व आहार करता है। सर्व आहार करने के बाद में मृत्यु तक उसका देश आहार होता है। अत आठ कर्म तेजस तथा कार्मण शरीर का देश बन्ध ही होता है। सर्वबन्ध उस का होगा जिस में पहले वस्तु नहीं होगी। ईर्यापथिक क्रिया का सर्वबन्ध है।"

"हे भगवन् ! चार भांगे कौन से हैं ?"

"हे गौतम ! चार भंग निम्न प्रकार से हैं :—

१. जीव ने पाप कर्म बाँधा था, बांधता है और बाँधेगा।

२. जीव ने पाप कर्म बांधा था, बाँधता है परन्तु आगे नहीं बाँधेगा।

३. जीव ने पाप कर्म बांधा था, नहीं बांध रहा परन्तु आगे बाँधेगा।

४. पाप कर्म बाँधा था, नहीं बांध रहा और आगे भी नहीं बांधेगा।"

"हे भगवन् ! समुच्चय जीव में कितने भंग पाए जाएंगे ?"

"हे गौतम ! समुच्चय जीव में चारों भंग पाए जाएंगे।"

"हे भगवन् ! छः लेश्यावाले जीव, सलेशी जीव और अलेशी जीव में कितने भंग पाएंगे ?"

"हे गौतम ! प्रथम की जो पांच लेश्याएं हैं, उन में प्रथम के दो भंग पाए जाते हैं।

शुक्ललेशी और सलेशी में चारों ही भंग पाए जाते हैं और अलेशी में अन्तिम भंग पाया जाता है।"

"हे भगवन् ! जीव कितने प्रकार के हैं ?"

"हे गौतम ! दो प्रकार के हैं। कृष्णपक्षी तथा शुक्लपक्षी।"

"हे भगवन् ! इन में कौन-कौन से भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! कृष्णपक्षी में प्रथम के दो ही भंग पाए जाते हैं तथा शुक्ल पक्षी में चारों ही भंग पाए जाते हैं।"

इसी के सम्बन्ध में समर्थ समाधान में प्रश्न किया गया है कि आत्मा को समकित पहले होती है अथवा शुक्ल पक्ष अथवा परित्त संसार पहले होता है। इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार दिया गया है कि आत्मा को पहले शुक्लपक्ष की प्राप्ति होती है और बाद में समकित प्राप्त होता है। शुक्लपक्ष की जघन्य स्थिति नहीं होती। समकित की और परित्तसंसारी की स्थिति जघन्य भी होती है और उत्कृष्ट भी होती है। परित्तसंसार दो प्रकार का होता है :—

कायापरत और संसारपरत। कायापरत की उत्कृष्ट स्थिति असंख्यात काल की होती है और संसारपरत की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तकाल की होती है अर्थात् देशऊनी अर्द्ध पुद्गल की होती है। यदि शुक्लपक्ष के लगते ही समकित (सम्यकत्व) आ गई अथवा चरित्र आ जाए तो अनन्तकाल की हो सकती है। भगवती सूत्र शतक पच्चीसवें में लिखा है कि सामायिकादी पांचों चरित्रों का एक-एक जीवाश्रित अन्तर उत्कृष्टा-देशऊना अर्द्ध पुद्गल का है। ऐसी मान्यता है कि अनादि मिथ्यात्वी अन्तिम भव में दो घड़ी के अन्दर समकित की प्राप्ति भी कर लेता है। वह मति, श्रुति, अवधि ज्ञान को प्राप्त करने के उपरान्त केवल ज्ञान को प्राप्त कर के मोक्ष में चला जाता है। इसलिए यहां परित्त संसारी अन्तर्मुहूर्त का ही हो सकता है। समकित होने के बाद ही परित्त संसारी माना गया है। समकित अनेकों बार आ जा सकती है परन्तु शुक्लपक्ष और परित्त संसार बार-बार आने वाली चीज नहीं है। अनादि मिथ्यात्वी को

क्षयिक समकित आ जाने पर फिर उसका नाश नहीं होता क्योंकि क्षायिक समकित सादि अनन्त है। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यदि शुक्लपक्ष लगते ही परत संसारी मान लिया जाए तो इस में क्या बाधा पड़ सकती है क्योंकि देशउना अर्द्ध पुद्गल परित्त संसारी की उत्कृष्ट स्थिति है। प्रश्न उठता है कि आत्मा शुक्लपक्ष स्वाभाविक ही होता है या विशेष करनी के कारण उत्पन्न होता है ? यदि शुक्लपक्ष की उत्पत्ति स्वाभाविक है तो फिर आत्मा को देव, गुरु, धर्म, तप, ज्ञान, दर्शन और चरित्र की आराधना करने की क्या आवश्यकता है क्योंकि शुक्लपक्षी को तो देशउना अर्द्ध पुद्गल में मोक्षगति को जाना ही है। उदाहरणार्थ अनादि मिथ्यात्वी को लेते हैं। वह दो घड़ी के अन्दर ही अपना ध्येय सम्पूर्ण कर लेता है। आत्मा को शुक्लपक्ष स्वाभाविक ही प्राप्त हो जाता है अथवा इस की प्राप्ति विशेष करनी के कारण प्राप्त होती है ? इस प्रश्न का समाधान मेरे पढ़ने में कहीं पर भी नहीं आया है। पाठकों को इस विषय पर विचारना चाहिए। चर्चा में जब तक कोई बात नहीं आती तब तक उसका यथार्थ निर्णय नहीं हो पाता। कोई न कोई निर्णय देने वाला विचारक मिल ही जाता है। एक बार कवि जी महाराज ने शक्तिनगर में मेरे से पूछा कि मरुदेवी (मोरादेवी) का जीव निगोद में से निकल कर मरुदेवी बना और मोक्ष को प्राप्त हुआ। मैं पूर्णरूपेण तो नहीं कह सकता कि उन्होंने अनादि निगोद के विषय में कहा था या सादि निगोद के विषय में कहा था क्योंकि निगोद के विषय में दो प्रकार की परूपणा चल रही है– व्यवहार राशि की निगोद और अव्यवहार राशि की निगोद। मैंने उत्तर दिया था कि वनस्पति का जीव मनुष्य बन कर मोक्ष में जा सकता है। प्रत्येक वनस्पति का जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है अथवा साधारण वनस्पति का जीव अथवा दोनों को ही मनुष्य बन कर मुक्ति प्राप्त हो सकती है। इसका विशद विवेचन कहीं देखने में नहीं आया। अब मेरा विचार ऐसा है कि केवली की १०८ की आगति है। उस १०८ की अगति में एकेन्द्रिय के तीन भेद लिए गए हैं। एक पृथ्वीकाय का, एक अपकाय का और एक वनस्पति काय का। ये तीनों भेद पर्याप्त के होने चाहिएं। प्रत्येक वनास्पति के तीनों भेद पर्याप्त के होने चाहिये। भगवती सूत्र में श्री गौतम

स्वामी भगवान् महावीर जी से पूछते हैं कि वृक्ष का जीव (मूल का जीव) कितने भव लेकर मोक्ष में जाएगा ? भगवान् उत्तर देते हुए कहते हैं कि वृक्ष का जीव एक भव में या दो भव में मोक्ष जाएगा।

कहने का अभिप्राय यह है कि ज्ञान, दर्शन और चरित्र का आराधक होता हुआ भी जीव आठ-सात भव कर सकता है। ऐसी धारणा है कि ये भव मनुष्य के ही होने चाहिएं। इन भवों में मनुष्य में भाव और द्रव्य चरित्र दोनों ही होने चाहिएं। ज्ञान, दर्शन और चरित्र की आराधना का फल इतना होता है कि ऐसे आराधक की दो ही गतियाँ रह जाती हैं। वे दो गतियाँ हैं--वैमानिक देव और मनुष्य की गति। विराधक एक भव लेकर भी मोक्ष में जा सकता है। जैसे—एकेन्द्रिय जीव मनुष्य वन कर उसी भव में मुक्ति को प्राप्त कर सकता है। आराधक और विराधक में अन्तर यही रहता है कि अराधक को मनुष्य के भव में भी अगणित सुखों की प्राप्ति होती रहती है तथा विराधक एक भव लेकर मोक्ष को भी प्राप्त कर सकता है और संसार में परिभ्रमण भी कर सकता है। यह अन्तर केवल छद्मस्त प्राणियों के लिए है। केवल ज्ञानियों के लिए नहीं है। शुक्लपक्षी दोनों हैं और दोनों ही मोक्षगामी हैं। आत्मा में शुक्लपक्ष स्वाभाविक रूप में आता है अथना आराधना से आत्मा को शुक्लपक्ष की प्राप्ति होती है, यही प्रश्न विद्वानों के लिए विचारणीय है। इसके विषय में विद्वान लोग अपने-अपने विचार प्रेषित कर इस समस्या का समाधान करने का प्रयास करेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है।

गौतम स्वामी जीव के भेदोपभेदों के विषय में भगवान् महावीर जी से पूछते हैं कि हे भगवन्! शुक्लपक्षी और कृष्णपक्षी के अतिरिक्त जीवों के और भेद कौन से हैं ? इन में कितने भंग होते हैं ?"

"हे गौतम ! जीव के दो भेद और भी हैं—परित्त संसारी और अपरित्त संसारी। परित्त संसारी जीव में चारों भंग होते हैं। परित्त संसारी जीव भी दो प्रकार के होते हैं। संसारपरित्त और कायापरित्त। कायापरित्त में भी चारों ही भंग होते है। अपरित्त संसारी जीव के भी दो ही भंग होते हैं। काया अपरित्त

और संसार अपरित्त। दोनों में ही प्रथम के दोनों भंग पाए जाते हैं। जीव के तीन भेद और भी हैं। सम्यक् दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि। सम्यक् दृष्टि में चारों भंग पाए जाते हैं। मिथ्यादृष्टि और मिश्रदृष्टि वाले जीव में प्रथम के दो ही भंग पाए जाते हैं। जीव पांच प्रकार के भी होते हैं। मतिज्ञानी, श्रुतिज्ञानी, अवधिज्ञानी, मनपर्यवज्ञानी और केवल ज्ञानी। प्रथम के चारों प्रकार के जीवों में चारों ही भंग पाए जाते हैं और केवलज्ञानी में अन्तिम भंग पाया जाता है। जीव के तीन भेद और भी हैं। मति अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभंग ज्ञानी। इन तीन प्रकार के जीवों में प्रथम के दो भंग पाए जाते हैं। हे गौतम! जीव के दो प्रकार और भी हैं। संज्ञोपयुक्त और नोसंज्ञोपयुक्त। संज्ञोपयुक्त जीवों में पहला और दूसरा तथा नोसंज्ञोपयुक्त जीवों में चारों भंग पाए जाते हैं। सवेदक, स्त्रीवेदक, पुरुषवेदक, नपुंसकवेदक तथा अवेदक, ये पांच भेद भी जीव के हैं। प्रथम के चारों जीवों में पहला और दूसरा भंग पाए जाते हैं। अवेदक में चारों भंग पाए जाते हैं। हे गौतम! जीव छः प्रकार के भी होते हैं। क्रोधकषायी, मायाकषाई, लोभकषायी, सकषाई और अकषाई। अकषायी जीवों में चारों भंग, क्रोधकषायी, मानकषायी, और मायाकषायी जीवों में पहला और दूसरा भंग पाए जाते हैं तथा लोभ कषायी जीवों में चारों ही भंग पाए जाते हैं। अकषायी जीवों में अन्त के दो भांगे पाए जाते हैं। हे गौतम! जीव पाँच प्रकार के भी होते हैं। मनयोगी, वचनयोगी, कायायोगी, सयोगी और अयोगी। सयोगी जीव में चार भंग पाए जाते हैं। इसी प्रकार मनयोगी, वचनयोगी और कायायोगी जीवों में भी चार भंग पाए जाते हैं। अयोगी जीवों में अन्तिम एक भंग पाया जाता है। हे गौतम! जीव दो प्रकार के भी होते हैं। साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त। इन दोनों प्रकार के जीवों में चारों भंग पाए जाते है।"

"हे भगवन्। जीव ने ज्ञानावरणीय कर्म बांधा था?"

"हे गौतम! पापकर्म की वक्तव्यता के समान ज्ञानावरणीय कर्म के विषय में भी जानना चाहिए परन्तु जीवपद और मनुष्यपद में सकषायी यावत् लोभ

कषायी में पहला और दूसरा भंग ही कहना चाहिए। शेष पूर्ववत् यावत् वैमानिक पर्यन्त। ज्ञानावरणीय कर्म के समान दर्शनावरणीय कर्म के विषय में भी सम्पूर्ण दण्डक कहने चाहिए। नाम कर्म, गोत्र कर्म और अन्तराय कर्म के विषय में भी ज्ञानावरणीय कर्म के समान समझना चाहिए। मोहनीय कर्म को पाप कर्म के वन्धक के अनुरूप ही समझना चाहिए।"

"हे भगवन्! वेदनीय कर्म के वन्धक में कितने भंग पाए जाते हैं?"

हे गौतम! सलेशी जीव में तीसरे भंग को छोड़ कर शेष तीन भंग पाए जाते हैं।

कृष्णलेशी यावत् पद्मलेशी जीवों में पहला और दूसरा भंग पाया जाता है। शुक्ललेशी जीवों में तीसरे भंग के अतिरिक्त तीन भंग पाए जाते हैं। अलेशी में चौथा भंग होता है। कृष्णपाक्षिक जीवों में पहला और दूसरा भंग तथा शुक्लपाक्षिक में तीसरे के अतिरिक्त तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि में भी तीन भंग होते हैं। मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवों में पहला और दूसरा भंग होता है। ज्ञानी जीवों में तीसरे के अतिरिक्त तीन भंग होते हैं। अभिनिवोधिकज्ञानी यावत् मनपर्यवज्ञानी जीवों में पहला और दूसरा भंग तथा केवलज्ञानी में तीसरे के अतिरिक्त तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार नोसंज्ञोपयुक्त, अवेदक, अकषायी साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त, इन सभी में तीसरे के अतिरिक्त तीन भंग होते हैं। अलेशी और अयोगी में एक चौथा भंग होता है। शेष सभी में पहला और दूसरा भंग ही होता है।"

"हे भगवन्! आयुष्य कर्म के वन्धक में कितने भंग पाए जाते हैं?"

"हे गौतम! एकेन्द्रिय की तेजोलेश्या में एक भंग पाया जाता है। शेष सभी स्थानों में चार भंग होते हैं। इसी प्रकार अप्कायिक और वनस्पति कायिक जीवों में भी। तेउकायिक और वायुकायिक जीवों के सभी स्थानों में पहला और तीसरा भंग होता है। वेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय जीवों में सभी स्थानों में पहला और तीसरा भंग होता है, किन्तु सम्यक्त्व ज्ञान, आभिनिवोधिक ज्ञान और श्रुतज्ञान में एक तीसरा भंग ही होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचयोनिक में,

कृष्णपाक्षिक में पहला और तीसरा भंग, सम्यग् "मिथ्यात्व में तीसरा और चौथा भंग, सम्यक्त्व, ज्ञान, आभिनिवोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन पाँच पदों में दूसरे भंग के अतिरिक्त शेष तीन भंग होते हैं। शेष सभी पदों में चारों भंग होते हैं। मनुष्य औधिक जीव के समान, परन्तु सम्यक्त्व, औधिक (सामान्य) ज्ञान, आभिनिवोधिक ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान, इन सभी पदों में दूसरे भंग के अतिरिक्त शेप तीन भंग पाए जाते हैं। मन-पर्यवज्ञान और नोसंज्ञायुक्त में भी ऐसा समझना चाहिए।"

"हे भगवन् ! अनन्तरोपपन्नक में कितने भंग पाए चाते हैं ?"

"हे गौतम ! अनन्तरोपपन्नक में चौवीस दण्डकों में प्रथम के दो ही भंग पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! ज्ञानावरणीय के वन्धक में अनन्तरोपपन्नक में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! प्रथम के दो ही भंग पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! आयुष्यकर्म के अतिरिक्त सात कर्मों के वन्धक में क्या प्रथम के दो ही भंग पाए जाते हैं ?" उत्तर हे गौतम हां !

"हे भगवन ! अनन्तरोपपन्न में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! आयुष्य कर्म के वन्धक में अनन्तरोपपन्नक के जीव में तीसरा भंग पाया जाता है।"

मनुष्य के आयुष्यकर्म के वन्धक में तीसरा और चौथा दो ही भंग पाए जाते हैं। हे गौतम ! परम्परोपपन्नक जीव के विपय में भी उपरोक्त प्रकार से ही समझना चाहिए।"

"हे भगवन् ! अनन्तरावगाढ़ में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! जितने अनन्तरोपपन्नक में पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! परम्परावगाढ़ जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! परम्परा अर्थात समुच्चे जीव में और मनुष्य में परम्परोपपन्नक जीव में जितने भंग पाए जाते हैं, उतने ही इस जीव में पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! अनन्तराहारक जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! अनन्तरोपपन्नक जीव के समान ही इस में भंग पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! परम्पराहारक जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! जितने भंग समुच्चय जीव में पाए जाते हैं, उतने ही भंग परम्पराहारक जीव में पाए जाते हैं।"

"हे भगवन् ! अनन्तर पर्याप्तक जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! जितने भंग अनन्तरोपपन्नक जीव में पाए जाते हैं, उतने ही भंग अनन्तर पर्याप्तक जीव में होते हैं।"

"हे भगवन् ! परम्पर पर्याप्तक जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! जितने भंग परम्परोपपन्नक जीव में पाए जाते हैं, उतने ही भंग परम्परपर्याप्तक के जीव के होते हैं।"

"हे भगवन् ! चरम जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! जितते भंग परम्परोपपन्नक। समुच्चय जीव में पाए जाते हैं, उतने ही भंग चरम जीव में होते हैं।"

"हे भगवन् ! अचरम जीव में कितने भंग पाए जाते हैं ?"

"हे गौतम ! अचरम जीव के प्रथम तीन भंग पाए जाते हैं।

इस प्रकार महाराजश्री का उपदेश लुधियाना के चातुर्मास काल में कर्मों पर चलता रहा। आपने बताया कि कर्मों का बन्ध चार प्रकार से होता है। प्रकृतिवन्ध, स्थिति वन्ध, अनुभागवन्ध और प्रदेश वन्ध। कर्मो का विशद विवेचन जैनागमों में मिलता है। वास्तव में ही कर्मदर्शन का विषय गूढ़ है। महाराजश्री पूर्ण रूप मे अभी कर्म दर्शन पर प्रकाश डाल भी नहीं पाए थे कि पर्यूषण पर्वाधिराज का आगमन हो गया। इन दिनों में महाराजश्री ने अन्तगढ़ सूत्र पर ही प्रवचन किया। चातुर्मास काल का श्रीगणेश होते ही तपस्या का

ठाठ लग गया था परन्तु इन दिनों में तपस्या विशेष रूप से हुई थी। अनुमानतः ६० अठाइयां, सैकड़ों तेले और बेले हुए थे। पौषध व्रत आदि की संख्या तो कई हजार थी। संवत्सरी महापर्व के दिन आपका प्रवचन देवकी हाल में हुआ था। इस दिन महाराजश्री ने अन्तगढ़ का वाचन एवं प्रवचन पूर्ण किया था।

इन्हीं दिनों अकस्मात् भारत और पाकिस्तान के आकाश पर युद्ध के बादल मंडराने लगे थे। गोलियों और बमों की ध्वनि से पृथ्वी और आकाश गूंज उठे। नगर की शान्ति के लिए महाराजश्री से प्रेरणा पाकर प्रतिदिन कई आयम्बिल तप की आराधना करने लगे। तपाराधना की यह श्रृंखला दीर्घ समय तक चलती रही। इसी तप के प्रभाव से लुधियाना नगर बिल्कुल सुरक्षित रहा। बम आदि से किसी प्रकार की कोई हानि नहीं हुई। गंगा के तट पर स्थित हरिद्वार में जिस प्रकार गंगा के भक्तों की भीड़ रहती है, उसी प्रकार इस चातुर्मास काल में दूर-दूर से लोग आपके दर्शनों को आते जाते रहे। आप के दर्शन प्राप्त कर वे कृतकृत्य हो जाते थे।

भादवा सुदी द्वादशी के दिन आप के सांनिध्य में स्वर्गीय आचार्यसम्राट, जैनधर्म दिवाकर, जैनागमरत्नाकर पूज्य श्री आत्माराम जी महाराज की जयन्ती दरेसी के विशाल मैदान में खूब धूम-धाम से मनाई गई। आपने अपनी ओजस्वी वाणी में उनके कार्य-कलापों एवं जीवन पर प्रकाश डाला था।

समय निर्बाध गति से चलता रहा। दिन पर दिन बीतते चले गए। चातुर्मास समाप्ति का दिन अन्ततः आ ही गया। आप के सम्मान में यहां की समाज की ओर से एक महान विदाई-समारोह का आयोजन किया गया। दरेसी का विशाल मैदान.......अपार जनसमूह........तख्तपोश पर विराजमान थे महाराजश्री शिष्य समुदाय के साथ.........सजल नेत्रों से भक्तजन, मौन निहार रहे थे ब्रह्मचर्य के तेज से देदीप्यमान तपोमूर्ति के उन्नत ललाट की ओर। जनता ने अपनी श्रद्धा के पुष्प आप के चरणों पर समर्पित किए। आपने उन्हें आशीर्वाद दिया कि उनके हृदयों में धर्म की यह ज्योति सदैव ही जाज्व-

ल्यमान रहे। मंगलीक सुनाने के बाद आपने मालेरकोटला की ओर प्रस्थान किया।

लुधियाना में महाराजश्री का जीवन में अनेकों बार आना जाना रहा। लेकिन महाराजश्री का लुधियाना से यह अन्तिम प्रस्थान था।

मालेरकोटला की ओर विहार करने की कहानी भी विचित्र है—अद्‌भुत है। मालेरकोटला में महाराजश्री द्वारा स्थापित प्रेम वैजीटेरियन सोसायटी कई वर्षों से दीनों अनाथों की सेवा में संलग्न थी। इसी सोसायटी के तत्वावधान में आंखों के आपरेशन होने जा रहे थे। गांव-गांव में "आंखों के शिविर" लगने की सूचना इश्तिहारों तक दी जा चुकी थी। सैकड़ों व्यक्तियों ने अपने नाम आपरेशन के लिए लिखवा डाले थे। वे लोग उस दिव्य विभूति के दर्शनों के अभिलाषी थे, जिनकी प्रेरणा से उन्हें प्रकाश-ज्योति मिलने की सम्भावना थी। अत: उनकी भावना को मूर्त रूप देने के लिए मालेरकोटला का श्रीसंघ महाराजश्री के चरणों में विनती करने के लिए लुधियाना आया था। महाराजश्री भक्तों की प्रार्थना को ठुकरा न सके। उन्होंने चातुर्मास की समाप्ति के बाद मालेरकोटला सुखे समाधे आने की स्वीकृति दे दी। फलत: आप ने मालेरकोटला की ओर प्रस्थान किया था।

लुधियाना से प्रस्थान करते समय हजारों नरनारी, आबाल वृद्ध आप के साथ पगयात्रा कर रहे थे। एक दो मील चलने के उपरान्त महाराजश्री ने उन्हें लौट जाने को कहा। मंगलपाठ श्रवण कर लोग अपने-अपने घरों की ओर लौट गए। महाराजश्री का काफिला आगे की ओर ही बढ़ता चला गया भूख, सर्दी, गर्मी तृषा आदि परिषहों को सहन करते हुए। इन परिषहों को सहन करने से आपके आनन पर न तो अवसाद की रेखाएँ ही प्रस्फुटित हो रही थीं और न ही इस जीवन से घृणा की भावनाएं परिलक्षित हो रही थीं। मार्गवर्ती ग्रामों में धर्म की मन्दाकिनी बहाते हुए तीन चार दिन में आप मालेरकोटला पहुंचे।

महाराजश्री के आगमन की सूचना पाकर मालेरकोटला का श्रीसंघ

स्वागतार्थ कई मील चल कर लेने लिए गया। साक्षात्कार होते ही हजारों मस्तक नत होगए गुरु महाराज के चरणारविन्दों में। महाराजश्री के पीछे-पीछे अब चला आ रहा था जनसमूह प्रभु के गीत गाते हुए और महाराजश्री के जयकारों को अवनि और अम्बर में गुंजाते हुए। स्थानक में पहुँचने के उपरान्त आपने उपस्थित जनता को मंगलपाठ सुनाया। तत्पश्चात् जनता विदाई लेकर अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो गई।

अगले दिन से ही महाराजश्री के व्याख्यान आरम्भ हो गए। "आंखों के शिविर" लगने का समय समीप चला आ रहा था। दिल्ली के योग्य अनुभवी डाक्टरों की सेवाएं इस नेत्र शिविर में ऑपरेशन हेतु प्राप्त कर ली गई थीं। ऑपरेशन के लिए जिस-जिस सामग्री की आवश्यकता थी, वह सब जुटा ली गई थीं। दो सौ व्यक्तियों के नेत्रों के ऑपरेशन डाक्टरों ने करने थे। निश्चित तिथि को वे लोग भी यहाँ पर आ गए। सबको धर्मशाला में ठहराया गया। ऑपरेशन से एक दिन पूर्व इसी धर्मशाला में महाराजश्री का प्रवचन हुआ। विषय था सेवा और परोपकार। सेवा और परोपकार की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए महाराजश्री ने मांस, शराब और अंडे के त्याग पर अत्यधिक बल दिया। आप की वाणी से प्रभावित होकर सैकड़ों लोगों ने अण्डे, माँस और शराब का त्याग जीवन भर के लिए कर दिया। अगले दिन योग्य, अनुभवी चिकित्सकों द्वारा लगभग दो सौ व्यक्तियों के नेत्रों के ऑपरेशन हुए। लोगों के रहने, खाने, पीने, आदि की सभी प्रकार की व्यवस्था श्रीप्रेम वैजीटेरियन सोसायटी द्वारा की गयी थी। सभी ऑपरेशन सफल रहे। नेत्र ज्योति प्रदान के इस कार्य से बढ़ कर और पुण्य का कौन सा कार्य हो सकता है। उन की सूनी दुनियाँ में अब ज्योति की किरणें प्रस्फुटित हो गई थीं।

यहां पर महाराजश्री जी लगभग एक मास तक विराजमान रहे। इस मास के प्रत्येक रविवार के दिन यहां पर आपके सार्वजनिक प्रवचन हुए। यहाँ से विहार करके महाराजश्री धुरी पहुंचे। मार्ग में एक रात आपने मार्ग में पड़ने वाले ग्राम में लगाई थी। धुरी की बिरादरी ने आप का स्वागत

किया। कई मील चल कर वे अगवानी के लिए आपकी सेवा में उपस्थित हुए थे। स्थानक में पहुँचने के बाद उपस्थित जनता को आपने संक्षिप्त रूप में कुछ उपदेश दिया। तदनन्तर वे मंगलपाठ सुनने के बाद चरणरज को मस्तक पर लगा कर अपने-अपने घरों को चले गए। महाराज यहाँ पर दस-बारह दिन तक ही ठहरे।

धुरी से कुछ ही मील दूर संगरूर शहर है। महाराजश्री धुरी से विहार कर संगरूर पहुंचे। संगरूर में आपके चार-पांच ही प्रवचन हुए। यहाँ पर आपका इस काल का अन्तिम प्रवचन "लाल बहादुर शास्त्री जी के जीवन" पर हुआ था क्योंकि देश का यह अमर सेनानी रूस में अपनी जीवन लीला समाप्त कर देश की बलिवेदी पर हंसते-हंसते अपने प्राण न्योछावर कर चुका था। महाराजश्री ने कहा, "इस युग की आने वाली पीढ़ी श्री लाल बहादुरशास्त्री की कर्त्तव्यनिष्ठा, देश भक्ति, निडरता, वीरता और उसके श्रेष्ठ विचारों की सदैव प्रशंसा करेगी। वास्तव में ही वह देश का एक अमूल्य रत्न था। वह मर कर नाम पा गया है। कहा भी है:—

हमेशा के लिए जीता, वही इस दौरे फानी में।
मेहर बन कर अजब चमके, जो अपनी जिन्दगानी में॥

यहां से प्रस्थान करके महाराजश्री सनाम पहुंचे। यहाँ पर महाराजश्री आठ दस दिन तक विराजमान रहे और प्रतिदिन नियमित रूपसे व्याख्यान करते रहे। तीन दिन मार्ग में प्रचार करते हुए महाराजश्री सुनक पहुंचे। सुनक में आप जैन स्थानक में विराजमान हुए। यहां पर आठ दस दिन तक ठहरे। आपके प्रवचनों का कार्यक्रम नियमित प्रतिदिन चलता रहा। सैकड़ों लोगों ने धर्मलाभ उठाया। यहां से विहार कर आप जाखल मण्डी पधारे। यहां पर भी आपका प्रतिदिन प्रवचन चलता रहा। श्रोताओं की उपस्थिति सैकड़ों तक की थी। यहां पर आपकी सेवा में भटिण्डे का श्रीसंघ चातुर्मास की विनती करने के लिए आया। भटिण्डे श्रीसंघ के प्रतिनिधियों ने महाराजश्री के चरणों में करबद्ध प्रार्थना की। "भगवन्! आप यह चातुर्मास हमारे यहां करने की

कृपा करें।" महाराजश्री ने उत्तर दिया, "विद्वत्जनों ! मैं इस समय निर्णय लेने की परिस्थिति में नहीं हूं। चातुर्मास का निर्णय मैं जीन्द जाकर करूंगा। जो विचार होगा, वहीं जाकर बताऊंगा।" "आप हमारी चातुर्मास की विनती को ध्यान में अवश्य रखिएगा।" यह प्रार्थना करके भटिण्डे का श्रीसंघ लौट गए। उनके मन-कमल म्लान हो गए थे।

यहां से प्रस्थान करके महाराजश्री फिर मुनक लौटे। मुनक से आप टुहाना पधारे। यहां पर आप चार-पांच दिवस तक विराजमान रहे। दो तीन प्रवचन आपके यहां सार्वजनिक हुए। लगभग आठ नौ सौ की संख्या में नियमित रूप से श्रोता गण इन सार्वजनिक प्रवचनों से लाभ उठाते रहे। यहां से विहार करके एक रात्रि मार्ग में लगाकर महाराजश्री बिठमंडा पधारे। यहां से आप उकलाना की मंडी में पधारे। उकलाना की मंडी के प्रांगण में आप के सार्वजनिक प्रवचनों का कार्यक्रम चलता रहा। श्रोताओं की उपस्थिति लगभग एक हजार तक की हो जाया करती थी। सार्वजनिक प्रवचनों का यह क्रम चार पांच दिवस तक ही चला। यहां से प्रस्थान करके आपने रास्ते में निरमाणा मंडी, घसो, उच्याणा मंडी आदि क्षेत्रों में ७ या ८ दिन लगाकर बड़ौदा की भूमि को अपने चरणों से पावन किया। यहां पर आपने चार-पांच दिन तक अमृत वर्षा की। बड़ौदा की भूमि की तपन को शीतल करके आप जींद पहुंचे। स्वतन्त्रता से पूर्व यह एक महान रियासत थी। यहां पर जैनधर्मानुरागी लोग प्रचुर संख्या में निवास करते हैं। यहां का श्रीसंघ आपके आगमन की सूचना पाकर फूला न समाया। शानदार स्वागत के साथ आप इस नगरी में प्रविष्ठ हुए। स्थानक में पहुंचकर आपने उपस्थित जनता को संक्षिप्त सा उपदेश दिया। मंगलपाठ सुनने के बाद सभी अपने कार्यों में संलग्न हो गए। दूसरे दिन से ही आपके धर्मोपदेश देने का कार्यक्रम प्रारम्भ हो गया। एक दिन महाराजश्री ने मुझ से पूछा, "कहो, इस बार हमें कहां चातुर्मास करना चाहिए ?" आपकी भावना कहां चातुर्मास करने की है ?" मैंने विनीत भाव से पूछा। महाराजश्री का उत्तर प्राप्त होने से पूर्व ही मैं विचारों के ज्वारभाटे में डूबने उतरने लगा। विचार बनते रहे और मिटते रहे। दिल्ली के चाँदनी चौक

में ही महाराजश्री का इस बार चातुर्मास होना चाहिए। यह विचार अकस्मात् मेरे मन में प्रस्फुटित हुआ। महाराजश्री बोले, "मेरा विचार तो भटिण्डे में चातुर्मास करने का था क्योंकि मैं अभी पंजाब में ही विचरने का भाव था परन्तु भवितव्यता को कोई नहीं जानता।" तत्पश्चात् मैंने अपने विचार महाराजश्री के सम्मुख रखते हुए कहा कि मेरे साथ में आपका कोई भी चातुर्मास दिल्ली में नहीं हुआ। दिल्ली में भी चान्दनीचौक क्षेत्र का चातुर्मास यदि हो जाए तो अच्छा रहेगा।" जहां का अब अन्नजल होगा देखा जाएगा।" कह कर वे मौन हो गए।

बात आई गई हो गयी। कुछ दिन बाद लाला इन्द्रसैन जी चान्दनी चौक के पन्द्रह बीस भाइयों के साथ कारों द्वारा महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुए। चाँदनी चौक के धर्म प्रेमी बन्धुओं ने महाराजश्री से विनती की कि भगवन् इस वर्ष आपका चातुर्मास चाँदनी चौक दिल्ली में होना चाहिए। यदि हमें आपकी सेवा करने और धर्म लाभ प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त होत तो यह हमारा अहो भाग्य होगा।" विनती के बाद सबके नेत्र महाराजश्री के मुखारविन्द पर जा टिके। महाराजश्री का मौन उनकी आशा को निराशा में परिवर्तित कर रहा था।

"आपका क्षेत्र फरसने की मेरी भी भावना है परन्तु अभी मैं आपको उत्तर देने की स्थिति में नहीं हूं। रोतहक पहुंचने के बाद ही मैं उत्तर देने की स्थिति में हो सकता हूँ। वहाँ पहुंच कर ही आप लोगों को उत्तर दूंगा।" महाराजश्री ने उत्तर दिया। क्षीण सी आशा की झलक लेकर चांदनी चौक दिल्ली का श्रीसंघ वापिस लौट आया। पाँच सात दिन के उपरान्त महाराजश्री ने भी यहां से प्रस्थान कर दिया।

मार्ग के गांवों में धर्म की गंगा बहाते हुए तीन चार दिन में आप जुलाना मंडी पहुंचे। यहां पर आपके तीन-चार व्याख्यान हुए। यहां से विहार करके आप बैंशी पधारे। यहाँ पर आपका सार्वजनिक व्याख्यान हुआ। जिसमें सैंकड़ों की संख्या में श्रोतागण उपस्थित हुए थे। आपके विचारों

का यहाँ के लोगों पर बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। यहां से चल कर एक रात्रि मार्ग में लगाकर आप रोहतक शहर में पधारे। नौ दस दिन तक अविरल गति से आपके प्रवचनों का क्रम चलता रहा। आपके प्रवचनों से यहां के धर्म प्रेमी बन्धुओं ने खूब लाभ उठाया। दिगम्बर तथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय के बन्धुओं ने महाराजश्री से महावीर जयन्ती के उत्सव में सम्मिलित होकर धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने सहर्ष उनकी प्रार्थना स्वीकृत कर ली।

अहिंसा के अवतार क्षमामूर्ति भगवान् महावीर जी की पावन जयन्ती का शुभ दिवस आया। धर्मप्रेमी बन्धुओं में अपार उत्साह था इस दिन। विशाल मण्डप में लोग एकत्रित थे। महाराजश्री ने भगवान् महावीर के जीवन चरित्र पर ओजस्वी वाणी में प्रकाश डाला। जनता मंत्रमुग्ध होकर आपकी वाणी का रसास्वादन करती रही।

इसके बाद महाराजश्री शहर से मण्डी में पधार गए। यहां पर आपके व्याख्यान स्थानक में ही हुए। दिल्ली चाँदनी चौक क्षेत्र के भाई एक बस और कई कारों द्वारा लाला इन्द्रसेन जी के साथ महाराजश्री की सेवा में पुनः चातुर्मास की विनती के लिए उपस्थित हुए। सभी ने महाराजश्री से चांदनी चौक दिल्ली में चातुर्मासार्थ करने की प्रार्थना की। महाराजश्री इन के अनुरोध को ठुकरा न सके। उन्होंने उनकी विनती स्वीकार कर सुखे समाधे पहुंचने की स्वीकृति दी। सांपला, बहादुरगढ़, नागलोई आदि शहरों को फरसते हुए और धर्मप्रचार करते हुए महाराजश्री जी दिल्ली (रामपुरे) में स्थित लाला श्रीपाल जी जैन के कारखाने में ठहरे। समस्त दिल्ली समाज की ओर से महाराजश्री का भव्य स्वागत किया गया। महाराजश्री के चरणों में उन्होंने अपनी श्रद्धा के पुष्प कविता, भजन तथा भाषणों, के रूप में अर्पित किए। तत्पश्चात् शान्तिनगर के भाइयों ने महाराजश्री से शान्तिनगर को अपनी चरणरज से पावन करने की प्रार्थना की। महाराजश्री शान्तिनगर के स्थानक में पधार गए।

शान्ति नगर में दस दिन तक आपके मधुर एवं प्रभावशाली प्रवचन हुए। सैंकड़ों की संख्या में लोग आप के वचनों को श्रवण करने के लिए प्रतिदिन आते रहे। आप के विचारों से यहां के लोगों ने खूब लाभ उठाया। यहां से आपने करौल बाग के लिए प्रस्थान किया। सैंकड़ों प्रेमी आप के साथ पैदल पदयात्रा कर रहे थे। मार्ग में लिबर्टी सिनेमा पड़ता है। यहां पर स्यालकोट निवासी लाला मुंशीराम जी का निवास स्थान है। कुछ समय के लिए महाराजश्री ने यहां विश्राम किया। लाला मुंशीराम जी के दोनों पुत्र वहीं कोठी पर थे। श्री जोगिन्दर पाल और श्री सुदर्शनलाल जी महाराजश्री के साथ आने वाले सभी बन्धुओं को अल्पाहार बड़े प्रेम से करवाया। तत्पश्चात् महाराजश्री जी लाला इन्द्रसेनजी की कोठी में विराजे। एक भीमकाय—विशाल पण्डाल में दिल्ली समाज की ओर से आप का भव्य स्वागत किया गया। धर्म प्रेमियों ने आप के सम्मान में अपने हृदय के उद्‌गार कविता, भजन तथा भाषण के रूप में प्रस्तुत किए। श्रद्धा के द्वारा समर्पित भाव-प्रसूनों का उत्तर देते हुए धार्मिक स्थान की महत्ता पर प्रकाश डाला। आप की प्रेरणा से करौल बाग स्थानक के लिए लोगों ने दिल खोल कर चन्दा लिखवाया। सब से पहले लाला सरदारी लाल जी, श्री इन्द्रसेन जी, श्री जोगिन्दर लालजी, श्री सुदर्शन जी तथा श्री शगुनलाल जी के परिवार वालों की ओर से एक लाख तीस हजार रुपए की राशि स्थानक के निर्माण के लिए लिखाई गई। तत्पश्चात् लाला श्रीपाल जी जैन सुपुत्र लाला बलदेव दास जी जैन ने पच्चीस हजार रुपए की राशि दान में लिखवाई। फिर तो करोल बाग स्थानक के लिए दान की राशि लिखवाने वालों की भीड़ लग गई। किसी ने दस हजार रुपए की राशि दान में लिखवाई तो किसी ने पांच हजार रुपए की राशि लिखवाई। किसी ने एक हजार रुपए की राशि लिखवाई तो किसी ने एक सौ रुपए की। इस यज्ञ में उपस्थित जनता ने यथाशक्ति अपना २ योगदान दिया। अनुमानतः दो लाख रुपया एकत्रित हुआ था। परिणाम स्वरूप करोल बाग में जैन स्थानक के लिए बनीबनाई कोठी खरीदी गई।

महाराजश्री लाला इन्द्रसेन जी की कोठी पर सात आठ दिन तक और विराजमान रहे। नियमित रूप से आप के प्रवचन यहाँ पर होते रहे। व्याख्यान में उपस्थित होने वाले भाइयों की सेवा लाला इन्द्रसेन जी की तरफ से शर्बत द्वारा नियमित रूप से होती रही। श्रोताओं की उपस्थिति प्रचुर मात्रा में रहती थी। रविवार के दिन आप का प्रवचन सार्वजनिक रूप में हुआ। व्याख्यान की समाप्ति के बाद महाराजश्री सदरबाजार के स्थानक में अपनी शिष्य मण्डली सहित पधार गए। यहाँ पर वयोवृद्ध तपस्वी श्री भागमलजी महाराज विराजमान थे। आप ने सर्वप्रथम उन्हें विधिवत् वन्दना-नमस्कार की। अब आपके उपदेशों का क्रम चल पड़ा। रविवार के दिन डिप्टीगंज के विशाल मैदान में हजारों लोगों ने आप का सार्वजनिक प्रवचन सुना। आप की व्याख्यान देने की शैली बड़ी ही मनोहारी थी। बीच २ में फूटने वाली संगीत की स्वर लहरियों पर तो लोगों के मन-मयूर नृत्य कर उठते थे। चुटकियाँ, व्यंग्य तथा दृष्टान्त व्याख्यान को और रुचिकर बना देते थे। हजारों लोगों ने आप के इस प्रवचन को श्रवण कर लाभ उठाया। यहाँ पर आप दस पन्द्रह दिन तक विराजे।

सदर स्थानक से विहार कर के आप चाँदनी चौक के स्थानक में पधार गए। स्थानक की विशाल छत पर आप के प्रवचनों के लिए व्यवस्था की गई। यहाँ पर महाराजश्री लगभग दस दिवस तक विराजमान रहे। आपका प्रवचन प्रतिदिन होता रहा। हजारों लोगों ने आप के अमृत वचनों को श्रवण कर लाभ उठाया।

यहाँ से प्रस्थान करके आप सब्जीमण्डी स्थानक में पधारे। सब्जीमण्डी क्षेत्र की बिरादरी ने स्थानक में पदार्पण करने पर आपका हार्दिक स्वागत किया। उपस्थित जनता को आप ने संक्षिप्त सा उपदेश देकर मंगलपाठ सुनाया। तदुपरान्त सभी लोग अपने २ कार्यों में संलग्न हो गए। महाराजश्री प्रतिदिन यहाँ भी अमृत-वर्षा करते रहते। हजारों लोग आप के प्रवचनों को श्रवण कर लाभ उठाते रहे। चातुर्मास काल समीप आ रहा है। अतः चातुर्मास से आठ दिन पूर्व आप चाँदनी चौक पधारे गए।

दिल्ली चान्दनी चौक का चातुर्मास

ई० स० १९६६ विक्रमी संवत् २०२३

महाराजश्री के चाँदनी चौक में पधार जाने के कारण यहाँ के जैन बन्धुओं में चेतनता पैदा हो गई। उन्होंने महाराजश्री का भव्य स्वागत किया।

अन्त में चातुर्मास का दिन आया। नई उमंगों और तरंगों के साथ उल्लास और अनुराग लिए। महाराजश्री के व्याख्यान का आयोजन स्थानक की विशाल छत पर किया गया था। विशाल छत शामियानों से आच्छादित थी। जनता महाराजश्री के आगमन की प्रतीक्षा में थी। महाराजश्री मण्डल में मंच पर सुशोभित हुए। आपने चातुर्मास की व्याख्यान माला का श्रीगणेश "सुबह शाम जिसको तेरा ध्यान होगा" नामक गीत की स्वर-लहरियों से किया। व्याख्यानमाला का विषय रहा साधु और श्रावक जीवन। महाराजश्री ने कहा कि जब मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का क्षय होता है, उपशम होता है अथवा क्षयोपशम होता है तो आत्मा में संसार के प्रति घृणा (अरुचि) के भाव उत्पन्न होते हैं और मोक्ष के प्रति रुचि पैदा होती है। ऐसी आत्मा में यदि अप्रत्याख्यानावरण कषाय का उदय नहीं हो तो वह आंशिक चारित्र को प्राप्त कर के देशविरत श्रमणोपासक हो जाती है, किन्तु जिस आत्मा का मोहनीय कर्म बहुत ही स्वल्प (संज्वलन कषाय) होता है, वह संसार से सर्वथा विरक्त हो जाती है। वह कुटुम्ब-परिवार आदि सभी सांसारिक सम्बन्धों को तथा समस्त सावद्य योगों का त्याग कर के अणगार धर्म को स्वीकार करती है। अणगार धर्म पांच प्रकार का होता है।

१. सामायिक चरित्र—विषय-कषाय और आरम्भ परिग्रह आदि सावद्य योग रूप विषम भाव की निवृत्ति और ज्ञान, दर्शन, चरित्र मय रत्न त्रय रूप

समभाव की प्राप्ति ही सामायिक चारित्र है। सामायिक चारित्र के भी दो भेद हैं :—

इत्वर कालिक सामयिक चारित्र—यह चारित्र थोड़े समय का होता है। इसकी स्थिति जघन्य सात दिन, मध्यम चार मास और उत्कृष्ट छः मास की है। भरत-ऐरावत क्षेत्र के प्रथम और अन्तिम तीर्थंकरों के शासनाश्रित साधु साध्वियों को सामायिक चारित्र देने के बाद दूसरा छेदोपस्थापनीय चारित्र रूप महाव्रतों का आरोपण किया जाता है। महाव्रतों के पूर्व जो चारित्र होता है, वह इत्वर कालिक सामायिक चारित्र कहलाता है।

यावत् कथिक सामायिक चारित्र—संसार का त्याग करते समय सर्व सावद्य योगों का त्याग करके सामायिक चारित्र जिन के जीवन भर रहता है, उन में पुनः महाव्रत आरोपण की आवश्यकता नहीं होती। यह जीवन भर का सामायिक चारित्र भरत-ऐरवत् क्षेत्र में दूसरे से लगा कर तेईसवें तीर्थकरों के शासन में तथा महाविदेह क्षेत्र के सभी साध्वियों और साधुओं में होता है।

२. छेदोपस्थापनीय चारित्र—पूर्व पर्याय का छेदन कर महाव्रतों में उपस्थापना किए जाने रूप चारित्र। यह भरत-ऐरवत् क्षेत्र के अन्तिम और प्रथम तीर्थ तीर्थकरोके समय में ही होता है। शेप २२ तथा महाविदेह में नहीं होता। यह चारित्र दो प्रकार का होता है :—

निरतिचार छेदोपस्थापनीय—इत्वर कालिक सामायिक वाले को महाव्रतों का आरोपण किया जाए तव तथा तेईसवें तीर्थंकर के तीर्थ के साधु, अन्तिम तीर्थंकर के तीर्थ में आवें तब, विना दोप के ही पूर्व-चारित्र का छेद कर महाव्रतों का आरोपण करने रूप निरतिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है।

सातिचार छेदोपस्थापनीय—मूल गुणों का घात करने वाले को पुनः महाव्रतों का आरोपण करने रूप चारित्र-सातिचार छेदोपस्थापनीय चारित्र है।

परिहार विशुद्ध चारित्र—जिस चारित्र के द्वाराकर्मों का विशेष रूप से

कहलाता है। ४ सूक्ष्म सम्पराय चारित्र—जिसमें किंचित् मात्र कषाय-लोभ हो, वह सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहलाता है। यह भी दो प्रकार का होता है। जैसे:—

संक्लिश्यमान सूक्ष्म सम्पराय—उपशम श्रेणी पर चढ़कर वापिस गिरते समय परिणाम उत्तरोत्तर संक्लेश युक्त होने के कारण, इस अधोमुखी की परिणति को संक्लिश्यमान कहते हैं।

विशुद्धयमान सूक्ष्मसम्पराय—उपशम अथवा क्षपक श्रेणी पर चढ़ते समय परिणाम उत्तरोत्तर विशुद्ध रहते हैं ? इसलिए उत्थानोन्मुखी-वर्धमान परिणाम के कारण विशुद्धयमान सूक्ष्म सम्पराय चारित्र कहलाता है। यह चारित्र केवल दसवें गुणस्थान में होता है।

यथाख्यात चारित्र—क्रोध, मान, माया और लोभ से रहित साधु का चारित्र जो किसी भी प्रकार के किंचित् दोष से रहित पूर्ण और निर्मल विशुद्ध होता है, उस सर्वोच्च चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहते हैं। यह चारित्र ग्यारहवें गुणस्थान में और उसके आगे के गुणस्थानों में होता है। इसके भेद निम्नलिखित हैं:—

छद्मस्थ यथाख्यात चारित्र—यह ग्यारहवें और बारहवें गुणस्थान में होता है।

केवली यथाख्यात चारित्र—यह तेरहवें और चौदहवें गुणस्थान में होता है।

उपशान्त मोह वीतराग यथाख्यात चारित्र—यह ग्यारहवें गुणस्थान में होता है।

क्षीण मोह वीतराग यथाख्यात चारित्र—यह बारहवें गुणस्थान में होता है।

प्रतिपाति यथाख्यात चारित्र—यह ग्यारहवें गुणस्थान में होता है। इस में मोह उपशान्त हो जाता है। उपशान्त हुए मोह की स्थिति समाप्त हो जाने पर ह चारित्र भी समाप्त हो जाता है।

और अन्य गुणस्थान को प्राप्त करता है। अन्य गुणस्थान प्राप्त करने पर मोह का उदय हो जाता है, इसलिए यह प्रतिपाति यथाख्यात चरित्र है।

अप्रतिपाति यथाख्यात चारित्र—बारहवें और उसके आगे के गुणस्थानों में प्राप्त होता है।

सयोगी केवली यथा ख्यात चारित्र—तेरहवें गुणस्थान में प्राप्त होताहै।

अयोगी केवली यथाख्यात चारित्र—चौदहवें गुण स्थान में प्राप्त होता है।

वर्तमान काल में इत्वरकालिक सामायिक चरित्र तथा छेदोपस्थापनीय चारित्र ही है। इन दो चारित्रों का जो कल्पानुसार भाव पूर्वक पालन करते हैं, वे साधु इस संसार समुद्र में जहाज के समान तरन तारन हैं।

निर्ग्रंथ के भेद

पुलाक निर्ग्रंथ—पुलाक शब्द का अर्थ है सारहीन—पोला जिसमें चरित्र परिणाम न हो, जो केवल वेशभूषादि धारण किए हुए हो। कोई वेशधारी या साधुता का दिखावामात्र करने वाला पुलाक-निर्ग्रंथ नहीं हो सकता। पुलाक बनने से पूर्व उसमें सार रूप चारित्र भावना रहती है। वह व्यक्ति साधारण नहीं होता। उसकी भावना महान होती है। महान भावना के फलस्वरूप उसे "पुलाक" नाम की लब्धि प्राप्त हो जाती है। उसे प्राप्त कर वह पुलाक निर्ग्रंथ हो जाता है। संघ पर आपत्ति आजाने पर यदि कोई दूसरा मार्ग उसके दमन का न हो तो पुलाक निर्ग्रंथ अपनी इस विशिष्ट शक्ति से उसका दमन कर सकता है। यह स्थिति अन्तर्मुहूर्त मात्र की रहती है। इस अल्प समय में ही वे उग्र कषाय से अपने जीवन को निःसार बना देते हैं, इसीलिए उन्हें पुलाक कहा है। पुलाक मूल और उत्तर गुणों के विराधक होते हैं। उनमें सामायिक और छेदोपस्थापनीय चारित्र होता है। यदि वे पुनः संभल जाएं तो भाव स्थिति को प्राप्त करके आलोचना—प्रायश्चित करके आराधक हो सकते हैं। संयम की पुलाक निर्ग्रंथ के दो भेद होते हैं। यथा—लब्धि पुलाक और प्रतिसेवना पुलाक। इनके पाँच भेद हैं :—

ज्ञान पुलाक—ज्ञान में दोष (अतिचार) लगाने वाला।

दर्शन पुलाक—सम्यक्त्व में शंकादि दोष लगाने वाला।

चारित्र पुलाक—मूल तथा उत्तर गुण में दोष लगाने वाला।

लिंग पुलाक—लिंग से अभिप्राय वेश से है। बिना ही कारण अन्य लिंग धारण करना अथवा साधु लिंग का भी कोई चिह्न धारण कर लेना।

यथा सूक्ष्म पुलाक—प्रमाद बढ़ा कर मन से अकल्पनीय का सेवन करे अथवा उपरोक्त चार भेदों में कुछ विराधना करे।

वकुश निर्ग्रंथ—जिसके चारित्र रूपी निर्मल वस्त्र में कुछ दोप लग जाते हैं। जो शोभा प्रिय है, जो ऊपर टीपटाप पर ध्यान रख कर भाव संयम में दोष लगाता है, वह वकुश निर्ग्रंथ कहलाता है। बकुश गिर्ग्रंथों का चारित्र पुलाक निर्ग्रंथ से श्रेष्ठ होता है। इन में चारित्र भावना तो होती है परन्तु फैशन प्रियता के कारण वे कुछ दोपोंका सेवन कर लेते हैं। इसीलिए वे बकुश कहलाते हैं। वकुशनिर्ग्रन्थ दो प्रकार के होते हैं :—

शरीर वकुश—हाथ, पांव, मुँह, दान्त आदि को धोकर साफ रखने वाला, केश संवारने वाला और नेत्रों की सुन्दरता को बढ़ाने के लिए अंजनादि (सुरमा आदि) लगाने वाला शरीर बकुश है।

उपकरण वकुश—वस्त्रों और पात्रों को धोकर तथा रंग कर सुशोभित करने वाला। इस प्रकार शोभा बढ़ाने वाले साधु साध्वी, सुखशीलिए, प्रशंसा के अभिलाषी तथा अधिक उपकरण रखने वाले होते हैं। इन के शिष्यों में भी ये दोप प्रायः आ जाते हैं। दोनों प्रकार के वकुश के निम्नलिखित पांच भेद हैं :—

आभोग वकुश—शरीर और उपकरण की शोभा बढ़ाना साधु के लिए निषिद्ध है। यह जान कर भी जो ऐसा व्यवहार करते हैं, वे आभोग वकुश होते हैं।

यथा सूक्ष्म कुशील—तप की अथवा अन्य विशेषता सुनकर या प्रशंसा सुनकर हर्षित होने वाला।

कषाय कुशील निर्ग्रन्थ में सूक्ष्म कषाय होती है। इनमें यही दोष है। ये मूलगुण और उत्तर गुण में दोष नहीं लगाते। इनमें से संज्वलन कषाय के कोई चारों कषायों में, किसी में तीन, दो और एक में भी होते हैं। इनका गुणस्थान छठे से दसवें तक होता है। ये कल्पातीत, जिनकल्प और स्थितकल्प अस्थितक और स्थिवर यह पांच कल्प होते हैं। इनमें यथाख्यात के बिना प्रारम्भ के चार चारित्र होते हैं।

प्रतिसेवना कुशील विराधक होते हैं। इनका गुणस्थान छठा और सातवां होता है निर्ग्रथ—जिसके ग्रंथ—मोह का उदय नहीं हो, यह निर्ग्रन्थ कहलाता है। कषाय के उदय का अभाव हो जाने पर निर्ग्रन्थ दशा की प्राप्ति होती है। अतः ये निर्ग्रथ माने जाते हैं इनके दो भेद हैं:—

उपशान्त मोह निर्ग्रन्थ—जिनके मोह का उदय रुक जाता है, वे उपशान्त मोह निर्ग्रन्थ कहलाते हैं। ग्यारहवें गुणस्थान वाले उपशान्त मोहनीय निर्ग्रथ होते हैं।

क्षीण मोह निर्ग्रन्थ—जिन का मोह सर्वथा नष्ट हो जाता है, वे क्षीण मोहनीय निर्ग्रथ कहलाते हैं। बारहवें गुणस्थान वाले क्षीण मोहनीय निर्ग्रथ होते हैं। ये दोनों छद्मस्थ होते हैं। निर्ग्रथ के भी पांच भेद निम्न हैं:—

प्रथम का समय निर्ग्रथ—निर्ग्रंथ का काल तो केवल अन्तर्मुहूर्त का ही है किन्तु इस में भी निर्ग्रंथ दशा प्राप्ति के प्रथम समयवर्ती निर्ग्रथ इस भेद में है।

अप्रथम समय निर्ग्रथ—प्रथम समय के बाद अन्य समयों में वर्तन वाले। चरम समय निर्ग्रंथ—अन्तिम समय में वर्तमान निर्ग्रंथ।

अचरम समय निर्ग्रन्थ—मध्य के समयों में वर्तमान।

यथा सूक्ष्म निर्ग्रथ—सभी समयों में वर्तमान निर्ग्रथ।

निर्ग्रंथ की स्थिति जघन्य एक समय उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त की होती है। अन्तर्मुहूर्त के बाद उपशान्त मोह निर्ग्रंथ तो कषाय कुशील हो जाते हैं और क्षीण मोह निर्ग्रंथ स्नातक हो जाते हैं। इन में एक यथाख्यात चरित्र ही होता है।

५. स्नातक निर्ग्रंथ—स्नातक का अर्थ है निर्मल—विशुद्ध। जो अणगार घाति कर्मों के समूह को समूल नष्ट करके विशुद्ध हो गए हैं, वे स्नातक हैं। ये यथाख्यात चारित्री कल्पातीत स्नातक भी दो प्रकार के होते हैं :—

सयोगी स्थानक—तेरहवें गुणस्थान पर रहे हुए केवल ज्ञानी भगवन्त।

अयोगी स्नातक—चौदहवें गुणस्थान पर रहे हुए केवली भगवान।

इन स्नातकों को नीचे लिखे पांच प्रकार हैं :—

अच्छवि—काय योग का निरोध करके शरीर रहित हुए स्नातक।

अशबल—विशुद्ध चारित्रवान।

अकर्मांश—घाति कर्मों को क्षय करके भव-भ्रमण के कारणों को नष्ट करने वाले।

संशुद्ध ज्ञान दर्शन धर अरिहंत केवली—इन्द्रियों, मन, तथा, श्रुत आदि की सहायता के विना ही परमविशुद्ध केवल ज्ञान और दर्शन को धारण करने वाले विश्व पूज्य जिन भगवान।

अपरिश्रावी—काय योग के पूर्ण निरुंधन हो जाने से कर्म प्रवाह रहित निष्क्रिय अयोगी केवली भगवान्।

पुलाक सर्वत्र और सदाकाल नहीं होते हैं। वे अवसर्पिणी काल के पहले दूसरे और छठे आरे में नहीं होते किन्तु जन्म की अपेक्षा तीसरे और चौथे आरे में होते हैं तथा सद्भाव की अपेक्षा तीसरे और चौथे आरे में ही होते हैं। पांचवें और छठे में नहीं होते।

नो उत्सर्पिणी और नोअवसर्पिणी काल के चार विभाग हैं। जैसे :—सुषमासुषम समान काल (पहले आरे के समान) इस प्रकार का काल

देव कुरु और उत्तर कुरु क्षेत्र में होता है। सुषमा समान काल (दूसरे आरे के समान) इस प्रकार के भाव हरिवर्ष और रम्यक् वर्ष क्षेत्र में सदा काल रहता है। सुषम दुःषमा समानकाल (तीसरे आरे जैसा) इस प्रकार की स्थिति हिमवत और ऐरण्यवत क्षेत्र में रहती है और दुःषम सुषम समान काल (चौथे आरे जैसा) महाविदेह क्षेत्र में सर्वदा रहता है। पुलाक निर्ग्रंथ पूर्व के तीन काल समान प्रवर्तन में नहीं होते किन्तु चौथे समान काल अर्थात् महाविदेह क्षेत्र में होते हैं।

पुलाक निर्ग्रंथ जन्म और सद्भाव की अपेक्षा कर्म भूमि में ही होते हैं, अकर्मभूमि में नहीं होते। इन का साहरण भी नहीं होता अर्थात् कोई देव दानव इनका हरण करके अन्यत्र नहीं ले जा सकता। पुलाक के अतिरिक्त अन्य निर्ग्रंथ जन्म और सद्भाव की अपेक्षा कर्म भूमि में होते हैं। इन का साहरण हो तो अकर्म भूमि में इन का सद्भाव हो सकता है। अवसर्पिणी काल में जन्म तथा साहरण की अपेक्षा तीसरे चौथे और पाँचवे आरे में तथा उत्सर्पिणी काल में जन्म की अपेक्षा दूसरे, तीसरे और चौथे आरे में और सद्भाव की अपेक्षा चौथे आरे के समान काल वाले (महाविदेह क्षेत्र में) होते हैं और साहरण की अपेक्षा किसी भी काल में होते हैं।

पुलाक, वकुश और प्रतिसेवना कुशील में जघन्य ज्ञान—मति, श्रुति ये दो और उत्कृष्ट अवधि सहित तीन ज्ञान होते हैं। कषाय कुशील और निर्ग्रंथ में दो ज्ञान हों, तो मति, श्रुति, तीन हों तो मति, श्रुति और अवधि अथवा मति, श्रुति और मनः पर्यव ज्ञान होता है। चार ज्ञान भी हो सकते हैं। स्नातक में तो एकमात्र केवल ज्ञान ही होता है।

पुलाक में कम से कम नौवें पूर्व की तीसरी आचार वस्तु तक का और अधिक से अधिक संपूर्ण नौ पूर्वक श्रुत होता है। स्नातक तो श्रुत रहित ही होते हैं। वकुश मूल गुण में दोष नहीं लगाते किन्तु उत्तरगुण में दोष लगाते हैं। पुलाक और प्रतिसेवना कुशील तो मुल गुण और उत्तर गुण में दोष लगाते हैं। ये तीनों विरोध कहोते है वुकश उत्तरगुप का विराधक होता हैं।

कषाय कुशील का चारित्र निर्दोष होता है। वे विराधक नहीं होते किन्तु आराधक ही होते हैं। इसी प्रकार निर्ग्रंथ और स्नातक भी आराधक ही होते हैं। पुलाकपन जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक ही रहता है। बकुश जघन्य एक समय और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि तक। निर्ग्रंथ जघन्य एक समय और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त तक तथा स्नातक जघन्य अन्तमुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम पूर्वकोटि तक रहते हैं।

पुलाक और निर्ग्रंथ तो कभी कभी नहीं भी होते किन्तु बकुश, दोनों प्रकार के कुशील और स्नातक तो सदाकाल रहते हैं। हमारे भारत क्षेत्र में इस समय बकुश और दोनों प्रकार के कुशील ही हैं। पुलाक निर्ग्रंथ और स्नातक का सर्वथा अभाव ही है।

जिन त्यागी श्रमणों के घर बार, कुटुम्ब परिवार और धन धान्यादि बाहरी परिग्रह नहीं होता तथा मन में कषायादि की गांठ नहीं होती, किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं होता, वे निर्ग्रंथ कहलाते हैं। जो द्रव्य और भाव से अकेला (गच्छ में रहते हुए भी एकत्व भाव वाला। है, जो अपनी आत्मा के एकत्व को भली प्रकार जानता है, जो सम्यक् ज्ञान और सम्यक् श्रद्धान से युक्त है, जिस ने आश्रव द्वारों को रोक रखा है, जिस ने अपनी इन्द्रियों और मन को वश में किया हुआ है, जो पांचों समितियों से युक्त है, जो शत्रु और मित्र में समभाव रखने वाला है। जिसने आत्मवाद को प्राप्त कर लिया है. जो सम्मान और पूजा पाने की कामना नहीं रखता है, जो धर्म के इच्छुक, धर्म के ज्ञाता, मोक्ष मार्ग में परायण, समभाव पूर्वक व्यवहार करने वाला, दान्त, देह की ममता से रहित है, जो देह भाव को त्याग कर आत्मा में रमण करता है। वही निर्ग्रन्थ है।

इसी विषय पर महाराजश्री के उपदेशों का क्रम चलता रहा। पर्वाधिराज महापर्व पर्यूषण आए। महाराजश्री ने इन दिनों अन्तगढ़ सूत्र का

वाचन किया। भाइयों ने खूब तप की आराधना की। वेले, तेले, चोले, अठाइयाँ हुई। सम्वत्सरी के दिन समस्त स्थानक में ऊपर नीचे ध्वनि विस्तारक यन्त्र लगाए गए थे, ताकि जनता महाराजश्री की अमर-वाणी का रसपान कर सके। लोग छत पर तथा नीचे औघ ऊपर की मंजिल में खचाखच भर गए। भीड़ अपार थी। महाराजश्री ने साढ़े चार घण्टे तक प्रवचन किया।

आप के शिष्य श्री तुलसी मुनि जी जंगल जाते समय अकस्मात् स्कूटर की चपेट में आ गए। उनके पैर की हड्डी टूट गई थी अतः डाक्टर ने उनके पैर पर पलस्तर पैंतालीस दिन के लिए बांध दिया। अस्पताल से उन्हें बारह-दरी चांदनी चौक पर लाया गया। इस पलस्तर को पैंतालिस दिन के बाद खोला गया। पैर की हड्डी अभी भी पूर्णरूपेण नहीं जुड़ी थी। अतः पुनः पलस्तर लगाया गया। यह पलस्तर भी पैंतालीस दिन बाद खोला गया। अब हड्डी पैर की ठीक रूप में जुड़ गई थी।

उपरोक्त परिस्थिति के कारण महाराजश्री को चातुर्मास के बाद चार मास तक चांदनीचौक के स्थानक में ही ठहरना पड़ा।

यहां से महाराजश्री ने सदर को प्रस्थान किया। प्रस्थान के समय जैन, जैनेतर लोग काफी संख्या में साथ थे। सदर में आप स्थानक में विराजे। यहां पर आपके लगभग चौदह-पन्द्रह व्याख्यान हुए। इससे बाद महाराजश्री सब्जी-मण्डी क्षेत्र में पधारे। यहां पर आप प्रतिदिन व्याख्यान करते रहे। व्याख्यान में प्रतिदिन हजारों की संख्या में उपस्थित होकर धर्मलाभ प्राप्त करते रहे। सब्जीमण्डी के श्रीसंघ ने महाराजश्री से चातुर्मास की आग्रहपूर्ण विनती की। विनती का समय उपयुक्त था, अतः महाराजश्री ने सहर्ष सब्जीमण्डी क्षेत्र की विनती चातुर्मास की स्वीकार कर ली। इसके कुछ दिन बाद शक्तिनगर क्षेत्र के भाई महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने महावीर जयन्ती के दिन महाराजश्री से शक्तिनगर पधारने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

का सेवन मत करो। अपना मकान मांसाहारियों को किराए पर मत दो। मांसाहारियों को मकान मत बेचो। आदि बातों का उपदेश तो साधु लोग दिया ही करते हैं। साधुओं के इस उपदेश पर कोई भी प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता। यदि कोई व्यक्ति अनधिकार चेष्टा करके इन उपदेशों पर प्रतिबन्ध लगाने या लगवाने का प्रयास करता है तो यह उसकी एक महान भूल होगी। साधु इस प्रतिबन्ध को स्वीकार करने के लिए किसी भी परिस्थिति में तैयार नही हो सकता क्योंकि यह तो साधु का निज धर्म है।

एक दीर्घकालीन घटना की स्मृति उभर आई है मस्तिष्क पटल में। ईस्वी सन् १९५३ में मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी महाराज भिलाड़ा नामक ग्राम में विराजमान थे। भिलाड़ा मारवाड़ का प्रदेश है। एक दिन महाराज मिश्रीमल जी शंकानिवृत्ति के लिए जंगल में गए। एक सरोवर पर कुछ लोग मछलियां पकड़ रहे थे। मरुधर केसरी जी ने उन्हें मछलियां न पकड़ने का उपदेश दिया। केसरी जी के अमृतमयी वचन उन्हें विष के समान लगे। उन्होंने महाराजश्री पर लाठियों से प्रहार किया। केसरी जी ने हंसते-हंसते उनकी लाठियों को सहा। तभी वहाँ पर हिन्दू लोग एकत्रित हो गए। समझाने पर भी जब मुसलमान लोग न माने तो झगड़ा बढ़ गया। केसरी जी ने फिर भी दोनों दलों के लोगों को शान्ति बनाए रखने को कहा। केसरी जी की क्षमाशीलता और सहृदयता के आगे मुसलमानों को झुकना पड़ा। उन्होंने केसरी जी से क्षमायाचना की। उनके आदेश पर उन्होंने कई बकरों को जीवन दान दिया। अतः निष्कर्ष निकला कि सच्चा साधु किसी के द्वारा मना किए जाने पर भी दयाधर्म की निर्मल धारा बहाने से नहीं रुक सकता। साधु के धर्म के समान देशरूप दया को पालना श्रावक का भी धर्म है।

श्री भगवती सूत्र के शतक दूसरे उद्देसे पाँचवें में बतलाया गया है कि :—

श्रमणोपासक का वचन और व्यवहार उत्तम प्रकार का होता है। इसके आठ नियम निम्नलिखित हैं :—

उसे धर्म बन्धुओं में भी ऐसी चर्चा करते रहना चाहिए।

८. कूड़, कपट, वंचना, अन्याय, अनीति एवं अनाचार से दूर रह कर जीवन यापन करना तथा सदाचार, न्याय, नीति और धर्म भावना से आजीविका उपार्जन करना तथा विचारों को निर्मल रखने वाला श्रावक होता है।

९. दान के लिए अपने घर के द्वार सदैव खुले रखने वाला श्रावक होता है।

१०. प्रतिमास दोनों पक्ष की (शुक्लपक्ष एवं कृष्णपक्ष की) अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा और अमावस्या को पोषध व्रत करने वाला श्रावक होता है।

११. जीवन में सदाचार की प्रतिष्ठा इतनी महान हो कि यदि व्यक्ति धन से भरे हुए भण्डारों में और महिलाओं के निवास स्थानों में, अन्तःपुर में (राजाओं के रनवास में) चला जाए तो उस पर किसी प्रकार की शंका न हो। ऐसा चरित्रवान श्रावक होता है।

१२. अपने नियम व्रतों को निर्दोष रूप से पालने वाला श्रावक होता है।

१३. श्रमण निर्ग्रंथों को भक्तिपूर्वक निर्दोष आहार आदि का दान करने वाला श्रावक कहलाता है।

१४. जो धर्म की आराधना करता है, वक्तव्य, लेखन एवं भाषण द्वारा जो धर्म का प्रचार प्रसार एवं अभिवृद्धि करता है, वह श्रावक कहलाता है।

१५. लोभ तथा इच्छाओं पर अंकुश रखने वाला श्रावक कहलाता है।

१६. जो महाआरम्भ का त्यागी होता है, वही श्रावक होता है।

१७. जो प्रतिदिन तीन मनोरथों का चिन्तन करता है, वह श्रावक कहलाता है।

१८. जो गुणवान साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका की प्रशंसा करता है, वही श्रावक है।

१९. जो प्रातः काल और सायंकाल दोनों समय प्रतिक्रमण करता है, पापों की आलोचना करता है, वह श्रावक है।

२०. जो स्वधर्मी बहन, भाइयों की सहायता करता है, वह श्रावक कहलाता है।

२१. जो नित्य नियमित रूप से सामायिक करता है तथा साधुओं का धर्मोपदेश श्रवण करता है, वह श्रावक कहलाता है।

करोलबाग से विहार करके महाराजश्री जी शान्ति नगर में पधारे। यहां पर आप ने तीन चार प्रवचन दिए। यहां से प्रस्थान करके आप शक्ति नगर स्थित अग्रवाल की धर्मशाला में विराजमान हुए। यहां पर आपके दो व्याख्यान हुए। यहां से चल कर आप सब्जीमण्डी के स्थानक में पधार गए।

सब्जीमण्डी दिल्ली चातुर्मास

ई० सन् १६६७ | वीर संवत् २४६३ | वि० संवत् २०२४

इस प्रकार वीर संवत् २४६३ विक्रम संवत् २०२४ सन् १६६७ के चातुर्मास के लिए आप सब्जीमण्डी क्षेत्र के कोल्हापुर रोड पर स्थित जैन स्थानक में विराजमान हुए। स्थानीय जनता ने आपका भव्य स्वागत किया। आपके आगमन पर आपके चरणारविन्दों में अपनी श्रद्धा के पुष्प भाषण कविता तथा भजनों द्वारा समर्पित किए। दूसरे दिन से आपके प्रवचन प्रारम्भ हुए। व्याख्यानों में श्रोतागणों की उपस्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती गई। सब्जीमण्डी स्थानक का विशाल मैदान श्रोताओं से भर जाता था। यहाँ पर आपका प्रवचन शास्त्रीय विषयों पर चलता रहा। गौतम स्वामी भगवान् महावीर जी से पूछते हैं—

"हे भगवन् ! संचिट्ठा काल कितने प्रकार का होता है ?"

"हे गौतम ! चार प्रकार का होता है। नरक का संचिट्ठाकाल, तिर्यंच का संचिट्ठाकाल, मनुष्य का संचिट्ठाकाल और देवता का संचिट्ठाकाल।"

"हे भगवन् ! नर्क का संचिट्ठाकाल कितने प्रकार का होता है ?"

"हे गौतम ! तीन प्रकार का होता है ?"

"हे भगवन् ! इनमें कौन न्यून और कौन अधिक होता है ?"

"हे गौतम! सब से कम असुन्नकाल, इससे अनन्त गुणा अधिक मिश्रकाल और इससे अनन्तगुणा सुन्न काल होता है। इसी प्रकार देव और मनुष्य के विषय में भी समझना चाहिए। तिर्यंच का दो प्रकार का काल होता है।

असुन्न काल और मिश्रकाल। तिर्यंच का सबसे कम असुन्न काल होता है। इससे अनन्त गुणा अधिक मिश्रकाल होता है।"

"हे भगवन् ! इन का अल्पा बहुत ?

"हे गौतम ! सबसे कम संचिट्ठाकाल मनुष्य का होता है। इससे असंख्यात काल अधिक नरक का संचिट्ठाकाल होता है। इससे असंख्यात गुणा अधिक देवता का संचिट्ठाकाल होता है। इससे अनन्तगुणा अधिक संचिट्ठा-काल तिर्यञ्च का होता है।"

"हे भगवन् ! असन्नीकाल कितने प्रकार का होता है ?"

हे गौतम ! असन्नी काल चार प्रकार का होता है। नरक का असन्नी काल तिर्यंच का असन्नी काल, मनुष्य का असन्नीकाल और देव का असन्नीकाल।"

"हे भगवन् ! नर्क का असन्नी काल कितने समय का होता है ?"

"हे गौतम ! नर्क का असन्नी काल जघन्य दस हजार वर्ष का और उत्त-रोत्तर पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है। तिर्यंच का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्तरोत्तर पल्योपम का असंख्यातवां भाग, मनुष्य का जघन्य अन्तर्मुहूर्त, उत्तरोत्तर पल्योपम का असंख्यातवाँ भाग, देव का जघन्य दस हजार वर्ष तथा उत्तरोत्तर पल्योपम का असंख्यातवां भाग होता है।"

"हे भगवन् ! इनका अल्पाबहुत कितना है ?"

"हे गौतम ! सबसे कम देवता का असन्नी काल होता है। इससे असं-ख्यात गुणा अधिक असन्नीकाल मनुष्य का होता है। इससे असंख्यात गुणा अधिक असन्नी काल तिर्यंच का होता है। इससे असंख्यात गुणा अधिक असन्नी काल नर्क का होता है।"

"हे भगवन् ! क्या असंवृत्त अनगार सिद्ध होता है, बुद्ध होता है, मुक्त होता है, निर्वाण प्राप्त करता है, सब दुःखों का अन्त करता है ?"

"हे गौतम ! ऐसा नहीं हो सकता।"

"हे भगवन् ! किस कारण से यावत् वह सब दुःखों का अन्त नहीं करता है ?"

"हे गौतम ! असंवृत्त अनगार आयु कर्म को छोड़ कर शिथिल बन्धन से बांधी हुई सात कर्म प्रकृतियों को गाढ रूप से बांधना प्रारम्भ करता है। अल्प-काल वाली प्रकृतियों को दीर्घकाल की स्थिति वाली करता है। मन्द अनुभाग वाली प्रकृतियों को बहुत दीर्घ अनुभाग वाली करता है। आयु कर्म को कदाचित बांधता है और कदाचित् नहीं भी बांधता है। असातावेदनीय कर्म को बारम्बार बान्धता है तथा अनादि अनन्त, दीर्घ मार्ग वाले, चतुर्गति रूप संसार रूपी अरण्य में बार-बार पर्यटन करता है। इस कारण हे गौतम ! असंवृत्त अनगार सिद्ध नहीं होता यावत् सर्व दुःखों का अन्त नहीं करता।"

"हे भगवन् ! क्या संवृत अनगार सिद्ध होता है। यावत् सब दुःखों का अन्त करता है ?"

"हे गौतम ! सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है।"

"हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं ?"

"हे गौतम ! संवृत्त अनगार आयुकर्म को छोड़ कर शेष सात कर्मों की प्रकृतियों को जो गाढ़ बन्धन से बन्धी हुई हों, उन्हें शिथिल बन्ध वाली करता है। दीर्घकालीन स्थिति वाली प्रकृतियों को अल्पकालीन स्थिति वाली बनाता है। तीव्र फल देने वाली प्रकृतियों को मन्दफल देने वाली बनाता है। बहुत प्रदेश वाली प्रकृतियों को अल्प प्रदेश वाली बनाता है। आयुष्य कर्म का बन्ध नहीं करता है तथा असातावेदनीय कर्म का बार-बार उपचय नहीं करता है। इसलिए अनादि अनन्त, लम्बे मार्ग वाले, चातुरन्तक चार प्रकार की गति वाले संसार रूपी वन का उल्लंघन कर जाता है। इसलिए हे गौतम ! संवृत्त अनगार सिद्ध होता है यावत् सब दुःखों का अन्त कर देता है।" भगवती सूत्र के शतक अठारहवें में उद्देसे दसवें में भगवन् श्री महावीर और सोमिल ब्राह्मण के संवाद का वर्णन है। जो निम्न प्रकार से है :—

वाणिज्य ग्राम नगर के बाहर दूती पलाश नामक एक उद्यान था। उस

नगर में सोमिल नामक एक ब्राह्मण रहता था। वह धनाढ्य यावत् अपरिभूत था। ऋग्वेदादि चारों वेदों और अन्य ब्राह्मण शास्त्रों का ज्ञाता था। उसके पाँच सौ शिष्य थे। एक वार भगवान् महावीर स्वामी विचरते हुए वाणिज्य ग्राम नगर के बाहर स्थित दूतीपलाश उद्यान में पधारे। भगवान् के आगमन के समाचार को श्रवण कर परिषदा वन्दन करने को वहाँ गई। सोमिल ब्राह्मण भी एक सौ शिष्यों सहित प्रश्न पूछने के लिए भगवान् के पास आया। भगवान् के न अधिक समीप और न अधिक दूरी पर बैठ कर उसने भगवान् से पूछा—

"हे भगवन् ! क्या आपकी यात्रा यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार है?"

"हे सोमिल ! मेरी यात्रा यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक है।"

"भगवन् ! आपकी यात्रा क्या है?"

हे सोमिल ! तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यक योगों में जो मेरी यतना है, वह मेरी यात्रा है।"

"हे भगवन् ! आपके यापनीय (जपनी) क्या है?"

"हे सोमिल ! यापनीय के दो भेद हैं। इन्द्रिय यापनीय और नोइन्द्रिय यापनीय। श्रोत्रेन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियां मेरे अधीन (वश में) प्रवर्तती हैं। यह मेरे इन्द्रिय यापनीय हैं। क्रोध, मान, माया लोभ ये चार कषाय मेरे क्षय हुए हैं। उदय में नहीं आते, यह मेरे नोइन्द्रिय यापनीय हैं।"

"हे भगवन् ! आपके अव्याबाध क्या हैं?"

"हे सोमिल ! वात, कफ, पित्त से और सन्निपात से पैदा होने वाले शरीर सम्बंधी अनेक रोग मेरे उपशान्त हो गए हैं। वे उदय में नहीं आते हैं। यह मेरे अव्याबाध हैं।

"हे भगवन् ! आपके प्रासुक विहार क्या हैं?"

"हे सोमिल ! आराम, उद्यान, देवकुलिका सभा आदि स्त्री पशु नपुंसक से

रहित स्थानों में निर्दोष और एषणीय पाट पाटला, शय्या संथारा प्राप्त कर मैं विचरता हूं। यही मेरे प्रासुक विहार है।"

"हे भगवन् ! सरिसव आपको भक्ष्य है या अभक्ष्य है ?

"हे सोमिल ! सरिसव मेरे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है। ब्राह्मण शास्त्रों में सरिसव दो प्रकार की कही गई है। मित्र सरिसव और धान सरिसव। मित्र सरिसव के तीन भेद हैं। एक साथ जन्मे हुए। एक साथ बड़े हुए। एक साथ खेले हुए। यह तीन प्रकार की सरिसव तो अभक्ष्य है। धान सरिसव के दो भेद हैं। शस्त्र परिणत और अशस्त्र परिणत। अशस्त्र परिणत (अग्नि आदि शस्त्र से जो निर्जीव नहीं हुए हैं) श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य है। शस्त्र परिणत के दो भेद हैं। एषणीय (निर्दोष) और अनेषणीय (सदोष)। अनेषणीय तो अभक्ष्य हैं। एषणीय के दो भेद-जाँची हुई (मांगी हुई) और अजांची (नहीं मांगी हुई) है। अजांची तो अभक्ष्य है। जाँची हुई के भी दो भेद हैं। मिली हुई और न मिली हुई। नहीं मिली हुई तो अभक्ष्य है और मिली हुई भक्ष्य है।"

"हे भगवन् ! मास आप के भक्ष्य हैं या अभक्ष्य है ?"

"हे सोमिल ! मास अभक्ष्य भी है और भक्ष्य भी है।"

"हे भगवन् ! इस का क्या कारण है ?"

"हे सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मण शास्त्रों में मास दो प्रकार के कहे गए हैं। द्रव्य मास और काल मास। काल मास में श्रावण से लेकर आसाढ़ तक बारह मास होते हैं, वे अभक्ष्य हैं। द्रव्य मास के दो भेद हैं। अर्थ मास और धान्य मास। सोना, चांदी तोलने के मासे (वाट) को अर्थमास कहते हैं। यह अभक्ष्य है। धान (धान्य) मास धान सरिसव की तरह ही समझना चाहिए।"

"हे भगवन् ! कुलत्था आपके भक्ष्य है या अभक्ष्य है ?"

"हे सोमिल ! कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।"

"हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?"

"हे सोमिल ! तुम्हारे ब्राह्मण शास्त्रों में कुलत्था दो प्रकार की कही गई है

स्त्री कुलत्था। (कुलीन स्त्री) और धान्य कुलत्था स्त्री कुलत्था के तीन भेद हैं। कुल कन्या, कुलवधू, कुलमाता। ये तीनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं। धान्य कुलत्था के विषय में भी धान्य सरिसव की ही तरह समझना चाहिए।"

"हे भगवन् ! आप एक हैं या दो हैं ?" आप अक्षय, अव्यय, अव्यवस्थित या अनेक भूत वर्तमान भावी परिणामों के योग्य हैं ?

"हे सोमिल ! मैं एक भी हूं, दो भी हूं यावत् अनेक भूत वर्तमान भावी परिणामों के योग्य भी हूं।"

"हे भगवन् ! इसका क्या कारण है ?"

"हे सोमिल ! मैं द्रव्य रूपसे एक भी हूं। ज्ञान दर्शन रूपसे दो हूं। आत्म प्रदेश की अपेक्षा अक्षय, अव्यय, अव्यवस्थित हूं। उपयोग की अपेक्षा अनेक भूत, वर्तमान, भावी तीनों ही काल में परिणामों के योग्य हूं।"

इस प्रकार भगवान् से अपने प्रश्नों का उत्तर सुन कर सोमिल ब्राह्मण प्रतिबोध को प्राप्त हुए। भगवान् को वन्दना नमस्कार कर श्रावक के बारह व्रत अंगीकार किए। बहुत वर्षों तक श्रावकपना पाल कर वहां से काल करके देवलोक में उत्पन्न होंगे और वहां से चवकर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य के भव में दीक्षा लेकर सभी कर्मों का क्षय कर मोक्ष जाएंगे।

इस प्रकार व्याख्यान चलते-चलते पर्यूषण महा पर्व के दिवस आ गए। इन दिनों खूब (तपस्या) धर्माराधन हुआ। नर-नारियों ने बेले, तेले, चौले, अठाइयां तथा बीस-बीस दिन तक के व्रत रखे। दिल्ली के उपनगरों से तथा बाहर से दर्शनार्थी भाई महाराजश्री के दर्शनार्थ आए। महाराजश्री के ओजस्वी प्रवचनों को श्रवण कर उन्होंने अपने जीवन को कृतकृत्य माना। सम्वत्सरी के दिन सैकड़ों लोगों ने पौषध धारण की और व्रत रखा। महाराजश्री ने इस दिन अन्तगढ़ सूत्र का वाचन सम्पन्न किया। महाराजश्री के प्रवचनों को श्रवण करने के लिए हजारों की संख्या में लोग आते रहे। चातुर्मास की समाप्ति पर चौमासी के दिन महाराजश्री के सम्मान में विदाई समा-

रोह का आयोजन जैन समाज सब्जीमण्डी के तत्वावधान में हुआ, जिस में यहां के गणमान्य भाइयों ने महाराजश्री के चरण कमलों में अपनी श्रद्धा के प्रसून अर्पित किए।

पूजनीय मुनि जैन मुनि श्री १००८ प्रेमचन्द जी महाराज पंडितरत्न पंजाब केसरी दे रचना विच्च

श्रद्धा दे फूल

की महिमा एहना दी गायन करां नहीं ताकत मेरी जवान अन्दर।
कोई अख्खर मैंनू मिलदे नहीं की कवां एहना दी शान अन्दर॥

एह पंडित रत्न पूरे ने एह पंडत हैं ने काँशी दे।
एह प्रेम दे इक मुजस्मा ने एह चन्न ने पूरनमाशी दे॥

एह टेक है लूले लंगड़े दी ए अन्ने दी इक ज्योति ए।
जेदा कोई वी मुल नहीं पा सकदा ए लाल ते हीरा मोती ए॥

एह प्रेम दी बर्खा कर रहे ने एह लांदे तीर निशाने विच्च।
कोई विरला पर उपकारी ए इस कलजुग दे इस जमाने विच्च॥

एह इलम दे इक समुन्दर ने अकलां दे इक भंडारे ने।
जो अन्नया नू राह दस दे ने ए उह अरशाँ दे तारे ने॥

जिन्हा राहवाँ ते एह टुरदे ने उन्हां राहवां नू में प्यार देवां।
मैं इन्हाँ दे चरना दी मिट्टी तो लक्खा संन्यासी वार देवाँ॥

आखन नू हर कोई कहिन्दा है पर कोई २ अमल कमाँदा ए।
इस नागन वरगी माया तो कोई विरला पल्ला छुड़ाँदा ए॥

न फिकर है तम्बी चोले दा ना फिकर है खुट्टी बीड़े दा।
ना फिक्र है कोई लंगोटी दा ना फिकर है कपड़े लीड़े दा॥

ना फिकर है सेब अंगूरा दा ना संगतरे दाना केले दा।
ना फिकर है लड्डू पेड़े दा ना फिकर है पैसे धेले दा॥

ना कोई तजोरी बही ए ना फिकर है चोर उचक्के दा।
ना टिकट लेना है गड्डी दा ना फिकर है टाँगे यक्के दा॥
इक हत्थ विच्च प्रेम दी माला है ते दूजे हत्थ विच्च कासा ए।
हर बोल विच्च प्रेम दी वर्षा है हर अक्खर दे विच्च हासा ए॥
है तकवा एन्हा दा उस उत्ते ए सृष्टी जिसने साजी ए।
ना फिकर है कोई बुनकशे दी ना वैदा दी मोहताजी ए॥
ना घर फट्टी होई तानड़ी ए ना पंड गृहस्त दी चानड़ी ए।
ना सेहरा बनना पुत्तर ने ना धी डोली विच्च पानड़ी ए॥
ना सौदा वन्ज ही करना है एह रब्ब दा इक बन्जारा ए।
मैं सच कहिन्ना हा भारत दा एह रोशन इक मुनारा ऐ॥
प्रेमचन्द जी नाम इन्हा दा है प्रेम दी सच्ची मूरत ए।
पई लाली मुख ते मख दी ए ते वाँग फरिश्ते सूरत ए॥
तुसी बागां अन्दर जा वेखो रंग-रंग दा फुल पिया खिलदा ए।
पर एहना वरगा फुल सोहना कोई लक्खा विच्चो इक
मिलदा ए॥

एह माया कोलों डर डर के पए वखरे वखरे वैंदे ने।
इस दुनियां दे शौह सागर विच्च इक कंवल फुल्ल ज्यों रैंदे ने॥
न फसे ने फिरकादारी विच्च ना वस्तू कोई प्यारी ए।
इन्हा मन्न लई दुनिया झूठी ए इक राम नाम से यारी ए॥
जियों भार हुन्दा ए खोते इक भार है साडे सिर उत्ते।
जो मन दा घोड़ा अथरा ए ए सवार है साडे सिर उत्ते॥
पर एह ना ने मन दे घोड़े नू है कस्सया विच्च लगामा दे।
महावीर दे चरना विच्च रहके एह नौकर ने वेदामा दे॥
एथे चार महीने रह केते इक प्रेम दी गंग वगा गए ने।
इक सोहनी बदलो रहमत दी साड़े सिरां उत्ते वसा गए ने॥

जो पर उपकार ए कर गए ने असी शुकरगुजार हो इन्हां दे।
एह साडे सिर दे मालक ने असी खिदमतगार हो इन्हां दे॥

कई जुग इन्हाँ दी आयू हो हुन एह यो सदा है ईश्वर दी।
एह प्रेम दा दरिया चलता रहे हुन ईह दूआ है ईश्वर दी॥

मुनि जी दे चरना दी खाक
ईश्वर सिंह "ईशर"
२६, मलकागंज रोड,
सब्जी मण्डी, देहली।

एस० एस० जैन सभा सब्जी मण्डी ने भी बाँटा।　　　　६-११-५७

इसके उत्तर में महाराजश्री ने आशीर्वाद देते हुए धर्मोपदेश दिया।

चातुर्मास की समाप्ति के बाद विहार करके महाराजश्री चाँदनी चौक बारहदरी में पधारे। सब्जी मण्डी क्षेत्र की जनता भी महाराजश्री के साथ चलकर चांदनी चौक तक गई थी। वहाँ पहुँचकर महाराजश्री ने व्याख्यान दिया। तत्पश्चात् मंगल पाठ सुनाया। मंगलीक सुनकर महाराजश्री के चरणों की रज को मस्तिष्क पर शिरोधार्य करके लोग अपनी २ राह चले गए। दूसरे दिन से यहां पर नित्य प्रति आपका व्याख्यान होने लगा। महाराजश्री ने कर्मों का विवेचन करते हुए फरमाया कि कर्मो का बंधन क्या है, उदीर्णा क्या है, निर्जरा क्या है, आदि के विषय में अनेक भिन्न-भिन्न मान्यताएं हैं। यथा अनन्तानुबन्धी का चौक। इसके विषय में कुछ विद्वानों की यह मान्यता है कि एक बार क्षय हो जाने के बाद पुनः इसकी उत्पत्ति नहीं होती। कुछ विद्वानों की यह धारणा है कि अनन्तानुबंधी का यह चौक मिथ्यादर्शन मोहनीय कर्म के उदय से अपनी सत्ता में पुनः आ जाता है। कई विचारकों का यह मत है कि मूलतः क्षय हो जाने पर यह पुनः सत्ता में नहीं आ सकता। इसका अस्तित्व तो बना रहता है। कुछ अंश उदय में आता रहता है। जितना अंश उदय में आता रहता है, उसका क्षय होता रहता है। यथा दूब (घास)। घास को जब हम खुरपे से खोदते हैं तो घास की जड़ें धरती में विद्यमान रहती हैं।

समय आने पर वह घास पुनः उत्पन्न हो जाती है। इसी प्रकार अनन्तानुवन्धी का चौक भी बना रहता है। अन्य मान्यता यह भी है कि अनन्तानुवन्धी का चौक अप्रत्याख्यानी में मिल जाता है और मिथ्यात्व मोहनीय कर्म के उदय से पुनः अपने रूप में आ जाता है। कुछ विचारकों का यह मत है कि अनन्तानुवन्धी की सत्ता सातवें गुणस्थान तक ही रहती है। इसके आगे इसकी सत्ता नहीं रहती। शास्त्र के सिद्धान्त इस तथ्य को स्वीकार नहीं करते। शास्त्र तो यह मानता है कि अनन्तानुवन्धी का चौक ग्यारहवें गुणस्थान तक रहता है। कुछ दार्शनिकों का विचार है कि आयुष्यकर्म की उदीर्णा नहीं होनी चाहिए क्योंकि इसका अवाधाकाल नहीं है। इस का उदय निरन्तर रहता है। पन्नवणा सूत्र के ३५ वें वेदना पद में लिखा है कि मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रिय के इन दो दण्डकों में कर्मों का उदय भी है और उदीर्णा भी है। भगवती सूत्र में वर्णित है कि एकेन्द्रिय जीव भी आयुष्यादि आठ कर्मों की उदीरण करता है। जिन पाठकों को एकेंद्रिय जीव की उदीरण के विषय में शंका हो तो वे भगवती सूत्र शत्तक १९वें उद्देसे में महा आश्रव महाक्रिया महावेदना महानिर्जरादि २६भांगे ओदारिक के दश दंडकों में मिलते हैं इनको देखें। कुछ विचारक मानते हैं कि लब्धियाँ पांच होती हैं। यथा—क्षयोपशम लब्धि, विशुद्ध लब्धि, देशना लब्धि, प्रयोगलब्धि और कर्ण लब्धि। दिगम्बर जैन ग्रंथों में लिखा है कि प्रथम की चार लब्धियां तो अभव्य प्राणी में भी होती हैं परन्तु कर्ण लब्धि केवल भव्य जीव में ही होती है। कुछ विद्वान कर्णलब्धि के तीन भेद मानते हैं यथा वृत्तिकर्ण, अपूर्व कर्ण और अनिवृत्ति कर्ण। प्रथम लब्धि (यथावृत्ति) अभव्य जीव में तथा शेष दोनों भव्य जीव में उपलब्ध होती हैं। जिसमें ये दो लब्धियाँ होती हैं, उसको उपशम समकित आ जाती है। उसके विषय में ऐसा दृष्टिकोण दिया जाता है कि चोरों के गिरोह ने तीन व्यापारियों को घेर लिया। एक व्यापारी तो चोरों को देखकर वापिस भाग गया उसका नाम था वृत्ति करण एक व्यापारी को चोरों ने पकड़ लिया उसे अपूर्व करण कहते हैं, तीसरा व्यापारी चोरों को पराजित करके आगे बढ़ गया उसका नाम अनिवृत्ति करण कहते हैं आयुष्य कर्म का अवाधा काल नहीं होता। इस कथन में कुछ भी तर्क

संगत तथ्य नहीं है, क्योंकि भगवती सूत्र के शतक प्रथम के उद्देशे दूसरे में गौतमस्वामी जी भगवान् श्री महावीर जी से पूछते हैं कि :—

"हे भगवन् ! क्या जीव स्वयंकृत दुःख भोगता है ?"

"हे गौतम ! कोई भोगता है और कोई नहीं भोगता है।"

हे भगवन् ! आप किस कारण से ऐसा फरमाते हैं कि—कोई भोगता है और कोई नहीं भोगता है।"

"हे गौतम ? जीव उदीर्णा अर्थात् उदय में आए हुए दुःख (कर्म) को भोगता है और अनुदीर्ण जो उदय में आए उन्हें नहीं भोगता है। इसलिए कहा गया है कि कोई भोगता है और कोई नहीं भोगता है।" इस प्रकार वैमानिक तक चौबीस (सभी) दण्डकों में समझ लेना चाहिए।"

"हे भगवन् ! क्या जीव स्वयंकृत आयु को भोगता है ?"

"हे गौतम ! कोई भोगता है और कोई नहीं भोगता है।"

"हे भगवन् ! इस का क्या कारण है ?"

"हे गौतम जिसके उदय में आजाती है, वह भोगता है। जिसके उदय में नहीं आती, वह नहीं भोगता है। इसी प्रकार बहुवचनाश्री भी समझना चाहिए। इसी को अबाधा काल भी कहते हैं। किसी एक कर्म का अबाधाकाल एक समय का होता है तो किसी कर्म का अबाधाकाल अन्तर्मुहूर्त का होता है। जीव ईर्या-पथिक क्रिया को एक समय में बांधता है, दूसरे समय में भोगता है एवं तीसरे समय निर्जरा करता है। किसी का समय डेढ़ हजार वर्ष का है। किसी का समय तीन हजार वर्ष का है तो किसी का समय सात हजार वर्ष का है। आयुष्य कर्म का अबाधाकाल तो एक करोड़पूर्व के तीसरे भाग का होता है क्योंकि नोपकर्मी जीव आयु के तीसरे भाग में आयुष्य को बांधता है। जब तक वह तीसरा भाग समाप्त नहीं हो जाता, तब तक वह विपाक उदय में नहीं आता। प्रदेश उदय में आने की भजना है। जैसे—श्री मल्लीनाथ भगवान्।"

कर्मों पर ही महाराजश्री का प्रवचन बारहदरी के स्थानक में चलता रहा। एक मास तक महाराजश्री यहाँ पर ठहरे थे। यहाँ से विहार करके महाराजश्री जी सदर स्थानक में पधारे। यहां पर जंगल (परठावणिया) आदि की असु-विधा थी अतः महाराजश्री जी सब्जीमण्डी क्षेत्र के स्थानक में पधार गए।

दूसरे दिन से ही आपके व्याख्यान प्रारम्भ हो गए। व्याख्यान-माला का यह क्रम दस बारह दिन तक ही चला। तत्पश्चात् आप कैलाश नगर पधारे। यहाँ पर आपके नौ दस प्रवचन हुए। श्रोताओं की उपस्थिति अच्छी थी। यहाँ से विहार कर लोनी, खेड़ा आदि क्षेत्रों में धर्म प्रचार करते हुए "खट्टा" कस्बा में पधारे। यहाँ पर आपके चार प्रवचन हुए। यहाँ से प्रस्थान करके आप लोहारा सराय आए। दस-बारह दिन तक आप नियमित रूप से प्रतिदिन व्याख्यान देते रहे।

यहाँ से विहार कर आप मेरठ नगर में पधारे। स्थानीय जनता ने बड़े उत्साह के आपका भव्य स्वागत किया। प्रमुख बाजारों व मार्गों से होता हुआ यह स्वागत जुलूस स्थानक में पहुंचा। महाराजश्री ने समागत भाइयों तथा बाइयों को धर्मोपदेश देकर मंगली सुनाई। मंगली सुनकर लोग अपने-अपने घरों को चले गए।

दूसरे दिन से आपके प्रवचनों का क्रम चल पड़ा। अनुमानतः पाँच सात व्याख्यान आपके यहां हुए। नौ सौ के लगभग श्रोताओं की उपस्थित प्रतिदिन आपके प्रवचनों में रही। जिस समय आप यहाँ पर आए तो आपके सुनने में आया कि किसी साधु की स्मृति में यहाँ का जैन समाज समाधि का निर्माण करने जा रहा है। अपने प्रवचन में आपने फरमाया कि समाधि का निर्माण करना जड़पूजा को बढ़ावा देना है। जड पूजा स्थानकवासी संस्कृति के विरुद्ध है, अतः समाधि नहीं बनाई जानी चाहिए। आपके इन वचनों से समाधि निर्माणका कार्य शिथिल पड़ गया और समाज दुविधा में पड़ गया।

दो दिन मार्ग के गांवों में धर्मप्रचार करते हुए आप हरा खुवाई पधारे। यहां पर चार पांच दिन तक ठहर कर जनता को धर्मोपदेश का लाभ दिया। यहां से प्रस्थान कर आप बनौली पधारे। यहाँ की समाज ने आपका भाव भीना अभिनन्दन किया। दूसरे दिन से आपका व्याख्यान प्रारम्भ हो गया। बडौत का श्रीसंघ चातुर्मास की बिनती करने के लिए यहां पर महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। बडौत के श्रीसंघ ने महाराजश्री से अगला चातुर्मास बड़ौत में करने की प्रार्थना की। आग्रह पूर्ण बिनती को महाराजश्री

अस्वीकार न कर सके। उन्होंने मुझे समाधे बड़ौत का चातुर्मास स्वीकार कर लिया।

यहाँ से प्रस्थान करके महाराजश्री सिरसली होते हुय बिजरौल पधारे। यहां पर आपके दो तीन प्रवचन हुए। बिजरौल से आप बामनौली आए। आप यहाँ पर सात आठ दिवस तक विराजमान रहे। सात आठ ही आपके प्रवचन हुए। यहाँ की जनता ने आपके ओजस्वी विचारों से यथेष्ठ लाभ उठाया। बामनौली के पास ही एक कस्बा है—दोघट। बामनौली से विहार करके आपने दोघट की भूमि को अपनी चरणरज से पावन किया। अनुमानतः दस बारह व्याख्यान आपने यहां पर दिए। जनता ने खूब धर्मलाभ उठाया।

आपकी भावना कांधला की भूमि को फरसने की थी। अतः मार्ग के दहाया, निरपड़े, सैनपुर, पड़ासौली और लिसाड़ आदि मार्गवर्ती ग्रामों में धर्म की दुंदभि बजाते हुए आप कांधला पहुंचे। कांधला का श्रीसंघ आपकी अगवानी के लिए कई मील चल कर गया था। राजमार्गों से होता हुआ यह स्वागत जुलूस स्थानक पर समाप्त हुआ। ईर्यापथिक क्रिया की आलोचना के उपरान्त आपने मंगल पाठ सुनाया। तत् पश्चात् जनसमूह तितर बितर हुआ। दूसरे दिन से आपकी व्याख्यान की शृंखला प्रारम्भ हो गई। रायकोट से एक तार आपकी सेवा में आया। जिसमें आपसे पूछा गया था कि आप ने प्रवर्त्तक पद के लिए किसका नाम लिया है और प्रवर्त्तक पद के विषय में आपके क्या विचार हैं? महाराजश्री जी ने इसका उत्तर इस प्रकार लिखवा कर प्रेषित किया था कि मैंने इस पद के लिए किसी का भी नाम नहीं लिया है। इस प्रवर्त्तक पद की पृष्ठ भूमि का एक अपना इतिहास है। इससे सम्बन्धित कुछ बातों का वर्णन आवश्यक है अतः उनका विवरण दिया जा रहा है। जब महाराजश्री बामनौली में विराजमान थे, उस समय जैन कान्फ्रेंस का एक शिष्ट मण्डल महाराजश्री की सेवा में आया था। अनुमानतः इस शिष्टमण्डल के चार सदस्य थे। लाला बनारसीदास ओसवाल, लाला जसवन्त सिंह हांसी वाले, लाला रामलाल सराफ वीरनगर और लाला नौरतन चाँदनी चौक निवासी। इन

प्रतिनिधियों ने महाराजश्री से पूछा कि आपके विचारों से प्रवर्त्तक किसे बनाना चाहिए ? वर्तमान जैनाचार्य श्री आनन्दऋषि जी महाराज ने इस पद के लिए आपके नाम का सुझाव दिया है। इसके प्रति आपके क्या विचार हैं ? महाराजश्री ने उत्तर में फरमाया कि वर्त्तमान स्थिति में आचार्यश्री ही पंजाब के साधुओं को आज्ञा प्रदान करते रहें। चातुर्मास की समाप्ति के बाद पंजाब के प्रमुख-प्रमुख साधुओं का एक सम्मेलन होना चाहिए। उसमें जिसका नाम सर्व सम्मति से इस पद के लिए निर्वाचित किया जाए उसे ही इस पद पर विभूषित किया जाना चाहिए। महाराजश्री के विचारों से अवगत हो जाने के बाद कांफ्रेंस का शिष्टमंडल लौट आया। पुनः दोघट में जैन कांफ्रेंस का शिष्टमंडल महाराजश्री के पास आया। उन्होंने महाराजश्री से निवेदन किया कि जैनाचार्य पूज्यश्री आनन्द ऋषि जी महाराज की प्रबल इच्छा है कि या तो आप प्रवर्तक का पद ग्रहण करलें अथवा उपाध्याय का पद सम्भाल लें। यह सुन कर महाराजश्री बोले, "मैंने उपाध्याय का पद तो सादड़ी सम्मेलन में हीं त्याग दिया था। जब भीनासर में साधु-सम्मेलन हुआ था, तब भी कुछ साधुओं ने मुझ से उपाध्यायपद को स्वीकृत कर लेने का आग्रह किया था। उनका विचार था कि सादड़ी सम्मेलन में केवल आचार्यपद का ही चुनाव हुआ था। अन्य पदवियों के लिए न तो कोई जिक्र ही आया था और न ही कुछ निर्णय किया गया था। इस समय चार निर्ग्रंथों को उपाध्याय के पद से विभूषित किया जाना है तीन निर्ग्रंथों के नाम तो निश्चित कर लिए गए हैं। चौथा स्थान आपके लिए रिक्त है। केवल आपकी स्वीकृति की आवश्यकता है। मैंने तब भी उनके प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया था। मेरा विचार है कि इस कार्य के लिए हमें पंजाब के साधुओं का एक सम्मेलन करना चाहिए और उसी में प्रवर्त्तक का चुनाव सर्वसम्मति से किया जाना चाहिए। चुननेवाले सभी सदस्यों को इस बात का विश्वास भी दिलाना होगा कि वे उसकी आज्ञाओं का पालन पूर्णतया करेंगे। सुनने में आया है कि इस समय पंजाब का साधु वर्ग भी संयम की मर्यादाओं की अवहेलना करने लगा है। आजकल पंजाब में जैनाचार्य पूज्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज भी विचर रहे हैं। पंजाब के साधु

वर्ग पर उन का कोई विशेष प्रभाव नहीं है, इसलिए उनकी विद्यमानता में वे अधिक शिथिल होने लगे हैं। अतः जो संयमशील साधु होगा, वह आज्ञा में चलने का विश्वास प्राप्त किए बिना प्रवर्त्तक बनना कैसे स्वीकार कर सकता है?" महाराजश्री के इन विचारों को श्रवण कर शिष्टमण्डल लौट गया।

महाराजश्री यहां पर लगभग बीस दिन तक ठहरे। बीस दिन तक ही अनुमानतः आप के प्रवचनों का क्रम चलता रहा। यहां से प्रस्थान करके आप आणदी ग्राम में पधारे। आणदी ग्राम में मुख्यतः दो ही जातियां निवास करती हैं। गुज्जर और सैनी। महाराजश्री के प्रवचन यहां सुबह और शाम, दोनों वक्त होते रहे। धर्मलाभ उठाने वालों की संख्या पांच, छह सौ के लगभग प्रतिदिन हुआ करती थी। बहुत सी स्त्रियों और पुरुषों ने आप से गुरुधारणा की। अठारह बीस घर तो हम लोगों के सांसारिक परिवार के थे। श्री बनवारी लाल जी से प्रेरणा पाकर बहुत से लोगों ने "नवकार मन्त्र" सीखा। जो लोग नवकार मन्त्र सीखने में असमर्थ रहे उन्हें नवकार मन्त्र का सार "अरिहंत सिद्ध साहु पार के लंघाऊ" सिखाया गया। लोगों ने दत्तचित्त होकर इस मन्त्र का जाप किया। आणदी ग्राम में महाराजश्री जी का पदार्पण चौथी बार हुआ था। एक बार आप अपने गुरुदेव श्री वृद्धिचन्द जी महाराज के साथ भी इस गांव में आए थे और उसके बाद तीन बार विहार करते-करते यहां पर पधारे थे। यहां पर आप को एक पत्र श्री सुमन मुनिजी का मिला था, जिसका उत्तर प्रेषित कर दिया गया था। यहां से दसवें दिन विहार करके महाराजश्री तित्तरवाड़ा पधारे इस आणदीग्राम से महाराजश्री का यह चरम विहार था। आणदी ग्राम के बहुत से प्रेमी महाराजश्री के साथ पैदल चलकर यहाँ तक आए थे। यहाँ पर आपके चार पाँच व्याख्यान हुए।

यहाँ से चलकर महाराजश्री जी गंगेरू पधारे। यहाँ आपके चार पाँच व्याख्यान सार्वजनिक रूप में हुए। जिनका प्रभाव यहाँ के निवासियों पर बहुत गहरा पड़ा। यहाँ से विहार करके आप एलम पधारे। एलम में पाँच सात व्याख्यान देकर आप कैथल आए। कैथल में आर्य समाज की ओर से कई

संस्थाएं चल रही हैं। आर्य समाज का यहां पर यथेष्ट प्रभाव है। आर्य समाज के कई कार्यकर्त्ता महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने महाराज श्री से अनेकों प्रश्न किये महाराजश्री ने उनके प्रश्नों का युक्तियुक्त समाधान किया। महाराजश्री ने उनके प्रश्नों के उत्तर इस विधि से दिए कि वे उनकी बुद्धिमत्ता के प्रशंसक बन गए। उन्होंने आप की बुद्धि की प्रशंसा गांव में यत्र तत्र सर्वत्र की। इससे पूर्व भी इन लोगों ने कई साधु-सन्तों से प्रश्नों का समाधान प्राप्त करने का प्रयास किया था परन्तु उनके उत्तरों से इनकी सन्तुष्टि नहीं हुई थी। आप के यहां पर तीन चार प्रवचन हुए। उपस्थिति बहुत अच्छी थी। यहां के जैन समाज के गौरव को उनन्त करके आप रठोड़े पधारे। यहां पर आपने चार-पांच दिन तक प्रवचन दिए। आपके प्रवचनों को श्रवण कर यहां के धर्म प्रेमी बन्धुओं ने खूब धर्म लाभ उठाया।

रठोड़े से आप अपनी शिष्यमण्डली सहित छपरौली आए। आठ नौ दिन तक नियमित रूप से आपका प्रवचन होता रहा। सैंकड़ों लोगों ने धर्मलाभ लिया। यहां से प्रस्थान करके एक रात रास्ते में लगा कर महाराजश्री बड़ौत मण्डी पधारे। दूसरे दिन से आपके प्रवचन होने प्रारम्भ हो गए। अनुमानतः आपके यहां दस बारह व्याख्यान हुए। हजारों लोगों ने आपके धर्मोपदेशों से लाभ उठाया।

बड़ौत चातुर्मास

वीर संवत् २४९४ विक्रमी संवत् २०२५ ई० सन् १९६८

बड़ौत मण्डी के स्थानक से प्रस्थान करके आप बड़ौत शहर के स्थानक में पधार गए। स्थानक में पहुंच कर आप ने साथ में आई हुई परिषदा को संक्षिप्त रूप से उपदेश देते हुए धर्म को भावों को बनाए रखने का आदेश दिया। तत्पश्चात् महाराजश्री ने समागत जनता को मंगलाचरण सुनाया, जिसे श्रवण कर श्रावक और श्राविका गण सानन्द विसर्जित हुए।

अगले ही दिन से आपके प्रवचन प्रारम्भ हो गए। इन प्रवचनों से स्थानीय जनता खूब लाभ उठाने लगी। व्याख्यानों का क्रम ज्यों-ज्यों बढ़ता जाता था त्यों-त्यों उपस्थिति भी बढ़ती जाती थी। लगभग चौदह सौ पन्द्रह सौ लोग आपके मुखारविन्द से निकले हुए अमृत वचनों को श्रवण कर जीवन सफल कर रहे थे महाराजश्री के प्रवचनों का विषय था "कर्मों का बन्ध और उदय।"

महाराजश्री ने फरमाया कि जीव आठ कर्मों को पच्चासी प्रकार से बांधता है और तरानवें प्रकार से भोगता है। ज्ञानावरणीय कर्म छह प्रकार से बांधा जाता है :—

१. ज्ञान तथा ज्ञानी के प्रतिकूल रहने से।

२. ज्ञान तथा ज्ञानी के उपकार को छिपा कर रखने से।

३. ज्ञान में तथा ज्ञानी के कार्यों में अन्तराय डालने से।

४. ज्ञान की तथा ज्ञानी की आसातना करने से।

५. ज्ञान तथा ज्ञानी से द्वेष करने से।

६. ज्ञान तथा ज्ञानी की निन्दा करने से।

ज्ञानावरणीय कर्म दस प्रकार से भोगा जाता है।

१. कान का न होना। २. सुनने की शक्ति का न होना। १३. आँख का न होना। ४. देखने की शक्ति का न होना। ५. नाक का न होना। ७. सूंघने की शक्ति का न होना। ७. जिह्वा का न होना। ८. और रसानुभव शक्ति का न होना। ९. स्पर्शन का न होना। १०. छूने की शक्ति का न होना।

जीव दर्शनावरणीय कर्म छः प्रकार से बांधता है।

१. दर्शन तथा दर्शनी के प्रतिकूल रहने से। २. दर्शन तथा दर्शनी की शक्ति को छिपाकर रखने से। ३. दर्शन तथा दर्शनी की अन्तराय डालने से। ४. दर्शन की तथा दर्शनी से द्वेष करने से। ५. दर्शन तथा दर्शनी की आसातना करने से। ६. दर्शन तथा दर्शनी की निन्दा करने से।

जीव दर्शनावरणीय कर्म को नौ प्रकार से भोगता है

१. चक्षु दर्शन वर्णीय। २. अचक्षु दर्शन वर्णीय। ३. अवधि दर्शना वर्णीय। ४. केवल दर्शन वर्णाय ५. निन्द्रा। ६. निद्रानिद्रा। ७. प्रचला। ८. प्रचला प्रचला। ९. सत्यानर्द्धि निद्रा।

जीव सातावेदनीय कर्म दस प्रकार से बाँधता है।

१. प्राणी पर अनुकम्पा करने से। २. भूत पर अनुकम्पा करने से। ३. जीव पर अनुकम्पा करने से। ४. सत्त्व पर अनुकम्पा करने। ५. इन्हें दुःख न पहुंचाने से। ६. इन्हें शोक में न डालने से। ७. न झुराने से। ८. आंसू न बहाने से। ९. न रुलाने से। १०. पीड़ा न पहुंचाने से।

जीव सातावेदनीय कर्म आठ प्रकार से भोगता है।

१. मनोज्ञ शब्द। २. मनोज्ञ रूप। ३. मनोज्ञ गंध। ४. मनोज्ञ रस। ५. मनोज्ञ स्पर्श। ६. मन सुखदायी। ७. वचन सुखदायी। ८. काय सुख दायी।

असाता वेदनीय कर्म जीव बारह प्रकार से बांधता है।

१. प्राणीभूत जीव सत्व को दुःख देने से। २. शोक में डालने से। ३. झुराने से। ४. आंसू बहाने से। ५. मारने से। ६. पीड़ा पहुंचाने से। ७. अधिक दुःख देने से। ८. अधिक शोक में डालने से। ९. अधिक झुराने से। १०. अधिक आंसू बहाने से। ११. अधिक मारने से। १२. अधिक पीड़ा पहुंचाने से।

जीव असाता वेदनीय कर्म का फल आठ प्रकार से भोगता है।

१. अमनोज्ञ शब्द। २. अमनोज्ञ रूप ३. अमनोज्ञ गंध। ४. अमनोज्ञ रस। ५. अमनोज्ञ स्पर्श। ६. मन दुःखदायी। ७. वचन दुःखदायी। ८. काय दुःख दायी।

जीव मोहनीय कर्म को छःप्रकार से बांधता है।

१. तीव्र क्रोध से। २. तीव्र मानने से। ३. तीव्र माया से। ४. तीव्र लोभ से। ५. तीव्र दर्शनीय मोह से। ६. तीव्र चरित्र मोहनीय से।

जीव मोहनीय कर्म पांच प्रकार से भोगता हैं।

१. मिथ्यात्व मोहनीय के उदय भाव से। २. मिश्र मोहनीय के उदय भाव से। ३. सम्यक्त्व मोहनीय के उदय भाव से। ४. कषाय के उदय भाव से। से। ५. नौकषाय के उदय के भाव से।

जीव आयुष्य कर्म १६ प्रकार से बांधता हैं। नरकायुष के चार कारण हैं।

१. महा आरम्भ से। २. महा परिग्रह से। ३. अशुद्ध आहार से। ४. पंचेन्द्रिय बद्ध करने से।

तिर्यंच आयु की जीव चार कारणों से बांधता है।

१. माया करने से। २. माया में माया करने से ३. कूढ़ तोल माप करने से। ४. असत्य बोलने से।

जीव चार कारणों से मनुष्य की आयु को बाँधता है।

१. प्रकृति भद्र होने से। २. प्रकृति विनीत होने से। ३. अनुकम्पा शील होने से। ४. ईर्ष्या न करने से।

देवता की आयु जीव चार कारणों से बांधता है।

१. सराग संयम से। २. संयमासंयम से। ३. बाल तप से। ४. अकाम निर्जरा से।

जीव चार प्रकार से आयु कर्म को भोगता है।

१. नरक गति। २. तिर्यंच गति। ३. मनुष्य गति। ४. देवगति।

जीव शुभ नामकर्म चार प्रकार से बांधता है।

१. काया की सरलता से। २. भावों की सरलता से। ३. भाषा की सरलता से। ४. योगों के समताभाव से।

शुभ नाम कर्म के फल को जीव चौदह प्रकार से भोगता है।

१. इष्ट शब्द। २. इष्ट रूप। ३. इष्ट गंध। ४. इष्ट रस। ५. इष्ट स्पर्श। ६. इष्ट गति। ७. इष्ट स्थिति। ८. इष्ट लावण्य। ९. इष्ट यशोकीर्ति। १०. इष्ट उत्थान। ११. इष्ट स्वर। १२. कान्त स्वर। १३. प्रिय स्वर। १४. मनोज्ञ स्वर।

अशुभ नाम कर्म को जीव चार प्रकार से बांधता है।

१. काया की कुटिलता से। २. भावों की कुटिलता से। ३. भाषा की कुटिलता से। ४. योगों की कुटिलता से।

अशुभ नामकर्म के फल जीव चौदह प्रकार से भोगता है।

१. अनिष्ट शब्द। २. अनिष्ट रूप। ३. अनिष्ट गंध। ४. अनिष्ट रस। ५. अनिष्ट स्पर्श। ६. अनिष्ट गति। ७. अनिष्ट स्थिति। ८. अनिष्ट लावण्य। ९. अनिष्ट यशोकीर्ति। १०. अनिष्ट उत्थान। ११. अनिष्ट स्वर। १२. अकान्त स्वर। १३. अप्रिय स्वर। १४. अमनोज्ञ स्वर।

जीव उच्च गोत्र को आठ प्रकार से बांधता है।

१. जातिमद न करने से। २. कुलमद न करने से। ३. बलमद न करने से। ४. रूपमद न करने से। ५. तपमद न करने से। ६. लाभमद न करने से। ७. सूत्रमद न करने से। ८. ऐश्वर्य मद न करने से।

"हे भगवन् ! आत्यन्तिक मरण के कितने भेद हैं ?"

"हे गौतम ! आविचिक मरण और अवधिकरम की तरह इसके भी भेद समझने चाहिए।"

"हे भगवन् ! वाल मरण के कितने भेद हैं ?"

"हे गौतम ! वाल मरण बारह प्रकार का होता है। १. वलय मरण—तीव्र भूख प्यास से छटपटाते हुए मरना अथवा संयम से भ्रष्ट प्राणी का मरण वलय मरण कहलाते हैं। २. वसह मरण (वशार्त्त मरण)—इन्द्रियों के वशीभूत होकर दुःखी प्राणी का मरना वसहमरण कहलाता है। ३. अंतोसल्ल मरण (अन्तः शल्य मरण)—यह दो प्रकार का होता है। द्रव्य और भाव। शरीर में वाण आदि घुस जाने से और उसे वापिस न निकलने से जो मरण होता है, उसे द्रव्य अन्तोसल्ल मरण कहते हैं। अतिचार रूप आन्तरिक शल्य की शुद्धि किए बिना जो मरण होता है, उसे भाव अन्तोसल्ल मरण कहते हैं। ४. तद्-भव मरण—मनुष्य और तिर्यंच के शरीर को छोड़ कर फिर मनुष्य और तिर्यंच के शरीर को प्राप्त करना तद्भव मरण कहलाता है। ६. तरुपत्तन मरण वृक्ष आदि पर चढ़ कर गिर कर मरना तरू पतन मरण कहलाता है। ७. जल प्रवेश मरण पानी में डूब कर मरना जल प्रवेश मरण कहलाता है। ८. ज्वलन प्रवेश मरण—अग्नि में जल कर मरना ज्वलन (अग्नि) प्रवेश मरण कहलाता है। ९. विष भक्षण मरण—विष खाकर मरना विष भक्षण मरण कहलाता है। १०. सत्थोवाडण (शास्त्रवपाटन) मरण—छुरी, तलवार आदि शस्त्र से मरना सत्थोवाडण मरण कहलाता है। ११. वेहाणस (वैंहानस) मरण—गले में फांसी लगा कर वृक्ष आदि की डाली पर लटक कर मरना वैहानस मरण कहलाता है। १२. गिद्धपिट्ठमरण (गृध्र पृष्ठ मरण) हाथी, ऊंट आदि के मृत कलेवर में प्रवेश कर गीध आदि पक्षियों द्वारा खाए जाने से मरण होना गिद्ध पृष्ठ मरण कहलाता है।"

"हे भगवन् ! पण्डित मरण के कितने भेद हैं ?"

"हे गौतम! पण्डितमरण के दो भेद हैं। पादपोगमन और भत्त पच्चकरवाण

(भक्त प्रत्याख्यान) मरण। पादपोपगमन के दो भेद हैं। निहारिम और अनिहारिम। गांव, नगर, वस्ती आदि में जो मरण होता है, उसे निहारिम कहते हैं। पर्वत की गुफा आदि एकान्त स्थान में जो मरण होता है। उसे अनिहारिम कहते है। पादपोगमन मरण के ये दोनो भेद अप्रतिक्रम (शरीर संस्कार से रहित या प्रतिक्रमण से रहित) होते हैं। इन में दूसरों से सेवा नहीं कराई जाती।

भक्त प्रत्याख्यान मरण के दो भेद हैं। निहारिम और अनिहारिम। ये दोनों भेद से प्रतिक्रम (शरीर संस्कार सहित या प्रतिक्रमण सहित) होते हैं। इन में दूसरों से सेवा भी कराई जा सकती है। पण्डित मरण निर्जरा से होता है और निर्जरा तप से होती है। कर्मो का विशद विवेचन अभी चल ही रहा था कि पर्यूषण पर्व के दिन आ गए। महाराजश्री ने अन्तगढ़ सूत्र का वाचन इन दिनों में किया। खूब धर्माराधन हुआ। वेले, तेले, चौले, पंचोले, अठाइयाँ तथा वीस-इक्कीस दिनों तक की दीर्घ तपस्या भी हुई। सम्वत्सरी पर्व के दिन सैकड़ों पौषध, आयम्बिल तथा व्रत हुए। दया तथा सामायिक आदि की साधना इस दिन हजारों लोगों ने की। सम्वत्सरी के वाद भी महाराजश्री के प्रवचनों का क्रम चलता रहा। एक दिन महाराजश्री जी शौचादि क्रियाओं से निवृत होकर जब स्थानक को लौट रहे थे तो उन्होंने छाती में दर्द अनुभव किया। रोग के कारण दूसरे दिन से महाराजश्री ने वाहर जाना वन्द कर दिया। यहां के श्रीसंघ की देखरेख में उपचार चलता रहा। तभी पंजाव का श्रीसंघ दो वसों द्वारा महाराजश्री के दर्शनार्थ वड़ौत आया। पंजाव के श्रीसंघ ने महाराजश्री से चातुर्मास की समाप्ति के वाद पंजाव में पधारने की प्रार्थना की। महाराजश्री ने फरमाया कि कुछ दिनों से मेरी छाती में दर्द रहने लगा है। कभी-कभी तो यह वेदना असह्य हो जाती है। यदि मेरा यह रोग शान्त हो गया तो मैं पंजाव में विचरने का भाव रखता हूं।" यह आश्वासन पाकर पंजाव का श्रीसंघ लौट गया।

महाराजश्री के वृक्षःस्थल की पीड़ा वढ़ती ही गई। चातुर्मास समाप्ति में कुछ ही दिन अव शेष रह गए थे। महाराजश्री की अस्वस्थता की सूचना

पाकर धर्म प्रेमी वन्धु श्री इन्द्र सेन डाक्टर को साथ लेकर महाराज श्री के चरणों में उपस्थित हुए। महाराजश्री की शारीरिक जाँच पड़ताल के वाद डाक्टर महोदय इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि उन्हें हृदय रोग है। उपचार के लिए दिल्ली पधारने की विनती की गई। दवाई लाला इन्द्रसेन ने वड़ौत भिजवा दी। उपचार चलता रहा।

चातुर्मास समाप्ति के वाद महाराजश्री वड़ौत मण्डी के स्थानक में पधार गए। ग्रौपधि ग्रहण करते हुए सात ग्राठ दिवस हो गए थे। परन्तु रोग शमन नहीं हुग्रा। विवश होकर महाराजश्री ने दिल्ली की ग्रोर प्रस्थान करने का विचार वनाया। चलने से पूर्व महाराजश्री ने गोली (ग्रौपधि) ग्रहण की। इस ग्रौषधि के प्रभाव से पीड़ा सात ग्राठ घण्टों तक शान्त रहती थी।

तदनन्तर महाराजश्री ने ग्रपने शिष्य समुदाय के साथ दिल्ली की ग्रोर प्रस्थान किया। वड़ौत के जैन तथा जैनेतर सैकड़ों भाई महाराजश्री के साथ पद यात्रा कर रहे थे। उनके मन में इस महान मानव के लिए ग्रपार श्रद्धा थी, भक्ति थी। शहर से कुछ दूर हो जाने के उपरान्त महाराजश्री ने उन्हें लौट जाने को कहा। मंगलिक सुनकर चरण स्पर्श करके जनसमूह लौट लिया। महाराजश्री का वड़ौत से यह ग्रन्तिम विहार था।

मार्गवर्ती गांवों में धर्म की दुन्दभि वजाते हुए जन कल्याण करते हुए महाराजश्री चले जा रहे थे दिल्ली की ग्रोर। सात दिन में ग्राप चाँदनी चौक स्थित जैन स्थानक में पधार गए। पुन: दिल्ली में पदार्पण ग्रापका भवितव्यता के कारण ही हुग्रा। ग्रापकी भावना सोनी पत ग्रौर पानीपत के मार्ग द्वारा ग्रव भी पंजाव जाने की थी। दिल्ली मैं ग्राजाने के वाद भी पंजाव की ग्रोर प्रस्थान करने का विचार था। इसलिए ग्रापने ग्रपने दो शिष्यों को पानीपत की ग्रोर विहार करने का ग्रादेश दिया। शिष्यों के प्रस्थान के समय महाराजश्री ने कहा, "रोग के शान्त हो जाने के वाद मैं पंजाव की ग्रोर विहार करने की भावना रखता हूं। मेरा यहां ग्रागमन डाक्टर के परामर्श पर ग्रौर लाला इन्द्र सेन की विनती से हुग्रा है। ग्राशा है कि कुछ ही दिनों में मेरा

स्वास्थ्य ठीक हो सकता हैं। घबराने की कोई आवश्यकता नहीं है।" महाराजश्री की आज्ञा को शिरोधार्य कर दोनों सन्तों ने पानी पत की ओर विहार कर दिया।

विधि कि विडम्बना बड़ी ही विचित्र है। इसके खेल बड़े ही निराले हैं। नियति के गर्भ में क्या निहित है, इसे कोई भी नहीं जान सका। भवितव्यता ही महाराजश्री को दिल्ली खींच कर लाई थी। रावल पिण्डी, गोल्ड़ा, शरीफ, सैदपुर पंजाब, हरियाणा, महाराष्ट्र, बम्बई, मारवाड, मेवाड, गुजरात खानदेश, अहमदाबाद मध्यप्रदेश और उत्तर प्रदेश आदि क्षेत्रों में धर्मदीप को प्रज्ज्वलित करने वाला सन्त नियति के चक्कर में फंस कर अब दिल्ली क्षेत्र की सीमाओं में (बंध) गया था।

इस में कोई सन्देह नहीं है कि साधु-महात्माओं के लिए सारा संसार कुटुम्ब की तरह होता है। "वसुधैव कुटुम्बकम्" के सिद्धान्त पर आरूढ़ रह कर जीवन यापन करते हैं लेकिन फिर भी वे उसी सम्प्रदाय के माने जाते हैं, जिसमें वे दीक्षित होते हैं। जैन सम्प्रदाय में—समुदाय में साधु और श्रावक एक दूसरे के पूरक माने गए हैं। मुस्लिम धर्म में आमिल और कामिल एक दूसरे के पूरक माने गए हैं। जब कभी आमिल अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो जाता है तो कामिल उसकी प्रवृत्तियों को धर्म की ओर उन्मुख करता है। इसी प्रकार जैन दर्शन में आगार और अनगार दो रूप हैं, जो सदैव एक दूसरे के पूरक रहे हैं। दूसरे शब्दों में साधु और श्रावक से ही अभिप्राय है।

साधु—महात्मा श्रावक वर्ग को देव, गुरु और धर्म का ज्ञान देते हैं। श्राधक श्रमण की साधना और भौतिक शरीर के संरक्षण में सहायक हुआ करता है। जब भी कभी कोई निर्ग्रंथ शारीरिक व्याधि से पीड़ित हो जाते हैं तो उस समय श्रावक की सहायता की आवश्यकता पड़ा करती है। श्रावक की यह सहायता व्यक्तिगत भी हो सकती है और सामूहिक भी। श्रावक साधुओं के माता-पिता के तुल्य होते हैं। साधुओं की संयम साधना में अपने कार्यों से दोष न लगने देना और उनके संयम की रक्षा में सहायक होना ही श्रावक का कर्त्तव्य होता है। जिस प्रकार माता पिता आँधी, वर्षा, सर्दी, गर्मी

आदि विपत्तियों से अपनी सन्तति की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार श्रावक साधु की साधना में लगने वाले दोषों से उनका संरक्षण करता है। संयम साधना में सहायक होने की दृष्टि से ही तो उसे माता-पिता तुल्य कहा गया है।

साधु जब गोचरी के लिए जाता है तो उसे आहार पानी ग्रहण करते समय इस बात का ध्यान रखना पड़ता है कि उसे निर्दोष आहार पानी मिले। आहार पानी ग्रहण करते समय जो ४७ दोष लगते हैं, उसमें १६ दोष ऐसे हैं, जो श्रावक के कारण साधु को लगते हैं। कहने का अभिप्राय यही है कि साधु और श्रावक एक दूसरे के पूरक हैं।

महाराजश्री का जीवन संयम साधना का एक आदर्श रहा है। इन के जीवन से लोग प्रेरणा प्राप्त करते हैं। संयम साधना की शुभ्र और उज्ज्वल चादर पर आप ने कभी दाग नहीं लगने दिया। विपत्तियों के पहाड़ टूटने पर भी आप अपनी संयम साधना में चट्टान की तरह अडिग रहे। अस्वस्थ हो जाने पर औषधि आदि आप संयम की आराधना के नियमों के अनुरूप ही ग्रहण करते रहे।

अभी आप बारहदरी के स्थानक में ही विराजे हुए थे। उपचार चल रहा था। कई मास तक आप ऐलो पैथिक औषधि ग्रहण करते रहे। जब ऐलोपैथिक दवाइयों से रोग शान्त नहीं हुआ तो फिर आपने आयुर्वेदिक दवाइयों का डेढ़ दो मास तक सेवन किया। महाराजश्री के स्वास्थ्य में जब कुछ भी सुधार नहीं हुआ तो महाराजश्री ने चांदनी चौक के श्रावकों के सम्मुख क्षेत्र बदलने के भाव रक्खे। यहां का श्रावक वर्ग नहीं चाहता था कि महाराजश्री ऐसी स्थिति में विहार करें परन्तु उनके दृढ़ भावों को देख कर वे मौन हो गए।

चांदनी चौक क्षेत्र के भाइयों के साथ महाराजश्री सदर स्थानक में पधार गए। ईर्या पथिक क्रिया की आलोचना के उपरान्त महाराजश्री ने समागत जनता को धर्मोपदेश दिया। मंगलीक सुन कर सभी विसर्जित हो गए।

स्थानक में विराजित रह कर आप प्रतिदिन प्रवचन फरमाते रहे। रुग्णा-

रुग्णवस्था में भी प्रवचन करना आप के अद्‌भुत साहस का परिचायक है। यहां पर आपकी सेवा में शक्ति नगर क्षेत्र का संघ उपस्थित हुआ। उनकी प्रार्थना पर आप शक्तिनगर पधारे। शक्तिनगर में आप लाला प्यारालाल जैन बीड़ी वाले के मकान में ठहरे। यह मकान खाली था। दूसरे एक मंजिल वाला था, अतः महाराजश्री ने अपनी सुविधाओं को देखते हुए यहीं ठहरना उचित समझा। महाराजश्री का प्रवचन शक्ति नगर के स्थानक के नीचे के हाल में हुआ करता था। चार पांच सौ के लगभग धर्म प्रेमी बन्धु आपके व्याख्यानों से यहां पर धर्म लाभ उठाते रहे।

चातुर्मास प्रारम्भ होने में अभी दो मास शेष थे। तभी जैनाचार्य, जैन धर्म दिवाकर, मुनिकुल करीट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज का दिल्ली में पदार्पण हुआ। उनके सम्मान में वीर नगर को झण्डियों और तोरण द्वारों से सजाया जाना था। जब महाराजश्री को इस बात की सूचना मिली तो उन्होंने वीर नगर के बन्धुओं को सन्देश भेजा कि जिस रूप में आप आचार्यश्री का स्वागत कर रहे हैं, उस स्थिति में पहुंचने में मैं असमर्थ हूं। वीर नगर के श्रावकों ने तोरण द्वार और झण्डियां लगाने का कार्यक्रम स्थगित कर ऐसी स्थिति बना ली, जिसमें साधु वर्ग को किसी प्रकार की आपत्ति न हो। महाराजश्री भी फिर आचार्य सम्राट के स्वागत समारोह में उपस्थित हुऐ। आचार्य सम्राट का वीरनगर में पदार्पण करने पर भव्य स्वागत हुआ। महाराजश्री ने आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज के चरणों में अपनी श्रद्धा के पुष्प चढ़ाए। यहां पर सामूहिक प्रवचनों का कार्यक्रम आठ दिन तक चलता रहा। महाराजश्री शक्तिनगर से प्रतिदिन आते जाते रहे।

आठ दिन के बाद आने वाले रविवार के दिन एक विराट समारोह का आयोजन वीर नगर में हुआ। महाराजश्री भी आमन्त्रित थे। जब महाराजश्री समारोह स्थल पर पहुंचे तो पंखों को चलता हुआ देख कर समारोह स्थल से लौट कर आचार्यश्री जहां ठहरे हुए थे, आगए। वीर नगर के श्रीसंघ के प्रतिनिधियों के पास महाराजश्री ने संदेश भिजवाया कि जब तक पण्डाल में पंखे चलते रहेंगे, मैं पण्डाल में नहीं आ सकूंगा। महाराजश्री के संदेश पर पंखे

वन्द कर दिए गए। तदनन्तर महाराजश्री समारोह स्थल पर पधारे। महाराजश्री ने आधे घण्टे तक व्याख्यान दिया। तदुपरान्त आप शक्तिनगर पधार गए। दूसरे दिन आचार्य सम्राट भी अपनी शिष्यमण्डली सहित शक्तिनगर पधार गए।

शक्ति नगर जैन समाज के तत्वाधान में आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि महाराज के अभिनन्दनार्थ एक विराट महोत्सव रविवार के दिन किया गया जिसमें स्थानीय वक्ताओं ने आचार्यश्री के चरणों में अपनी श्रद्धा के प्रसून समर्पित किए। महाराजश्री ने आधे घण्टे तक भाषण दिया। दूसरे दिन आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी यहां से विहार कर गए। महाराजश्री के प्रवचनों का कार्यक्रम चलता रहा।

कुछ दिन बीत जाने के बाद लाला इन्द्रसेन जी तथा लाला श्रीपाल जी करौलबाग निवासी महाराजश्री की सेवा में उपस्थित हुए और महाराजश्री से नम्र निवेदन किया कि हम करौलबाग निवासी, प्रतीक्ष्य आग्रहर, सुधानिधि द्वितीय पट्टधर जैनाचार्य श्री आनन्द ऋषि जी के सम्मान में वृहत् उत्सव का आयोजन करने का विचार रखते हैं, जिसमें आपकी उपस्थिति परमावश्यक है। अतः आप करौलबाग क्षेत्र को पावन करने की कृपा करें। यह सुन कर महाराजश्री ने उत्तर दिया कि अधिक चलने से मेरी छाती में पीड़ा पुनः तीव्र हो जाने लगी है, इसलिए मेरा वहां पहुंच सकना कठिन है। दोनों महानुभावों ने पुनः महाराजश्री से निवेदन किया कि आचार्यसम्राट तो लाउडस्पीकर पर बोलते नहीं है। अतः आप के न पधारने से हमारा यह आयोजन फीका रहेगा। महाराजश्री बोले, "यदि स्वास्थ्य ने साथ दिया तो पहुंचने का प्रयास अवश्य करूंगा। आप हतोत्साह न हों।" आशीर्वाद प्राप्त कर दोनों महानुभाव लौट आए।

महाराजश्री रविवार को करौलबाग पधार गए। आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज के सम्मान में आपने लगभग सवा घण्टे तक विचार रखे। यहाँ पर पटेल नगर के भाइयों ने महाराजश्री से विनती की कि आचार्य श्री पटेलनगर पधार रहे हैं। इस अवसर पर आप भी हमारे क्षेत्र को अपनी

चरण धूलि से पवित्र करने का कष्ट करें। इससे पूर्व भी हमने आपसे पटेल नगर पधारने के लिए कई वार प्रार्थना की थी परन्तु हमारी झोली खाली ही रही हैं। आग्रह पूर्ण विनती को महाराजश्री ठुकरा नहीं सके। आप ने पटेल नगर जाना स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन महाराजश्री यहां से धीरे-धीरे चल कर पटेलनगर पधार गए। यहाँ पर आचार्य प्रवर श्री आनन्द ऋषि जी के साथ ही महाराजश्री व्याख्यान करते रहे। सामूहिक प्रवचनों का यह क्रम यहाँ पर पांच छः दिन तक चला। यहां से विहार करके सराय रूहेला होते हुए महाराजश्री शक्तिनगर पधार गए। यहां पर जव तक आप विराजमान रहे, धर्मोपदेश करते रहे।

एक दिन करौलवाग के धर्मप्रेमी वन्धु आपकी सेवा में करौलवाग के चातुर्मासार्थ विनती करने आए। आप ने उनकी विनती मान ली।

शक्ति नगर से प्रस्थान करके महाराजश्री वीरनगर पधारे। यहां पर आप लाला रोशनलाल के मकान पर ठहरे। व्याख्यान महाराजश्री का लाला रामलाल सर्राफ की कोठी पर होता रहा। श्रोताओं की उपस्थिति सात आठ सौ के लगभग हो जाया करती थी। चौदह पन्द्रह दिन यहाँ ठहर कर आपने चातुर्मास से आठ दिन पूर्व करौलवाग को प्रस्थान किया।

करौलबाग दिल्ली चातुर्मास

वि० संवत् २०२६ वी० संवत् २४६५ सन् १६६६

करौलवाग की स्थानीय जैन तथा जैनेतर जनता ने सामूहिक रूपसे आप का भव्य स्वागत किया। करौलवाग में आप जैनस्थानक प्रेम भवन में विराजे। स्वागत के लिए समागत भाइयों और वाइयों को महाराजश्री ने मंगलीक सुनाई। तत्पश्चात् जन समूह अपने-अपने गन्तव्य स्थान को चला गया। यहीं पर आपके दैनिक प्रवचन प्रारम्भ हुए। आपके प्रवचनों का विषय था कि—

(१) यह लोक अन्त सहित है या अन्त रहित है?

(२) जीव अन्त सहित या अन्त रहित है?

(३) सिद्ध शिला अन्तसहित है या अन्त रहित है?

(४) सिद्ध भगवान् अन्त सहित हैं या अन्त रहित हैं?

(५) कौन से मरण से संसार वढ़ता है और कौन से मरण से संसार घटता है?

वैशालिक श्रावक पिंगल निर्ग्रंथ ने गर्दभाली के शिष्य स्कन्दक सन्यासी से यही उपरोक्त प्रश्न किए थे। स्कन्दक परिव्राजक इन प्रश्नों का कुछ भी उत्तर न दे सका और मौन रहा। उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि—इन प्रश्नों का उत्तर यह है अथवा दूसरा है? उसके मन में कांक्षा उत्पन्न हुई कि—मैं इन प्रश्नों का उत्तर कैसे दूं? मुझे इन प्रश्नों का उत्तर कैसे आए? उसके मन में विचिकित्सा उत्पन्न हुई कि—मैं जो उत्तर इन प्रश्नों के दूंगा, उससे प्रश्न कर्त्ता को संतोष होगा या नहीं? उसकी बुद्धि में भेद उत्पन्न हुआ कि इस विषय में मैं कुछ भी नहीं जानता हूँ। जव स्कन्दक परिव्राजक कुछ भी उत्तर नहीं दे सका, तव पिंगलक निर्ग्रंथ वहां से चला गया।

उस समय श्रावस्ती नगरी में जहाँ तीन मार्ग, चार मार्ग और बहुत मार्ग मिलते हैं, वहाँ लोग परस्पर इस प्रकार बातें कर रहे थे कि श्रमण भगवान् महावीर कृतांगला नगरी छत्रपलाशक उद्यान में पधारे हैं। लोग भगवान् की वन्दना करने के लिये जाने लगे। भगवान् महावीर के आगमन का समाचार स्कन्दक परिव्राजक ने भी सुना। उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि मैं भी भगवान् के पास जाकर अपनी शंका का समाधान क्यों न प्राप्त कर लूं। वह अपने तापस सम्बन्धी भंडोपकरण लेकर कृतांगला नगरी के छत्रपलाशक उद्यान की तरफ रवाना हुआ।

इधर श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने अपने ज्येष्ठ शिष्य श्री इन्द्र भूति अणगार से इस प्रकार कहा कि—हे गौतम ! आज तू अपने पूर्व के साथी को देखेगा। तब गौतम स्वामी ने पूछा कि हे भगवन् मैं आज अपने किस पूर्व साथी को देखूंगा ? तब भगवान् ने फरमाया कि हे गौतम ! तू आज अपने स्कन्दक परिव्राजक को देखेगा। तब गौतम स्वामी ने पूछा—"हे भगवन् मैं उसे कब, किस तरह से और कितने समय बाद देखूंगा।"

भगवान् बोले, "हे गौतम ! स्कन्दक परिव्राजक अपने स्थान से चल कर मेरे पास आ रहा है। बहुत सा मार्ग पार कर निकट पहुंच गया है। मार्ग में चल रहा है। हे गौतम ! तू आज ही उसे देखेगा।"

"हे भगवन् ! वह यहाँ किस लिए आ रहा है ?"

"हे गौतम। पिंगलक नामक निर्ग्रंथ ने उससे पांच प्रश्न पूछे थे। वह उनका उत्तर नहीं दे सका। उसके मन में शंका कांक्षा आदि उत्पन्न हुई है। उन प्रश्नों का उत्तर पूछने के लिए वह मेरे पास आ रहा है।"

"हे भगवन् ! क्या स्कन्दक आपके पास दीक्षा लेगा ?"

"हे गौतम ! हाँ, वह मेरे पास दीक्षा लेगा।"

इस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी गौतम स्वामी से कह ही रहे थे कि कात्यायन गौत्री स्कन्दक परिव्राजक उस प्रदेश में आया।

गौतम स्वामी उठ कर गए और बोले, "हे स्कन्दक ! स्वागत है, सुस्वागत है, तुम्हारा आना अच्छा हुआ, तुम्हारा आना भला हुआ। पिंगलक नामक

निर्ग्रंथ ने तुम्हारे से पांच प्रश्न पूछे थे, जिन के उत्तर तुम नहीं दे पाए। उनका जवाब पूछने के तुम भगवान् के पास आए हो। क्या यह बात सत्य है?" तब स्कन्दक जी ने गौतम स्वामी जी से पूछा, "हे गौतम! कौन ऐसा ज्ञानी या तपस्वी पुरुष है? जिसने मेरे मन की गुप्त बात तुम से कह दी और तुम मेरे मन की गुप्त बात जान गए।"

"हे स्कन्दक? मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर स्वामी उत्पन्न ज्ञान के धारक हैं, अरिहन्त हैं, जिन हैं, केवली है, भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल के ज्ञाता है, सर्वज्ञ है, सर्वदर्शी हैं। उन्होंने तुम्हारे मन में रही हुई गुप्त बात मुझ से कही है। इसलिए हे स्कन्दक! मैं तुम्हारे गुप्त-मन की बात जानता हूं।" गौतम स्वामी ने कहा।

"हे गौतम! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेश श्रमण भगवन् महावीर स्वामी के पास चलें, वन्दना नमस्कार करें यावत् उनकी पर्युपासना करें।"

"हे देवानुप्रिय! जैसा तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु इस कार्य में विलम्ब मत करो।" गौतम स्वामी ने स्कन्दक को कहा।

स्कन्दक के साथ गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पास आए। भगवान् को तीन वार प्रदक्षिणा कर नमस्कार कर पर्युपासना करने लगे। तब भगवान् महावीर जी ने स्कन्दक से कहा, "हे स्कन्दक! पिंगल नाम के निर्ग्रंथ ने तुम से पाँच प्रश्न पूछे थे। जिनके उत्तर तुम नही दे पाए। उन प्रश्नों के उत्तर पूछने के लिए ही तुम मेरे पास आए हो। क्या यह बात सत्य है?"

"हाँ भगवन्! सत्य है।" स्कन्दक ने उत्तर दिया।

"हे स्कन्दक! लोक के विषय में तुम्हारे मन में जो यह संकल्प था कि क्या लोक अन्त सहित है या अन्त रहित है? इस विषय में मैंने चार प्रकार का लोक बतलाया है। द्रव्य लोक, क्षेत्र लोक, काल लोक और भावलोक! द्रव्य से लोक एक है, अन्त सहित है। क्षेत्र से लोक असंख्यात कोड़ाकोड़ी योजना का लम्बा चौड़ा है, अन्तसहित है। काल से लोक भूतकाल में था,

वर्तमान काल में है और भविष्यत् काल में भी रहेगा। लोक ध्रुव है, नित्य है, शाश्वत है, अक्षय है, नियत है, अव्यवस्थित है और अन्तरहित है। भाव से लोक अनन्त वर्ण पर्याय रूप है, अनन्त गन्ध, रस, स्पर्श पर्याय रूप है, अनन्त संस्थान पर्याय रूप है, अनन्त गुरु लघु पर्याय रूप है, अनन्त अगुरु लघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है। इस प्रकार हे स्कन्दक ! द्रव्य लोक अन्त सहित है, क्षेत्रलोक अन्तसहित है, काल लोक अन्त रहित है और भावलोक अन्त रहित है। इस प्रकार लोक अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।"

"हे स्कन्दक ! जीव के विषय में तुम्हारे मन में यह विकल्प हुआ था कि जीव सान्त है अथवा अनन्त है। हे स्कन्दक। मैंने जीव के चार भेद कहे हैं। यथा द्रव्य जीव, क्षेत्र जीव, काल जीव और भाव जीव। द्रव्य से जीव एक है, अन्त सहित है। क्षेत्र से जीव असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किए है, अन्त सहित है। काल से जीव नित्य है अर्थात् ऐसा कोई समय नहीं था, न है और न होगा कि जब जीव न रहा हो यावत् जीव नित्य है, अन्त रहित है। भाव से जीव की अनन्त ज्ञान पर्याय हैं, अनन्त दर्शन पर्याय हैं, अनन्त चारित्र पर्याय हैं, अनन्त अगुरु लघु पर्याय हैं, अन्त रहित है। इस प्रकार द्रव्य जीव और क्षेत्र जीव अन्त सहित है तथा काल जीव और भाव जीव अन्त रहित है। इसलिए हे स्कन्दक ! जीव अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।" "हे स्कन्दक ! सिद्धि (सिद्ध शिला) के विषय में तुम्हारे मन में जो विकल्प था, उसका समाधान इस प्रकार है। मैंने सिद्धि के चार भेद कहे हैं। द्रव्य सिद्धि, क्षेत्र सिद्धि कालसिद्धि और भाव सिद्धि। द्रव्य से सिद्धि एक है और अन्त सहित है। क्षेत्र से सिद्धि ४५ लाख योजना की लम्बी चौड़ी है। १४२—३०२४९ योजन झाझेरी परिधि है। यह भी अन्त सहित है। काल से सिद्धि नित्य है, अन्त रहित है। भाव से सिद्धि अनन्त वर्ण पर्याय वाली है, अनन्त गन्ध रस और स्पर्श पर्याय वाली है। अनन्त गुरु लघु पर्याय रूप है और अनन्त अगुरु लघु पर्याय रूप है, अन्त रहित है। द्रव्य सिद्धि और क्षेत्र सिद्धि अन्तवाली है और काल-सिद्धि और भाव सिद्धि अन्त रहित है।

लिए हे स्कन्दक ! सिद्धि अन्त सहित भी है और अन्त रहित भी है।"

"हे स्कन्दक ! सिद्ध विषयक शंका का समाधान इस प्रकार है। सिद्ध चार प्रकार के होते हैं।। द्रव्य सिद्ध, क्षेत्र सिद्धि काल सिद्ध और भाव सिद्ध। द्रव्य से सिद्ध एक है, अन्त सहित है। क्षेत्र से सिद्ध असंख्यात प्रदेश वाले हैं, असंख्यात आकाश प्रदेश अवगाहन किए हैं, अन्त सहित हैं। काल से सिद्ध आदि सहित हैं और अन्त रहित हैं। भाव से सिद्ध अनन्त ज्ञान पर्याय रूप हैं यावत् अनन्त अगुरु लघु पर्याय रूप हैं, अन्त रहित हैं। अर्थात् द्रव्य से और क्षेत्र से सिद्ध अंत वाले हैं तथा काल से और भाव से सिद्ध अन्तरहित हैं। इसलिए हे स्कन्दक ! सिद्ध अन्त सहित भी हैं और अन्त रहित भी हैं।"

"हे स्कन्दक ! तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ था कि कौन से मरण मरता हुआ जीव संसार को बढ़ाता है और कौन से मरण से मरता हुआ जीव संसार को घटाता है। स्कन्दक ! मरण दो प्रकार का बतलाया गया है। बाल मरण और पण्डित मरण। बाल मरण को प्राप्त जीव संसार को बढ़ाता है और पण्डित मरण को प्राप्त जीव संसार को घटाता है।

(बाल मरण बारह प्रकार का होता है और पण्डित मरण दो प्रकार का होता है। भेदोपभेदों का विवेचन इस से पूर्व किया जा चुका है।)

इस प्रकार व्याख्यान करते-करते पर्यूषण पर्व के शुभ दिन आ गए। सैकड़ों लोग व्याख्यान में आकर धर्म लाभ उठाते रहे। रविवार को प्रायः सार्वजनिक प्रवचन हुआ करता था। इस दिन श्रोताओं की उपस्थिति और दिनों से अत्याधिक होती थी।

पर्यूषण पर्व के दिनों में महाराजश्री ने अन्त गढ़ सूत्र का वाचन किया। पर्यूषण पर्व के दिनों में खूब तपस्या की आराधना की गई। सम्वत्सरी महापर्व के दिन महाराजश्री ने अन्त गढ़ सूत्र का वाचन सम्पूर्ण किया। पर्यूषण पर्वाधिराज के दिनों में यहाँ के भाइयों की ओर से दो तीन दिन लड्डुओं की प्रभावना भी बाँटी गई इस पर्व के समापन के बाद भी व्याख्यान प्रतिदिन

नियमित रूप से चलता रहा। भादों सुदी दशमी को वैरागी की आर्हती दीक्षा का मूहूर्त्त निकला।

यह वैरागी महाराजश्री की सेवा में कैसे पहुंचा? इसका भी एक इतिहास है। वैराग्य के भाव पैदा होने से पूर्व यह व्यक्ति लाला रोशन लालजी स्यालकोट वालों के पास रहता था। नाम था नित्यानन्द। नित्यानन्द इस परिवार के सम्पर्क के कारण साधु-महात्माओं के सम्पर्क में आता रहा। जव महाराजश्री वड़ौत में थे, तव भी लाला रोशनलाल जी के दोनों सुपुत्र श्री सुशील कुमार और राजकुमार दर्शनार्थ वड़ौत आते-जाते रहे। एक वार अवसर पाकर सुशील कुमार ने महाराजश्री जी से निवेदन किया कि हमारे पास एक लड़का है। उसके विचार वहुत ही धार्मिक हैं। यदि वह आपके पास वैरागी वन कर दीक्षा ले ले तो वहुत अच्छा रहेगा। महाराजश्री ने कहा, "कभी उसे दर्शन करवाना।" इसके कुछ दिन वाद चांदनी चौक में श्री सुशील कुमार नित्यानन्द को महाराजश्री के पास ले आया। महाराजश्री कुछ देर तक नित्यानन्द से वार्तालाप करते रहे। तदनन्तर महाराजश्री ने उससे पूछा कि क्या तुम साधु वनने के भाव रखते हो? वह वोला, "अभी मैं किसी निर्णय पर नहीं पहुंच सका हूँ, गुरुदेव!" तदुपरान्त वह भाई सुशील कुमार के साथ लौट गया। आठ दिन के वाद नित्यानन्द भाई सुशील कुमार के साथ फिर महाराजश्री के चरणों में उपस्थित हुआ और उसने महाराजश्री से साधु वनने के विचार रखे। महाराजश्री ने उसे साधु धर्म के परिपहों को वताया। साधु धर्म के परिपहों को जव उसने हंसते-हंसते सहन कर उस पर दृढ़ रहने का वचन दिया तो महाराजश्री ने उसे वुधवार को आने का आदेश दिया। वुधवार को वह भाई सुशील और उसकी माता जी के साथ महाराजश्री के चरणों में उपस्थित हो वैरागी वन गया। महाराजश्री के चरणों में रह कर उसने सामायिक प्रतिक्रमण सीखा, विद्याध्ययन किया। सात मास के वाद वह अर्हती दीक्षा के योग्य समझा गया। दीक्षा के समय निकट आने पर महाराजश्री ने करौलवाग से चांदनी चौक के लिए विहार किया। रास्ते में आप सदर स्थानक में ठहरे। वैरागी नित्यानन्द के केसर की

रस्म सदर बाजार के स्थानक में ही पूर्ण की गई। इस अवसर पर बहुत से साधु-साध्वी गण उपस्थित थे। केसर की रस्म के दिन श्री सुशील कुमारजी ने पेड़ों की प्रभावना की। अगले दिन महाराजश्री जी चांदनी चौक के स्थानक में पधारे। यहाँ पर पहुंचते ही महाराजश्री ज्वाराक्रांत हो गए।

दीक्षा वाले दिन एक वैरागी का तथा दो वैरागिनों का जुलूस मुन्नालाल की धर्मशाला चीराखाना से चल कर लालकिले के सामने स्थित परेड़ मैदान में पहुँचा। आचार्य सम्राट श्री आनन्द ऋषि जी महाराज ने दीक्षार्थियों के माता-पिता से आज्ञा प्राप्त कर दीक्षार्थियों को दीक्षा पाठ पढ़ाया। महाराजश्री ने चालीस पचास हजार के विशाल जनसमूह के समक्ष खड़े होकर दीक्षा पाठ के महत्व पर प्रकाश डाला। इस के बाद महाराजश्री चाँदनी चौक के स्थानक में पधार गए। मार्ग में ही लौटते समय महाराजश्री को छाती में दर्द अनुभव होने लगा था। छाती कीवेदना के कारण ही महाराजश्री को स्थानक के नीचे की मंजिल में ही तीन चार घंटे तक रुकना पड़ा था। संध्या काल को महाराज श्री ऊपर की मंजिल में पधारे। रुग्णता के कारण महाराजश्री को यहाँ पर सात आठ दिन तक रुकना पड़ा।

यहां से विहार करके एक रात सदर स्थानक में रुक कर महाराजश्री करौलबाग स्थानक में पधार गए। चातुर्मास की समाप्ति के बाद आचार्य सम्राट जी की ओर से सूचना आई कि कविश्री अमर चन्द जी महाराज से समाचारी के विषय में वार्तालाप करने के लिए कौन सा स्थान आपके अनुकूल रहेगा। महाराजश्री ने फरमाया कि सुविधा तो मेरे लिए करौल बाग में ही है परन्तु करौलबाग क्षेत्र में बहुत से साधुओं के लिए आहार पानी की सुविधा नहीं है।

अतः शक्तिनगर का स्थान उचित रहेगा। महाराजश्री निश्चित समय से एक दिन पहले करौल बाग से शक्ति नगर पधार गए इसके बाद यहाँ आचार्य श्री तथा कविजी महाराज भी पधार गए और सामाचारी के विषय पर विचार विमर्श प्रारम्भ हुवा बड़ी देर की चर्चा के बाद अजमेर साधु सम्मेलन में बनाई

गई सामाचारी स्वीकार की गई। दूसरे दिन से शक्ति नगर स्थानक में आचार्यश्री, तथा कविजी महाराज के साथ-साथ व्याख्यान होते रहे इसके वाद आचार्य श्री तथा कविजी महाराज शक्ति नगर से विहार कर गए और महाराजश्री शक्ति नगर में ही विराजे रहे इसके वाद सुशील मुनि के पास एक वैरागी की दीक्षा होनी थी जिसमें सुशील मुनि की ओर से महाराजश्री से विनती की गई कि दीक्षा के पाठ पढ़ाने की आप कृपा करें। महाराजश्री ने विनती स्वीकार करली और दीक्षाके दिन सब्जीमण्डी स्थानक में पधारे उस समय कवि अमरचंद जी महाराज सब्जीमण्डी स्थानक में विजामान थे। महाराज श्री ने दीक्षार्थी को दीक्षा का पाठ पढ़ाया, दीक्षा संपन्न होने पर महाराजश्री शक्ति नगर पधार गए और नित्य प्रति व्याख्यान फरमाते रहे होली चौमासी के वाद सब्जीमण्डी के भाई चातुर्मास की विनती करने के लिये शक्ति नगर में महाराजश्री की सेवा में आए महाराजश्री से अपने क्षेत्र में चातुर्मास करने की विनती की और महाराजश्री ने उनकी विनती स्वीकार करली इसके वाद वीर जयन्ती पहले शक्ति नगर में मनाई गई वाद में प्रताप वाग में मनाई गई इसके कुछ दिनों वाद सुदर्शन मुनि शक्ति नगर में आए और कुछ दिन महाराजश्री के साथ ही व्याख्यान होता रहा इसके वाद महाराजश्री वीरनगर संघ की विनती पर वीर नगर पधारे और लाला रामलाल के मकान में विराजे यहाँ पर महाराजश्री ने पन्द्रह सोलह दिन यहाँ विराज कर व्याख्यान करते रहे। जिसमें प्रतिदिन पांच सात सौ लोग धर्म लाभ प्राप्त करते रहे जिसमें फगवाड़े वाला लाला टेक चंदजी की ओर से प्रभावना भी की गई इसके वाद महाराजश्री फिर वापिस शक्ति नगर में प्यारा लाल के मकान में पधारे कुछ दिन यहां रुक कर चाँदनी चौक के भाईयों की विनती पर यहां से विहार करके चाँदनी चौक में पधारे यहाँ महाराजश्री शास्त्र के गहन विषयों पर व्याख्यान फरमाते रहे एक दिन शाम के समय आहार आया हुआ था, उधर केसरासती की शीष्या विमार थी उस समय सती की तरफ से वुलावा आया कि हम इस समय विमार सती को अस्पताल में लेजा रहे हैं और सती नीचे उतरी हुई है महाराजश्री उसे दर्शन देकर मंगली सुनाने की कृपा करें उस समय महाराजश्री वारादरी के ऊपर की

गई सामाचारी स्वीकार की गई। दूसरे दिन से शक्ति नगर स्थानक में आचार्यश्री, तथा कविजी महाराज के साथ-साथ व्याख्यान होते रहे इसके बाद आचार्य श्री तथा कविजी महाराज शक्ति नगर से विहार कर गए और महाराजश्री शक्ति नगर में ही विराजे रहे इसके बाद सुशील मुनि के पास एक वैरागी की दीक्षा होती थी जिसमें सुशील मुनि की ओर से महाराजश्री से विनती की गई कि दीक्षा के पाठ पढ़ाने की आप कृपा करें। महाराजश्री ने विनती स्वीकार करली और दीक्षाके दिन सब्जीमण्डी स्थानक में पधारे उस समय कवि अमरचंद जी महाराज सब्जीमण्डी स्थानक में विजामान थे। महाराज श्री ने दीक्षार्थी को दीक्षा का पाठ पढ़ाया, दीक्षा संपन्न होने पर महाराजश्री शक्ति नगर पधार गए और नित्य प्रति व्याख्यान फरमाते रहे होली चौमासी के बाद सब्जीमण्डी के भाई चातुर्मास की विनती करने के लिये शक्ति नगर में महाराजश्री की सेवा में आए महाराजश्री से अपने क्षेत्र में चातुर्मास करने की विनती की और महाराजश्री ने उनकी विनती स्वीकार करली इसके बाद वीर जयन्ती पहले शक्ति नगर में मनाई गई बाद में प्रताप बाग में मनाई गई इसके कुछ दिनों बाद सुदर्शन मुनि शक्ति नगर में आए और कुछ दिन महाराजश्री के साथ ही व्याख्यान होता रहा इसके बाद महाराजश्री वीरनगर संघ की विनती पर वीर नगर पधारे और लाला रामलाल के मकान में विराजे यहाँ पर महाराजश्री ने पन्द्रह सोलह दिन यहाँ विराज कर व्याख्यान करते रहे। जिसमें प्रतिदिन पांच सात सौ लोग धर्म लाभ प्राप्त करते रहे जिसमें फगवाड़े वाला लाला टेक चंदजी की ओर से प्रभावना भी की गई इसके बाद महाराजश्री फिर वापिस शक्ति नगर में प्यारा लाल के मकान में पधारे कुछ दिन यहां रुक कर चाँदनी चौक के भाईयों की विनती पर यहां से विहार करके चाँदनी चौक में पधारे यहाँ महाराजश्री शास्त्र के गहन विषयों पर व्याख्यान फरमाते रहे एक दिन शाम के समय आहार आया हुआ था, उधर केसरासती की शीष्या बिमार थी उस समय सती की तरफ से बुलावा आया कि हम इस समय बिमार सती को अस्पताल में लेजा रहे हैं और सती नीचे उतरी हुई है महाराजश्री उसे दर्शन देकर मंगली सुनाने की कृपा करें उस समय महाराजश्री बारादरी के ऊपर की

मंजिल पर विराज रहे थे सती की सूचना पर महाराजश्री वहां जाकर मंगली सुनाकर आए परन्तु ऐसे समय जबकि शाम का आहार आया हुआ था और महाराजश्री को चार मंजिल उतरना-चढ़ना पड़ा जिससे महाराजश्री के लिये यह दुःख रूप में परिणित हुआ क्योंकि महाराजश्री को चढ़ना उतरना डाक्टरों ने मना कर रखा था। इससे पहले महाराजश्री का स्वास्थ्य कुछ ठीक रूप में चल रहा था, दस बारह दिन के बाद महाराजश्री शक्तिनगर पधारे और गर्मी के मौसम के कारण हवा की सुविधा के लिये स्थानक के उपरी मंजिल में ठहरे जिससे यहां भी महाराजश्री को चढ़ना उतरना पड़ा। इसके बाद चातुर्मास के लिये सब्जीमण्डी स्थानक में पधारे यहाँ पर बड़ी संख्या में लोगों ने महाराजश्री का स्वागत किया। संक्षिप्त उपदेश के बाद महाराजश्री ने मंगल पाठ सुनाया और दूसरे दिन से नित्य प्रति व्याख्यान फरमाने लगे यहां पर महाराजश्री संवर क्या है ? निर्जरा क्या है ? और महावेदना क्या है ? और महा वेदना, महा निर्जरा किससे होती है ? इस महान गहन विषय पर व्याख्यान फरमाने लगे—जैन अजैन बड़ी संख्या में धर्म लाभ प्राप्त करने लगे।

गौतम स्वामी ने प्रश्न किया—

१. अहो भगवान् ! क्या जो जीव महा वेदना वाला है, वह महा निर्जरावाला है, और जो महा निर्जरावाला है। वह महावेदना वाला है। वह महा निर्जरावाला है ?

हाँ गौतम ! जो महावेदना वाला है, वह महा निर्जरा वाला है और जो महा निर्जरा वाला है वह महा वेदना वाला है।

२. अहो भगवान् ! क्या महा वेदना वाले और अल्प वेदना वाले जीवों में जो जीव प्रशस्त निर्जरा वाला है वह श्रेष्ठ है ?

हाँ गौतम ! महा वेदना वाले, अल्प वेदना वाले जीवों में जो जीव प्रशस्त निर्जरा वाला है वह श्रेष्ठ है।

हे गौतम ! "णो इकट्ठे समेट्ठ" [यह बात नहीं है] ।

४. अहो भगवान् ! इसका क्या कारण है ?

हे गौतम! जैसे दो वस्त्र हैं उनमें एक तो कर्दम [कीचड़] के रंग से रंगा हुआ है, महा चिकनाई के कारण पक्का रंग लगा हुआ है। और एक वस्त्र खंजन [काजल] के रंग से रंगा हुआ है, चिकनाई नहीं लगी हुई है ।

हे गौतम ! इन दोनों वस्त्रों में से कौन सा वस्त्र कठिनता से धोया जाता है कठिनता से दाग छुड़ाये जाते हैं, कठिनता से उज्जवल [निर्मल] किया जाता है। और कौन सा वस्त्र सुख पूर्वक धोया जाता है। यावत् सुख पूर्वक निर्मल किया जाता है ?

५. अहो भगवान्! कर्दम रंग से रंगा हुआ वस्त्र कठिनता से धोया जाता है यावत् कठिनता से निर्मल होता है और खंजन रंग से रंगा हुआ वस्त्र सुख पूर्वक धोया जाता है यावत् सुख पूर्वक निर्मल होता है।

हे गौतम ! इसी तरह नेरीयों के कर्म गाढे चिकने शिस्लस्ट खिलीभूत [निकाचित] किये हुये हैं जिससे महावेदना वेदते हैं तो भी श्रमणा निर्ग्रन्थों की अपेक्षा महा निर्जरा नहीं कर सकते हैं ।

हे गौतम ! जैसे खंजन से रंगा हुआ वस्त्र सुख पूर्वक धोया जाता है इसी तरह श्रमण निग्रंन्थों के कर्म, तप, संयम, ध्यानादि से पहले शिथिल निर्बल असार किए हुये हैं जिससे अल्प वेदना वेदते हैं तो भी महा निर्जरा करते हैं। जैसे सूखे हुये घास में अग्नि डालने से घास तुरन्त भस्म हो जाती है। तथा गर्म धग धगाते लोहे के गोले पर जल की बूंद डालने से वह बूंद तुरन्त भस्म हो जाती है। इसी तरह श्रमण निग्रंन्थ महा निर्जरा करते हैं ।

६ अहो भगवान् ! जीव महा वेदना महा निर्जरा किससे करता है ?

हे गौतम ! करण से अथवा वीर्य से करता है।

७. अहो भगवान् ! करण कितने प्रकार के हैं ?

हे गौतम ! करण चार प्रकार के हैं—

पंडितों की ओर से ऐसा सुझाव आया कि ब्रह्मचर्यादि पाँच महाव्रत ऐच्छिक होने चाहिये क्या मुख वस्त्रिका को चुनौती दी जा सकती है? और किसी के ओर से ऐसे लेख निकले कि त्रिकाल दर्शी—सर्वज्ञ नहीं हो सकते।

ऐसे लेखों को पढ़ कर महाराजश्री ने यहां के मुख्य मुख्य भाईयों को बुलाकर उनसे कहा कि यह पंडित जैन समाज के लोगों की श्रद्धा भ्रष्ट करने पर तुले हुये हैं। ये लोग साधुओं को भी गृहस्थियों के रूप में देखना चाहते हैं। क्योंकि इच्छा परिमाण व्रत तो गृहस्थियों का होता है। तथा एक पंडित मुख वस्त्रिका का निषेध करना चाहता है यद्यपि जैन धर्म की जितनी भी श्वेताम्बर संप्रदाय हैं वे सभी मुख वस्त्रिका को मानते हैं जिनमें पुजेरे स्थानक वासी, तेरा पंथी आदि तीनों संप्रदायें मुख वस्त्रिका को मानती है।

शास्त्रों में जगह-जगह मुख वस्त्रिका के विषय में मूल पाठ आये हैं जैसे भगवती सूत्र के शतक १५ में जहां पर सिंह अणगार जिस समय भगवान् के लिये आहार लेने के लिये गाथा पत्नी रेवती के घर गये है वहाँ पर लिखा है कि वह अणगार मुख वस्त्रिका की प्रति लेखना करके गये है। और उत्तराध्ययन के २६ वें अध्ययन में कहा गया है कि साधु को सबसे पहले मुख वस्त्रिका की प्रति लेखना करनी चाहिये। सर्वज्ञ के विषय में इससे पूर्व के पृष्ठों में गौतम स्वामी और स्कन्दक सन्यासी के विषय में देखना चाहिये।

उधर त्रिकाल सर्वज्ञ के विषय में 'णमोत्थुणं' के पाठ में आता है कि "सव्व नुणं सव्वदरसीणं" इससे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् सर्वज्ञ भी और सर्व दर्शी भी होते हैं ऐसे उल्लेख शास्त्रों में अनेक स्थानों पर आये हैं।

उधर पिछले साल कविजी का लेख निकला था कि क्या शास्त्रों को चुनौती दी जा सकती है? कविजी महाराज ने ज्योतिष देवों के विषय में लिखा था कि आज के विज्ञानी चन्द्रमा के नीचे ऊपर घूम आये हैं वे जो १६ हजार देवता चन्द्रमा के विमान को उठाते हैं वे कहाँ छुप गये? लेखक ने अपने लेख में ज्योतिष देवों का निषेध ही नहीं किया अपितु इस मान्यता का उपहास भी किया है। शास्त्रों के प्रति ऐसा उपहास तो कोई विरोधी ही

कर सकता है। ज्योतिष देवों का निषेध कर के कोई भी शास्त्र प्रमाणिक नहीं रह सकता। जीवाभिगम सूत्र में पुरुष तथा स्त्रियों का अल्पाबुत द्वार है जिसमें उल्लेख आता है कि सभी पुरुषों में ज्योतिष पुरुष सबसे अधिक हैं और जितनी भी स्त्रिया है उनमें सर्वाधिक ज्योतिष देवियां हैं। २४ दण्डकों में तेईसवां दण्डक ज्योतिष देवों का है।

जीव के ५६३ भेदों में से ज्योतिष देवों के बीस भेद हैं ज्योतिष देवों का निषेध करने से चौबीस में से तेईस दण्डक रह जाते हैं जीव के ५६३ भेदों में से ५४३ भेद रह जाते हैं। भगवती सूत्र शतक १६ वें उद्देशे छठे में भगवान् ने दस स्वप्न देखे हैं जिनमें भगवान् ने सफेद सुगन्धित फूलों की पुस्कर्णी देखी। इसके फलादेश के विषय में भगवान् ने चार प्रकार के देवों की प्ररुपणा की है यथा भवन पतिदेवता बाणव्यन्तरदेवता, ज्योतिपदेवता, वैमानिक देवता।

भगवती सूत्र के शतक पाँच वें उद्देशे नौवें में गौतम स्वामी भगवान् से प्रश्न पूछते हैं कि भगवन् देव कितने प्रकार के होते हैं ?

हे गौतम ! देव चार प्रकार के होते हैं।

भवन पति आदि।

भगवती सूत्र शत्तक बीसवे उद्देसे आठवें में प्रश्न आते हैं कि भगवन् देव कितने प्रकार के होते हैं ?

इसके उत्तर में भगवान् फरमाते हैं कि देव चार प्रकार के होते हैं।

१. भवन पति देव।

२. बाण व्यन्तर देव।

३. ज्योतिष देव।

४. वेवाणीक देव। भगवती सूत्र शत्तक बारवें उद्देशे छट्टे में चन्द्रग्रहण और सूर्यग्रहण के विषय में बहुत विस्तार के साथ वर्णन है पाठक इस विषय में उसे पढ़ें।

वादी जिस ओर भी चल पड़ते हैं वे उसी प्रकार अपने कथन की पुष्टि करते चले जाते हैं। उस समय वे इतना विचारने का कष्ट नहीं करते कि मेरे इस कथन से समाज और मेरे लिये क्या नतीजा निकलेगा ? यदि आचार्य श्री उसी समय कविजी महाराज को सूचित कर देते कि आप शास्त्रों को गलत साबित न करें। क्योंकि आप इसी संस्था के उपाध्याय हैं, जिस संस्था का जो सदस्य हो वह पहले उससे त्याग पत्र दे दे फिर उसका विरोध कर सकता है। कोई भी संस्था बिना साहित्य के नहीं चल सकती जिस संस्था का साहित्य ही गलत हो उस संस्था का गौरव ही क्या रह जाता है ? अतः आपको शास्त्रों के विषय में ऐसा प्रकाशित करने का अधिकार नहीं था। यही प्रश्न महाराजश्री ने शक्ति नगर के विचार विमर्श के दौरान कविजी महाराज से पूछा था कि शास्त्रों को गलत ठहराने का [प्रकाशित करने का] आपको क्या अधिकार था ? कविजी ने उत्तर दिया कि जोधपुर में पाँच ६ साधु एकत्रित हुये थे वहाँ पर शास्त्रों के इन पाठों पर चर्चा चली थी अतः मैंने उन्हें प्रकाशित कर दिया। इस पर महाराजश्री ने उनसे प्रश्न किया कि आपको उन साधुओं की तरफ से इनको प्रकाशित करने की स्वीकृति मिली थी ? इस पर वहीं पर विराजित आचार्य श्री ने फरमाया कि हमने कोई स्वीकृति नहीं दी। महाराजश्री ने फिर फरमाया कि सरकार के भी दो प्रकार के प्रस्ताव होते हैं। एक गोपनीय होता है और दूसरा जनता में प्रकाशित करने का।

यदि सरकार उस गोपनीय प्रस्ताव को प्रकाशित कर दे तो जनता और सरकार दोनों को हानि पहुंचती है सरकार उन्हीं प्रस्तावों को प्रकाशित करती है जिनसे सरकार की नीतियों की पुष्टि हो और जनता को लाभ हो। इस पर कवि महाराज मौन हो गये। महाराजश्री ने चर्चा के दौरान कविजी से यह भी प्रश्न किया कि ज्योतिष देवों को न मानने से चौबीस दण्डकों में से तेईस दंडक रह जाते हैं और जीव के ५६३ भेदों में से ५४३ भेद रह जाते हैं इस पर भी कवि जी मौन रहे। महाराजश्री का कवि जी महाराज से वैमनस्य भाव नहीं था महाराजश्री तो कविजी महाराज से केवल इतना ही चाहते थे कि वह अपनी पिछली भूल स्वीकार करलें। इस विषय पर आगे प्रचार न

करें महाराजश्री का कविजी महाराज से परस्पर प्रेम बहुत लम्बे समय से चला आरहा था। वि० सं० १९९१ में उपाध्यायश्री आतमा राम जी महाराज का चातुर्मास चान्दनी चौक में था उस समय कवि श्री अमर चन्दजी महाराज तथा श्रीचंदजी महाराज उपाध्याय आत्माराम जी महाराज के साथ थे। चातुर्मास से पहले महाराजश्री भी बारादरी में थे उसके बाद कविजी महाराजश्री से अनेकों बार मिले और कई बार साथ-साथ विचरे दिल्ली में भी कविजी महाराज जितनी बार भी महाराज श्री से मिले उन्होंने महाराजश्री के प्रति अपना शिष्टाचार बहुत सराहनीय रखा फिर भी कई बार महाराजश्री से उनका पत्र व्यवहार हुआ किन्तु महाराजश्री व्यक्तिगत प्रेम के लिये शास्त्रों की उपेक्षा सहन नहीं कर सकते थे क्योंकि महाराजश्री का सिद्धान्त यह था कि जिस संप्रदाय में मैंने दीक्षा ली है मुझे उस संस्था संप्रदाय के गौरव को बढ़ाना है। अतः महाराजश्री की प्रेरणा पर यहाँ सब्जी मण्डी उधम सिंह हाल में दिल्ली की सभी बिरादरीयों के प्रतिनिधि आऐ और पंडितों के शास्त्र विरुद्ध प्रचार को रोकने के लिये सर्व सम्मति से प्रस्ताव पास किये गये और अखबारों में प्रकाशित कर दिए गए।

विचारणीय प्रश्न

श्रमण संस्कृति पर वर्षों से कुठाराघात किये जा रहे हैं। त्याग मूर्ति, विद्वान साधु वर्ग की अभेद्य दीवार ही सदैव इस संस्कृति की रक्षक रही है। अपने महान त्याग के कारण जैन मुनिराज पूजनीय रहे हैं। इनका महान् त्याग विश्व विख्यात है। तीर्थंकरों की परम्परा से चले आ रहे विधि विधानों का मूल रूप से ये मोक्षार्थी आत्माएं पालन करती चली आ रही हैं।

पं० दल सुख मालवणिया जी का प्रबुद्ध जीवन में (गुजराती) वर्ष ३२ अंक ३ दिनांक १ जून ७० में "आपणी साधु संस्था" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें आपने लिखा है कि—

१. गर्म पानी (प्राषुक) लेने की प्रथा अब अनावश्यक है। जहाँ नल का पानी आता है, वहां लगभग सर्वत्र उस में क्लोरीन वगैरह पदार्थों की मिलावट होती है और वैज्ञानिकों का कहना है कि उस में निर्जीवता आ जाती है। इस-लिए गर्म पानी का आग्रह व्यर्थ है।

२. भिक्षा माँगना यह भी वैकल्पिक होना चाहिए। किसी के घर भी भोजन कर सकें, ऐसा अपवाद स्वीकार करने की साधु को जरूरत है और वेतन लेकर निर्वाह कर सके ऐसा भी अपवाद जरूरी है।

३. ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा भी वैकल्पिक रखनी चाहिए। जिसकी इच्छा हो शक्यानुसार ले और जिसकी इच्छा न हो न ले।

४. विहार के नियमों में भी परिवर्तन होना जरूरी है। बौद्ध भिक्षु की तरह किसी भी वाहन के उपयोग करने की छूट होनी चाहिए।

पंडित जी के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि वे साधु जीवन के मूलाधार पाँचों महाव्रतों का समूलोच्छेदन करके साधु जीवन को त्याग और निवृत्ति के मार्ग से हटा कर भोगवृत्ति की ओर ले जाना चाहते हैं। वे जैन साधु जीवन के इतिहास व संस्कृति को मिटाना चाहते हैं। जैन साधु की विश्व विख्यात श्रेष्ठता तो तप, जप, संयम में ही निहित है।

ये पाँच महाव्रत ही साधु का मूल धन है। इनका पालन करना प्रत्येक साधु का कर्तव्य है। इन महाव्रतों को श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरह पंथी, दिगम्बर सम्प्रदाय के सभी साधु युगांतरों से पालन करते चले आ रहे हैं। प० दलसुख मालवणिया ने इन पाँचों महाव्रतों को अशक्य तथा अनावश्यक बतला कर जैन समाज पर जो कुठाराघात किया है, वह साधु समाज की त्यागवृत्ति में छुरा घोंपने जैसी बात है। जिस जैन समाज ने धनादि की सहायता देकर इन्हें पढ़ाया लिखाया, जिस जैन समाज की संस्थाओं की कृपा से ये फले-फूले,

करें महाराजश्री का कविजी महाराज से परस्पर प्रेम बहुत लम्बे समय से चला आरहा था। वि० सं० १९९१ में उपाध्यायश्री आत्मा राम जी महाराज का चातुर्मास चान्दनी चौक में था उस समय कवि श्री अमर चन्दजी महाराज तथा श्रीचंदजी महाराज उपाध्याय आत्माराम जी महाराज के साथ थे। चातुर्मास से पहले महाराजश्री भी बारादरी में थे उसके बाद कविजी महाराजश्री से अनेकों बार मिले और कई बार साथ-साथ विचरे दिल्ली में भी कविजी महाराज जितनी बार भी महाराज श्री से मिले उन्होंने महाराजश्री के प्रति अपना शिष्टाचार बहुत सराहनीय रखा फिर भी कई बार महाराजश्री से उनका पत्र व्यवहार हुआ किन्तु महाराजश्री व्यक्तिगत प्रेम के लिये शास्त्रों की उपेक्षा सहन नहीं कर सकते थे क्योंकि महाराजश्री का सिद्धान्त यह था कि जिस संप्रदाय में मैंने दीक्षा ली है मुझे उस संस्था संप्रदाय के गौरव को बढ़ाना है। अतः महाराजश्री की प्रेरणा पर यहाँ सब्जी मण्डी उधम सिंह हाल में दिल्ली की सभी बिरादरीयों के प्रतिनिधि आए और पंडितों के शास्त्र विरुद्ध प्रचार को रोकने के लिये सर्व सम्मति से प्रस्ताव पास किये गये और अखबारों में प्रकाशित कर दिए गए।

विचारणीय प्रश्न

श्रमण संस्कृति पर वर्षों से कुठाराघात किये जा रहे हैं। त्याग मूर्ति, विद्वान साधु वर्ग की अभेद्य दीवार ही सदैव इस संस्कृति की रक्षक रही है। अपने महान त्याग के कारण जैन मुनिराज पूजनीय रहे हैं। इनका महान् त्याग विश्व विख्यात है। तीर्थंकरों की परम्परा से चले आ रहे विधि विधानों का मूल रूप से ये मोक्षार्थी आत्माएं पालन करती चली आ रही हैं।

पं० दल सुख मालवणिया जी का प्रबुद्ध जीवन में (गुजराती) वर्ष ३२ अंक ३ दिनांक १ जून ७० में "आपणी साधु संस्था" शीर्षक से एक लेख प्रकाशित हुआ है, जिसमें आपने लिखा है कि—

१. गर्म पानी (प्रापुक) लेने की प्रथा अब अनावश्यक है। जहाँ नल का पानी आता है, वहां लगभग सर्वत्र उस में क्लोरीन वगैरह पदार्थों की मिलावट होती है और वैज्ञानिकों का कहना है कि उस में निर्जीवता आ जाती है। इस-लिए गर्म पानी का आग्रह व्यर्थ है।

२. भिक्षा माँगना यह भी वैकल्पिक होना चाहिए। किसी के घर भी भोजन कर सकें, ऐसा अपवाद स्वीकार करने की साधु को जरूरत है और वेतन लेकर निर्वाह कर सके ऐसा भी अपवाद जरूरी है।

३. ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा भी वैकल्पिक रखनी चाहिए। जिसकी इच्छा हो शक्यानुसार ले और जिसकी इच्छा न हो न ले।

४. विहार के नियमों में भी परिवर्तन होना जरूरी है। बौद्ध भिक्षु की तरह किसी भी वाहन के उपयोग करने की छूट होनी चाहिए।

पंडित जी के इन विचारों से यह स्पष्ट है कि वे साधु जीवन के मूलाधार पाँचों महाव्रतों का समूलोच्छेदन करके साधु जीवन को त्याग और निवृत्ति के मार्ग से हटा कर भोगवृति की ओर ले जाना चाहते हैं। वे जैन साधु जीवन के इतिहास व संस्कृति को मिटाना चाहते हैं। जैन साधु की विश्व विख्यात श्रेष्ठता तो तप, जप, संयम में ही निहित है।

ये पाँच महाव्रत ही साधु का मूल धन है। इनका पालन करना प्रत्येक साधु का कर्तव्य है। इन महाव्रतों को श्वेताम्बर, स्थानकवासी, तेरह पंथी, दिगम्बर सम्प्रदाय के सभी साधु युगांतरों से पालन करते चले आ रहे हैं। प० दलसुख मालवणिया ने इन पाँचों महाव्रतों को अशक्य तथा अनावश्यक बतला कर जैन समाज पर जो कुठाराघात किया है, वह साधु समाज की त्यागवृत्ति में छुरा घोंपने जैसी बात है। जिस जैन समाज ने धनादि की सहायता देकर इन्हें पढ़ाया लिखाया, जिस जैन समाज की संस्थाओं की कृपा से ये फले-फूले,

पनपे और संसार में ख्याति को प्राप्त हुए, उसी जैन धर्म की जड़ें काटना क्या समाज से गद्दारी करना नहीं है ?

यदि इनकी बात को मान कर साधु समाचारी में परिवर्तन कर दिया जाए तो जैन साधुओं की भी वही दुर्दशा होगी जो गली-गली में फिरने वाले अन्य भिखारियों की होती है ऐसे विलासी साधु फिर समाज के लिए एक अनावश्यक भार भूत ही बन जायेंगे। इनकी महानता व उपयोगिता धूल धूसरित हो जाएगी। फिर गृहस्थ और साधु में कुछ भी अन्तर न रहेगा। फिर कौन सुनेगा इन की वाणी !

इसी प्रकार का एक लेख अमर भारती में पं० बेचर दास जी का प्रकाशित हुआ है जिसमें आपने लिखा है कि जैन शास्त्रों में मुखवस्त्रिका का कहीं भी उल्लेख नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र २६ वें अध्याय की २३ वीं गाथा।

"मुंहपत्ति पडिलोहत्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं,

गोच्छ गलइयंगुलिओ, वत्थाई पडिलेहए ॥"

इससे मुख वस्त्रिका के उल्लेख की स्पष्ट पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त भी जैनागमों में यत्र-तत्र मुखवस्त्रिका का उल्लेख मिलता है। पं० बेचर दास जी ने किस सुप्तावस्था में मुखवस्त्रिका का निषेध कर डाला है जोकि सरासर गलत है।

इन्हीं पंडितों की परम्परा में पं० मोहनलाल जी मेहता भी आते हैं। आपने तीर्थंकरों की सर्वज्ञता को ही मानने से इन्कार कर दिया है। आप के विचारों में त्रिकाल द्रष्टा और त्रिकाल ज्ञाता कोई हो ही नहीं सकता यदि कुछ क्षणों के लिए इनकी इस गलत धारणा को स्वीकार कर भी लें तो मोक्ष का प्रश्न ही समाप्त हो जायेगा क्योंकि जब तक आत्मा पूर्ण रूप से ज्ञाता और द्रष्टा नहीं होती तब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। फिर जप, तप, करने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। शास्त्र में णमोत्थुणं के पाठ में स्पष्ट लिखा है कि तीर्थंकर सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होते हैं।

ऐसे लेख लिखने और छापने का दुस्साहस तब तक होता रहेगा जब तक कि समाज इन का डट कर प्रतिरोध नहीं करता और ऐसे समाचार पत्रों के प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगवाने का पूरा प्रयत्न नहीं करता। जैन संस्थाओं में कार्य करने वाले इन पंडितों को अगर वहां से निष्कासित नहीं किया जाता तो हम यह समझेंगे कि वे संस्थायें भी इस मिथ्या प्रचार के पाप से अछूती नहीं रह सकती।

हम भारत वर्ष की सभी जैन सम्प्रदायों से प्रार्थना करते हैं कि वे एक स्वर से ऐसे प्रकाशनों का घोर विरोध करें और अपनी-अपनी समाजों से प्रस्तावों को पास करें और सभी जैन समाचार पत्रों में अपने प्रस्ताव प्रकाशित करायें और उनकी प्रतिलिपि हमारे कार्यालय को अवश्य भेजने की कृपा करें।

जसवंतसिंह जैन प्रधान, एस० एस० जैन सभा, दिल्ली-७

श्रमण संघ के आचार्यश्री की घोषणा

भ्रम-निवारण

काफी लम्बे समय से समाज में कुछ बातों को लेकर अनेक प्रकार की भ्रांतियाँ फैल रही हैं जिससे समाज के कुछ अधिकांश धर्म प्रेमी विचारकों के दिलों में गहरा असंतोष है एवं आघात लगा है। निम्न बातें जो विचाणीय हैं—

१. नल के पानी का साधु-साध्वियों द्वारा उपयोग करना
२. फ्लश की टट्टी का उपयोग करना
३. लोच नहीं करना
४. बिजली के पंखे का उपयोग करना
५. चप्पल का उपयोग करना आदि

"इन पांच बातों को जो साधु या साध्वी सेवन करेगा वह श्रवण संघ से बाहर समझा जायेगा" ऐसा ऐलान सांडावाल साधु सम्मेलन करके आचार्यश्री की ओर से किया गया किन्तु उस ऐलान का पालन नहीं हो रहा है।

पनपे और संसार में ख्याति को प्राप्त हुए, उसी जैन धर्म की जड़ें काटना क्या समाज से गद्दारी करना नहीं है ?

यदि इनकी बात को मान कर साधु समाचारी में परिवर्तन कर दिया जाए तो जैन साधुओं की भी वही दुर्दशा होगी जो गली-गली में फिरने वाले अन्य भिखारियों की होती है ऐसे विलासी साधु फिर समाज के लिए एक अनावश्यक भार भूत ही बन जायेंगे। इनकी महानता व उपयोगिता धूल धूसरित हो जाएगी। फिर गृहस्थ और साधु में कुछ भी अन्तर न रहेगा। फिर कौन सुनेगा इन की वाणी !

इसी प्रकार का एक लेख अमर भारती में पं० बेचर दास जी का प्रकाशित हुआ है जिसमें आपने लिखा है कि जैन शास्त्रों में मुखवस्त्रिका का कहीं भी उल्लेख नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र २६ वें अध्याय की २३ वीं गाथा।

"मुंहपत्ति पडिलोहत्ता, पडिलेहिज्ज गोच्छगं,
गोच्छ गलइयंगुलिओ, वत्थाई पडिलेहए ॥"

इससे मुख वस्त्रिका के उल्लेख की स्पष्ट पुष्टि होती है। इसके अतिरिक्त भी जैनागमों में यत्र-तत्र मुखवस्त्रिका का उल्लेख मिलता है। पं० बेचर दास जी ने किस सुप्तावस्था में मुखवस्त्रिका का निषेध कर डाला है जोकि सरासर गलत है।

इन्हीं पंडितों की परम्परा में पं० मोहनलाल जी मेहता भी आते हैं। आपने तीर्थकरों की सर्वज्ञता को ही मानने से इन्कार कर दिया है। आप के विचारों में त्रिकाल द्रष्टा और त्रिकाल ज्ञाता कोई हो ही नहीं सकता यदि कुछ क्षणों के लिए इनकी इस गलत धारणा को स्वीकार कर भी लें तो मोक्ष का प्रश्न ही समाप्त हो जायेगा क्योंकि जब तक आत्मा पूर्ण रूप से ज्ञाता और द्रष्टा नहीं होती तब तक उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हो सकती। फिर जप, तप, करने की भी आवश्यकता नहीं रहेगी। शास्त्र में णमोत्थुणं के पाठ में स्पष्ट लिखा है कि तीर्थंकर सर्वज्ञ और सर्वद्रष्टा होते हैं।

"सव्वन्नूणं सव्वदरिसिणं।"

ऐसे लेख लिखने और छापने का दुस्साहस तब तक होता रहेगा जब तक कि समाज इन का डट कर प्रतिरोध नहीं करता और ऐसे समाचार पत्रों के प्रकाशनों पर प्रतिबन्ध लगवाने का पूरा प्रयत्न नहीं करता। जैन संस्थाओं में कार्य करने वाले इन पंडितों को अगर वहां से निष्कासित नहीं किया जाता तो हम यह समझेंगे कि वे संस्थायें भी इस मिथ्या प्रचार के पाप से अछूती नहीं रह सकती।

हम भारत वर्ष की सभी जैन सम्प्रदायों से प्रार्थना करते हैं कि वे एक स्वर से ऐसे प्रकाशनों का घोर विरोध करें और अपनी-अपनी समाजों से प्रस्तावों को पास करें और सभी जैन समाचार पत्रों में अपने प्रस्ताव प्रकाशित करायें और उनकी प्रतिलिपि हमारे कार्यालय को अवश्य भेजने की कृपा करें।

जसवंतसिंह जैन प्रधान, एस०-एस० जैन सभा, दिल्ली-७

श्रमण संघ के आचार्यश्री की घोषणा

भ्रम-निवारण

काफी लम्बे समय से समाज में कुछ बातों को लेकर अनेक प्रकार की भ्रांतियां फैल रही हैं जिससे समाज के कुछ अधिकांश धर्म प्रेमी विचारकों के दिलों में गहरा असंतोष है एवं आघात लगा है। निम्न बातें जो विचारणीय हैं—

१. नल के पानी का साधु-साध्वियों द्वारा उपयोग करना
२. फ्लश की टट्टी का उपयोग करना
३. लोच नहीं करना
४. बिजली के पंखे का उपयोग करना
५. चप्पल का उपयोग करना आदि

"इन पांच बातों को जो साधु या साध्वी सेवन करेगा वह श्रवण संघ से बाहर समझा जायेगा" ऐसा ऐलान सांडावाल साधु सम्मेलन करके आचार्यश्री की ओर से किया गया किन्तु उस ऐलान का पालन नहीं हो रहा है।

उक्त बातें श्रमण संघ के द्वितीय, पट्टधर आचार्य सम्राट् जैन धर्म दिवाकर पूज्यश्री आनन्दऋषिजी महाराज साहब की सेवा में पहुंची। आचार्यश्री ने इन बातों का खुलासा करना समाज हित में जरूरी समझकर निम्न भाव व्यक्त किये—

उक्त लिखित बातें हमारी श्रमण परम्परा के विरुद्ध हैं और इन बातों की किसी भी श्रमण संघीय संयमनिष्ठ साधु एवं साध्वी ने प्ररूपणा नहीं की है।

अतएव यदि श्रमण संघीय कोई साधु-साध्वी इन बातों की खुले रूप में प्ररूपणा करता है, सेवन करता है, तथा अनुमोदन करता है तो वह शास्त्रीय मर्यादा का उल्लंघन करता है जो श्रमण संघीय मर्यादा के बाहर हैं।

धर्मानुरागी श्रावक संघों का भी पुनीत कर्त्तव्य है कि श्रमण परम्पराओं को अक्षुण्ण रखते हुए चतुर्विध संघ की सेवा करते रहें और नियमों के पालन में भी किसी प्रकार की ढिलाई देखें तो उसकी सूचना मुझे करते रहें।

—आचार्यश्री की आज्ञा से
पं० मदनकुमार चौबे 'साहित्य रत्न'

एस० एस० जैन सभा (पंजीकृत)

५१५२, कोल्हापुर रोड, सब्जी मण्डी, दिल्ली-७

क्रमांक........... दिनांक १९७

आदरणीय बन्धुवर,

सादर जय जिनेन्द्र।

आजकल जैन समाचार पत्रों में कतिपय विद्वानों द्वारा जैन समाज की परम्परा व मान्यताओं के विरोधी समाचार प्रकाशित हो रहे हैं इसके विरोध में दिल्ली के समस्त स्थानकवासी जैन संघों की एक सार्वजनिक सभा १३ सितम्बर १९७० को हुई जिसकी पूर्ण कार्यवाही आपकी सेवा में प्रस्तुत की जा रही है। अतः समस्त जैन श्रावक संघ के प्रधान व मंत्री जी से प्रार्थना है कि

यह कार्यवाही अपने यहाँ सुनाकर इसकी सूचना हमें उपरोक्त पते पर भेजने का कष्ट करें। इसके साथ विचारणीय प्रश्न की एक प्रतिलिपि भी संलग्न है।

सभा की कार्यवाही

आज दिनांक १३ सितम्बर १९७० रविवार को सवेरे ९ वजे श्री जैन स्थानक ऊधम सिंह जैन हाल कोल्हापुर रोड, सब्जी मंडी, दिल्ली में एक सार्वजनिक सभा जैन समाज के कतिपय पंडितों द्वारा भ्रांति जनक प्रचार तथा जैन श्रमणों के आचार में परिवर्तन होना चाहिये। ऐसा जो गलत व भ्रामक प्रचार हो रहा है उसके सम्बन्ध में विचार विनिमय करने के लिए पंजाब केसरी पं० रत्न मुनि श्री प्रेम चन्द जी महाराज के सान्निध्य में हुई। जिसकी अध्यक्षता श्रीमान डी० एस० कोठारी जी ने की। इस सभा में अखिल भारतवर्षीय स्थानक वासी जैन कॉफ्रेंस के प्रधान मंत्री श्रीमान सेठ आनन्द राजजी सुराणा व दिल्ली स्थानकवासी जैन श्रावक महासंघ के प्रधान श्री बनारसीदास ओसवाल तथा दिल्ली नगर व उपनगरों के श्रावक संघों के प्रतिनिधि भी उपस्थित हुए। जिनमें उपस्थित प्रतिनिधि चाँदनी चौक, सदर बाजार, वीर नगर जैन कालोनी, शक्ति नगर, दरियागंज, करोलबाग आदि सभी संघों के प्रतिनिधियों ने अपने विचार प्रकट करते हुए एक स्वरों में कहा कि हम इन पंडितों के भ्रान्तिजनक विचारों के सख्त विरोधी है। यह हमारी परम्परा व मान्यताओं के बिल्कुल विरुद्ध है। हम जैन समाज के चतुर्विध संघों से प्रार्थना करते हैं कि ऐसेविचारों तथा इनके प्रचारकों को बिल्कुल भी किसी प्रकार की मान्यता न दें और सभी भाई मिलकर समाज को गलत रास्ते पर जाने से बचावें।

क्या इन विचारकों से पूर्व कोई आचार्य पंडित ऐसे नहीं हुए जो वीतराग की वाणी का सही अर्थ कर सकते ? क्या यह सब काम आज के इन्हीं तथाकथित पंडितों के लिए ही छोड़ दिया गया था ? बड़े दुख की बात है कि जैन समाज अपने घर में आग लगने पर भी सोया पड़ा है। यह समाज के प्रत्येक व्यक्ति के चेतने का समय है :—

अगर अब भी न चेतोगे तो मिट जाओगे ऐ जैनो,
तुम्हारी दास्तां तक भी न होगी दास्तानों में।

डा० डी० एम० कोठारी जी को किसी आवश्यक कार्यवश १०-३० बजे जाना पड़ा तो उसके बाद सभा सेठ आनन्द राज जी सुराणा की अध्यक्षता में १२ बजे दोपहर तक चली जिसमें सर्व सम्मति से निम्न लिखित प्रस्ताव पारित किया गया।

प्रस्ताव

कुछ जैन विद्वानों के ऐसे लेख आ रहे हैं जो हमारी परम्परागत धर्मभावनाओं पर कुठाराघात करते है यहां तक कि साधु महाराजों के पांच महाव्रतों का मूलोच्छेदन करने का प्रयत्न किया गया है। अ० भा०श्वे० स्था० जैन कॉफ्रेंस तथा दिल्ली नगर व उपनगरों की यह सार्वजनिक सभा इस प्रकार के प्रचार की घोर निन्दा करती है और अपना रोषपूर्ण विरोध प्रकट करती है। अन्ततः ऐसे लेखकों से अनुरोध करती है कि वह भविष्य में इस प्रकार का दुःसाहस न करें और यह भी संकल्प करती है कि इस प्रकार के भ्रामक प्रचार को रोकने के लिए हर सम्भव प्रयत्न किया जायेगा। यह सभा श्रमणसंघ के पूज्याचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज से भी विनयपूर्वक प्रार्थना करती है कि ऐसे भ्रामक विचारों को फैलने से रोकने की कृपा करें।

हम सभी जैन श्रावक संघों से भी प्रार्थना करते हैं कि इसी प्रकार के प्रस्ताव अपने संघ द्वारा पारित करके जैन समाचार पत्रों तथा जैनाचार्यो-व सम्बन्धित व्यक्तियों को भेजें ताकि भविष्य में ऐसे भ्रान्ति जनक प्रचार करने का दुःसाहस किसी को न हो सके। अपने यहां पारित प्रस्ताव की एक प्रतिलिपि हमारे कार्यालय को भी भेजने की कृपा करें।

क्षमा प्रार्थी
(जसवन्त सिंह जैन)
प्रधान
एस० एस० जैन सभा,
५१५२ कोल्हापुर रोड,
दिल्ली-७

दिनांक १४-६-१६७०

इसके वाद महाराजश्री को न्यूनाधिक मात्रा में तकलीफ चलती ही रही अतः चातुर्मास समाप्त होने के बाद भी महाराजश्री यहीं पर विराजे इसके वाद शक्तिनगर के भाइयों की विनती पर शक्ति नगर पधारे। महाराजश्री का यह सब्जीमण्डी चातुर्मास जीवन का अन्तिम चातुर्मास था क्योंकि वे इसके बाद इस स्थानक में दुबारा नहीं जा सके।

महाराजश्री का दिल्ली का प्रचार भी दिन प्रतिदिन संक्षिप्त होता जा रहा था शक्ति नगर में पहुंच कर ऊपर न चढ़ने के कारण स्थानक में न जाकर जम्बू कुमार-दर्शन कुमार की कोठी पर विराजे सब्जी मण्डी से विहार करते समय सब्जी मण्डी के बहुत से भाई महाराजश्री को छोड़ने शक्ति नगर तक आये वहाँ पर जम्बू तथा दर्शन ने सब्जीमंडी से साथ आने वालों की प्रभावना की महाराजश्री ने संक्षिप्त उपदेश के बाद मंगल पाठ सुनाया। दूसरे दिन से व्याख्यान चलता रहा किन्तु इन दिनों महाराजश्री की छाती का दर्द और पेशाव का रुक-रुक कर आना चलता रहा जिससे महाराजश्री के शरीर पर बहुत आघात पड़ा महाराजश्री जब भी पेशाव करते तभी छाती में दर्द शुरू हो जाता अतः रिक्खी डाक्टर को बुलाया गया उसने राय दी कि महाराजश्री का पेशाव के लिये ओपरेशन होना चाहिये इसके बाद लाला इन्द्रसेन डाक्टर महाजन को लेकर आए उसने भी यही राय दी कि ओपरेशन होगा। इसके बाद महाराजश्री विहार करके धीरे-धीरे एक रात सदर में तथा एक रात बारादरी में लगाकर—दरियागंज स्थानक में पहुंचे। दो तीनदिन बाद अस्पताल में भरती हो गये। बाद में ओपरेशन हो गया कोई दो घंटे तक ओपरेशन हुआ क्योंकि यह ओपरेशन बड़ा था।

इसके बाद लगभग एक महीने तक अस्पताल में रहे यद्यपि विचार तो यह था कि महाराजश्री ओपरेशन के बाद दस-बारह दिन में स्थानक में पधार जायेंगे किन्तु इस दौरान महाराजश्री को हृदय रोग का बड़ा भयानक दौरा पड़ा जिससे हृदय रोग के डाक्टर को कई दिन तक वहीं रहना पड़ा। महाराजश्री को दस-पन्द्रह दिन में कुछ शान्ति हुई। पहले यही विचार था कि अस्पताल से छुट्टी के बाद दस-पन्द्रह दिन दरियागंज के स्थानक में रहेंगे परन्तु

लाला इन्द्र सेन ने ऐसा मत प्रकट किया छुट्टी के बाद करोलबाग में ले जायेंगे। मेरे को इस विषय का ज्ञान हुआ कि लाला इन्द्रसेन महाराजश्री को करोलबाग ले जाना चाहते हैं। मैंने दरियागंज के भाईयों से कहा कि मैंने ऐसा सुना है कि इन्द्रसेन महाराजश्री को करोलबाग ले जाना चाहते हैं ऐसी स्थिति में महा-राजश्री चलकर नहीं जा सकते इस पर वहां के भाइयों ने कहा कि जब तक महाराजश्री चलने फिरने योग्य नहीं हो जाते तब तक महाराजश्री की हर प्रकार से सेवा करेंगे अतः महाराजश्री यहां विराजें। इसके बाद मैं अस्पताल में महा-राजश्री के पास गया और महाराजश्री से अर्ज की कि यहां की बिरादरी कहती है कि अभी पूर्ण स्वस्थ्य होने तक महाराजश्री यहीं दरियागंज स्थानक में विराजें हम महाराजश्री की हर प्रकार से सेवा करेंगे। इसके बाद लाला इन्द्र सेन अस्पताल में आये उनसे महाराजश्री ने कहा कि बनवारी लाल ऐसा कहता है कि यहाँ कि बिरादरी ऐसा कहती है कि आपके ऐसी हालत में यहाँ से जाने से हमारी बदनामी होगी। अतः तुम यहाँ की बिरादरी से पता करलो कि वे क्या कहते हैं। मैंने लाला समेरचन्द को स्थानक में बुलवाया और उधर से लाला इन्द्रसेन भी वहां स्थानक में पहुंच गए। लाला इन्द्रसेन यहां की बिरादरी के भाईयों से मिले और उसने भाइयों से पूछा कि आपने महाराजश्री के विषय में क्या कहा इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि जब तक महाराजश्री अपने पैरों से चलने फिरने योग्य नहीं हो जाते तब तक हम महाराजश्री की हर प्रकार से सेवा करेंगे इस पर लाला इन्द्रसेन ने उनसे कहा कि यदि आप लोग महाराजश्री को यहां पर रखना चाहते हो तो ५०० रुपया रोज का लगेगा और दस हजार रुपये एकत्रित कर लो इस पर उन्होंने कहा कि हम अपनी बिरादरी की सभा बुलाकर इसका उत्तर देंगे वे लोग दो दिन तक सभा करते रहे और बाद में मेरे पास आए उन्होंने मुझ से कहा कि हम सेवा तो कर सकते हैं किन्तु इतना धन एकत्रित करने की हमारी सामर्थ्य नहीं और समेरचंद ने ऐसा भी कहा कि इतने धन की क्या आवश्यकता पड़ेगी ? और कहा कि डाक्टर की सेवा तो इन्द्र सेन करता रहे और जो भी सेवा होगी उसे

हम करते रहेंगे क्योंकि डाक्टर उसका परिचित है। इस पर मैंने कहा कि भाई डाक्टर को जानकारी से अधिक पैसे की आवश्यकता होती है- इसके बाद मैं निराश सा हो गया मैंने इन्द्र सेन से कह दिया कि जैसे आप उचित समझे वैसा करें और मैं स्थानक में चला आया इसके बाद लोग मेरे से पूछते रहे कि महाराजश्री ऐसी स्थिति में सवारी के बिना करोलबाग कैसे जा सकते हैं ? इस पर मैं कहता था कि इस विषय पर विचार चल रहा है कि महाराजश्री को करोलबाग स्थानक में कुर्सी पर बैठाकर ले जाया जाय या डोली पर ले जाया। किन्तु यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इन दोनों तरीकों से ले जाने से महा-राजश्री को ले जाते हुए रास्ते में झटके लग कर रास्ते में हृदय की तकलीफ हो सकती है। इसके बाद शक्तिनगर की बिरादरी स्थानक में मेरे पास आई उन्होंने अर्ज कि की महाराजश्री के ओपरेशन का पैसा हम ही देंगे और हम महाराजश्री को शक्ति नगर ले जायेंगे मैंने उनसे कहा कि इस समय शक्ति नगर अगर ले जाया-जायगा तो वहाँ भी सवारी के बिना नहीं जा सकते और करोलबाग ले जाया जायेगा तो वहां सवारी के बिना नहीं जा सकते। हमारा विचार तो यह था कि जब तक महाराजश्री अपने पैरों से स्वयं चलने फिरने योग्य नहीं हो जाते तब तक दरियागंज में ही विराजें किन्तु इन्द्रसेन ने दरिया गंज की बिरादरी के सामने यह बात रखी की यदि तुम महाराजश्री को यहां रखना चाहो तो पांच सौ रुपया रोज के लगेंगे और दस हजार रुपया तुम एक त्रित करलो यहाँ की बिरादरी ने उत्तर दिया कि हम रुपये एकत्रित करने की स्थिति में नहीं परन्तु महाराजश्री की सेवा कर सकते हैं इस पर शक्तिनगर की तरफ से जम्बू कुमार ने कहा कि पाच सौ क्या अगर हजार रु० रोज के लगें तब भी हम लगायेंगें जब तक महाराजश्री अपने पैरों से चलने फिरने योग्य न हो जायं तब तक आप यहीं विराजें हमारी बिरादरी निरन्तर सेवा करती रहेगी किसी प्रकार का अन्तर नहीं आवेगा।

इस पर मैंने उनसे कहा कि मैं लाला इन्द्र सेन को यह वचन दे चुका कि

जैसा आप उचित समझें वैसा करें इसलिये मैं वचनबद्ध हो चुका हूं इसके बाद महाराजश्री को एम्बूलेंस में करोल बाग लाया गया।

इस करोलबाग स्थानक में आने के पश्चात महाराजश्री के विहार और विचरण के अन्त होने के कारण इस विहार प्रचार पुस्तक की समाप्ति होती है यहां से आगे श्री प्रेम ज्योति आदर्श चरित्र प्रारंभ होगा।

विनम्र श्रद्धांजलि

परम श्रद्धेय पूजनीय पंजाब केसरी श्री प्रेमचन्दजी महाराज साहब का साक्षात्कार मेरी सास श्रीमती नगीना देवी जी की प्रेरणा से हुआ था। उनके तेज व कांतिपूर्ण सुडौल पंजाबी शरीर काय में कितनी नम्रता सरलता सौम्यता व आचरण की दृढ़ता थी लिखते नहीं बनता। पहली बार की उनकी साक्षात्कारिता मेरे जीवन में अमिट छाप छोड़ गई।

जैन साधु-साध्वियों में दो प्रकार के साधु-साध्वी, शास्त्रोक्त विधि से आचरण करने की दृष्टि से, मुझे देखने को मिलते रहे हैं। राजस्थान में मुख्यत: मारवाड़ी साधुओं में आचरण की दृढ़ता अधिक देखने को मिली है। आज के बदलते युग में विज्ञान को अध्यात्म का सहारा देने के बजाय विज्ञान को आध्यात्म को सहारा देने को विवश करना पड़ रहा है। बिजली का उपयोग, साधु-साध्वी के बाईस परिषहों को सहन करने की अभ्यास हीनता, शरीर व वस्त्रों की बाहरी सज्जा व सफाई व शास्त्रीय मर्यादाओं का उल्लंघन प्रायः आम होता जा रहा है। मगर पंजाब प्रांत के होते हुए भी आचरण की मर्यादा पूर्ण कठोरता व जैन सिद्धान्तों के अनुसरण व अनुकरण में पूज्य महाराजश्री का अनुपालन उनके संयमी जीवन की मुख्य देन रही है।

करौलबाग जैन स्थानक, जो पूज्य महाराजश्री के नाम से प्रेम-भवन के

रूप में अब भी विद्यमान है, उनके नश्वर शरीर के अन्तिम दिनों की याद अपने में समेटे हुए हैं। रविवारिय सामायिक उनके सान्निध्य में करते हुए यदि कोई धर्म सेवी भाई बातचीत कर विघ्न डालता दीखता तो महाराजश्री बादल की कड़कड़ाहट की तरह गरज पड़ते। उनकी अनन्य कृपा मेरे व मेरे परिवार पर रही है। उनकी स्मृति में "प्रेम भवन" में चिरस्थायी समाज हितैषी व जन-उपयोगी यादगार समाज बनावे इसी कामना के साथ।

विनीत
जिनेन्द्र कुमार जैन
एडवोकेट, ३४६ दरीबा देहली

दिनांक २४ नवंबर ७४

१००८ पंजाब केसरी श्री प्रेमचन्द जी महाराज के चरणों में विनम्र श्रद्धांजली

पंजाब केसरी प्रेमचन्द जी महाराज से मेरा संपर्क कैसे हुआ? महाराजश्री के जालंधर नगर में सार्वजनिक प्रवचन होते थे जिनमें श्रोताओं की संख्या हजारों की होती थी, एकदिन महाराज श्री ने मांस निषेध पर प्रवचन देते हुए वैजिटेरियन सोसायटी के पांच नियमों पर अपनी सारगर्भित वाणी से विस्तृत प्रकाश डाला, महाराजश्री के इन प्रवचनों से प्रभावित हो कर यहां के गणमान्य नागरिकों ने वैजिटेरियन सोसायटी की विधिवत् स्थापना की। पदाधिकारियों का चुनाव किया गया मुझे इस कमेटी का प्रधानमंत्री नियुक्त किया गया। उन्हीं दिनों में स्थानीय आर्यसमाज का प्रधानमंत्री था। इसके बाद भी महाराजश्री का चातुर्मास वि० सं० २००१ में जालंधर नगर में हुआ, महाराजश्री के व्याख्यान सार्वजनिक हुआ करते थे, इस चातुर्मास में प्रति रविवार को वैजिटेरियन सोसायटी की सभा हुआ करती थी और महाराजश्री भी इसी विषय में प्रवचन फरमाया करते थे इन प्रवचनों में महाराजश्री दीन-दुखियों के दुखों को मिटाने के लिए तथा विधवा निराश्रित बहिनों के हित एवं सहायता के लिए उपदेश देते थे, महाराजश्री की इस पावन प्रेरणा से प्रेरित होकर यह सोसायटी दीन-दुखियों की भोजन वस्त्रादि के द्वारा यथाविधि

सहायता करती थी, इस कमेटी के प्रधान होने के नाते मैं इस कमेटी के सहायता कार्यों के विषय में महाराजश्री को परिचित कराता रहता था, इस प्रकार मुझे महाराज के निकट बैठने का सौभाग्य मिलता रहता था, इस कमेटी की ओर से एक सिलाई स्कूल खोला गया, जिससे दीन-निराश्रित बहिनों ने लाभ उठाया, तथा इस सोसायटी की तरफ से एक औषधालय भी खोला गया, जिससे बहुत से रोगियों को स्वास्थ्य लाभ मिलता रहा मैं कभी २ महाराजश्री के चरणों में आहारादि के लिए विनती करता था तो महाराजश्री, श्री बनवारी लालजी महाराज को मेरे घर कभी २ भेजते रहते थे तथा कभी कभी अपनी चरणरज से मेरे घर को पवित्र करते थे। महाराजश्री के मधुर व्याख्यानों की प्रेम सुधा नाम से अनेकों पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उनमें से जितनी पुस्तके मेरे पास थी वह मैंने शक्तिनगर जैन लायब्रेरी को समर्पित करदी हैं जब तक महाराज श्री जीवित रहे तब तक मैं उनके दर्शनों का लाभ प्राप्त करता रहा। जब से मैं महाराज श्री के संपर्क में आया, तब से प्रतिदिन उनके प्रिय भजन—

सुबह शाम जिसको तेरा ध्यान होगा।
बड़ा भाग्य शाली वह इन्सान होगा॥

गाया करता हूँ। बोलो प्रेमचन्दजी महाराज की जाय।

प्रोफेसर अमोलकराम सोनी
१८/३ शक्तिनगर (दिल्ली)